श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

आत्मानुशासन प्रवचन

चतुर्थ भाग

प्रवक्ता :—

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी

"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज

सम्पादक :—

महावीरप्रसाद जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ।

प्रकाशक —

खेमचन्द जैन, सर्राफ

मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला,

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

(उ० प्र०)

प्रथम संस्करण]
१०००

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के संरक्षक

(१) श्रीमान् लाला महावीर प्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ
(२) श्रीमती फूलमाला जी, धर्मपत्नी श्री लाला महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ।

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के प्रवर्तक महानुभावों की नामावली।—

(१) श्री भवरीलाल जी जैन पाण्डया, झूमरीतिलैया
(२) ,, ला० कृष्णचन्द जी जैन रईस, देहरादून
(३) ,, सेठ जगन्नाथजी जैन पाण्डया, झूमरीतिलैया
(४) ,, श्रीमती सोवती देवी जी जैन, गिरिडीह
(५) ,, ला० मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन, मुजफ्फरनगर
(६) ,, ला० प्रेमचन्द ओमप्रकाश जी जैन, प्रेमपुरी, मेरठ
(७) ,, ला० सलेखचन्द लालचन्द जी जैन, मुजफ्फरनगर
(८) ,, ला० दीपचन्द जी जैन रईस, देहरादून
(९) ,, ला० बारूमल प्रेमचन्द जी जैन, मसूरी
(१०) ,, ला० बाबूराम मुरारीलाल जी जैन, ज्वालापुर
(११) ,, ला० केवलराम उग्रसैन जी जैन, जगाधरी
(१२) ,, सेठ गैंदामल दगडू शाह जी जैन, सनावद
(१३) ,, ला० मुकुन्दलाल गुलशनराय जी, नई मंडी, मुजफ्फरनगर
(१४) ,, श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन, देहरादून
(१५) ,, *श्रीमान् ला० जयकुमार वीरसैन जी जैन, सदर मेरठ*
(१६) ,, मन्त्री जैन समाज, खण्डवा
(१७) ,, ला० बाबूराम अकलंकप्रसाद जी जैन, तिस्सा
(१८) ,, बा० विशालचन्द जी जैन, आ० मजि०, सहारनपुर
(१९) ,, बा० हरीचन्द जी ज्योतिप्रसाद जी जैन ओवरसियर, इटावा
(२०) श्रीमती प्रेम देवी शाह सुपुत्री बा० फतेलाल जी जैन संघी, जयपुर
(२१) श्रीमती धमपत्नी सेठ कन्हैयालाल जी जैन, जियागंज
(२२) ,, मन्त्राणी, जैन महिला समाज, गया
(२३) श्रीमान् सेठ सागरमल जी पाण्ड्या, गिरिडीह
(२४) ,, बा० गिरनारीलाल चिरजीलाल जी, गिरिडीह
(२५) ,, बा० राधेलाल कालूराम जी मोदी, गिरिडीह

(२६) श्री सेठ फूलचन्द बैजनाथ जी जैन, नई मण्डी, मुजफ्फरनगर
(२७) ,, ला० सुखबीरसिंह हेमचन्द जी सर्राफ, बडौत
(२८) श्रीमती धनवंती देवी ध० प० स्व० ज्ञानचन्द जी जैन, इटावा
(२९) श्री दीपचंद जी जैन ए० इंजीनियर, कानपुर
(३०) श्री गोकुलचंद हरकचंद जी गोधा, लालगोला
(३१) दि० जैनसमाज नाई मंडी आगरा
(३२) दि० जैनसमाज जैनमन्दिर नमकमंडी आगरा
(३३) श्रीमती शैलकुमारी ध० प० बा० इन्द्रजीत जी वकील, कानपुर
* (३४) ,, सेठ गजानन्द गुलाबचन्द जी जैन, गया
* (३५) ,, बा० जीतमल शान्तिकुमार जी छावडा, झूमरीतिलैया
* (३६) ,, सेठ शीतलप्रसाद जी जैन, सदर मेरठ
* (३७) ,, सेठ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन बडजात्या, जयपुर
* (३८) ,, बा० दयाराम जी जैन आर. एस. डी. ओ. सदर मेरठ
* (३९) ,, ला० मुन्नालाल यादवराय जी जैन, सदर मेरठ
× (४०) ,, ला० जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन, सहारनपुर
× (४१) ,, ला० नेमिचन्द जी जैन, रुडकी प्रेस, रुडकी
× (४२) ,, ला० जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन, शिमला
× (४३) ,, ला० बनवारीलाल निरंजनलाल जी जैन, शिमला

नोट—जिन नामोंके पहले * ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोंकी स्वीकृत सदस्यता के कुछ रुपये आ गये हैं बाकी आने हैं तथा जिनके नामके पहले × ऐसा चिन्ह लगा है उनके रुपये अभी नहीं आये, आने हैं।

—।० * ०।—

शान्तमूर्ति न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज
द्वारा रचित

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ।।टेक।।

[१]

मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हू वह हैं भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ राग वितान ।।

[२]

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।

[३]

सुख दुख दाता कोई न आन, मोह राग रुष दुख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुखका नहिं लेश निदान ।।

[४]

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुँचू निजधाम, आकुलताका फिर क्या काम ।।

[५]

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूं अभिराम ।।

:०:—

आत्मानुशासन प्रवचन चतुर्थ भाग

लक्ष्मीनिवासनिलय विलीन विलय विधाय हृदि वीरं।
आत्मानुशासनमहं वक्ष्ये मोक्षाय भव्यानां॥
प्रसुप्तो मरणाशङ्कां प्रबुद्धो जीवितोत्सवं।
प्रत्यहं जनयत्येष तिष्ठेत्काये कियच्चिरम्॥८२॥

चिरकाल किसी एक शरीरमें ठहरनेका अवकाश— यह मनुष्य जब सो जाता है तो मरणकी आशंकाको उत्पन्न करता है और जब जग जाता है तो जीवनके उत्सवको किया करता है। अर्थात् प्रतिदिन यही हाल हो रहा है कि सो गए तो मरणकी तरह बेसुध हो गए और जब जगे तब कुछ जीने जैसा हाल हुआ। ऐसे तो रोज मरना और रोज जीना सा बन रहा है। ऐसे इस शरीरमें कितने क्षण यह जीव ठहरेगा?

निर्मूल व्यामोह इस जीवको व्यर्थका एक ऐसा मोह लग गया है जिसके कारण यह अपनी इस ज्ञाननिधिकी सुध न रखकर भिन्न असार बाह्य पदार्थोंमें अपनी दृष्टि बनाये रहता है। अमुक परसे मुझे सुख मिलेगा ऐसी कुश्रद्धा कर लेनेके कारण इसकी दृष्टि परकी ओर ही रहा करती है, और जब तक किसी भी परपदार्थकी आशाका परिणाम रहेगा तब तक यह शान्त रह ही नहीं सकता। आशा किया, आशा करके, चेष्टा कर करके थक गया तो कुछ निद्रा ली, और कहो निद्रामें भी आशाकी कल्पना जगी रह सकती है। स्वप्न आयेंगे तो उस ही तरहके स्वप्न आयेंगे। एक मनुष्य सो गया। सोते हुएमें स्वप्न देखा कि मुझे राजा साहबने ५० गायें इनाममें दी हैं। अब कुछ ग्राहक लोग गाय खरीदनेको आये हैं। कहा, इन गायोंमें से जो गायें चाहो छांट लो और खरीद लो। १० गायें छाट लीं। कितने में दोगे? सौ सौ रु० में देंगे। ग्राहक बोले, चालीस चालीस रुपयेमें दोगे, ५० में दोगे? स्वप्न वाला बोला, खैर अस्सी अस्सीमें लगावो। अच्छा साठ-साठमें दे दो। नहीं भाई— अस्सी-अस्सीकी देंगे। अच्छा सत्तर सत्तर रुपयेमें दोगे। नहीं भाई। दोनोंमें जिदकी बात हो गयी। ग्राहक सत्तर-सत्तरमें लेनेको तैयार था और वह पुरुष अस्सी-अस्सीमें देनेको तैयार था। यह सब स्वप्नकी बातें कही जा रही हैं, कुछ ध्यान है ना? तो उस जिदकी होड़बाजीमें उस पुरुषकी आंखें खुल गई। देखा कि यहां तो एक भी गाय नहीं है। सो उसने आखें बन्द कर लीं और कहता है अच्छा भाई ले लो सत्तर-सत्तर रुपयेमें। चलो सत्तर-सत्तर रुपये ही दे

जावो। ऐसा ही हाल यहा है।

विकासका आवरण— मोहकी निद्रामें कितनी कल्पनाएँ जगती हैं। ओह, है तो यह अपने स्वरूपमे एकत्व रूप, जैसा है तैसा शुद्ध है, एक ज्ञान पुंज है। जिसमे सत्त्वकी ओरसे किसी प्रकारकी विडम्बना विपदा नहीं है, समस्त जगतसे न्यारा है, अनन्त आनन्दका स्वरूप है। सारी वात इसकी सही है, पर इस सही वातको न माननेके कारण यह गलतीमें इतना बढ़ गया है कि कल्याणकी इच्छा भी कदाचित् हो जाये, फिर भी ये सारी आकुलताएँ गलतियां और जो अन्तरङ्गमें मोहका आशय पड़ा हुआ है वे सब आत्माकी ओर नहीं आने देते।

गोल गोल भटकना— अहो, इस मोही जीवकी रात दिनकी कैसी चर्या है? घूम घामकर वहीं जैसे कोल्हूका वैल उसी स्थान पर आ जाता है। जहासे गया वहीं आया। ऐसी ही अज्ञानकी पट्टी आंखोंमें वधी है, इसे शुद्ध मार्ग नजरमें नहीं आ रहा है, गोल-गोल अपनेको घुमा रहा है। कितना गोल है? मोटा गोल तो चारों गतियां हैं। इस गतिसे गया, उस गतिमें आया, उससे गया उसमें आया। यह गोल गोल चक्कर चल रहा है। फिर उसके वाद तिर्यञ्चका गोल है, और ऐसे इस असमानजातीय द्रव्यपर्यायके गोलमें चक्कर लगा रहा है, फिर एक-एक पर्यायका भी बड़ा गोल है। जैसे आज मनुष्यपर्याय मिला तो मनुष्यका जीवन जितने समयका है उसमें भी यह गोल-गोल घूम रहा है, और तो जोने दो, चौबीस घंटेका भी बड़ा गोल है। इसी समय आप कल शास्त्र सुनने आये थे, इसी समय पर आप कल शास्त्र सुनने आयेंगे। आज जो दाल, रोटी, चावल खाया था, वही कल भी खाया था, वही कल भी खायेंगे, उसी समय पर दुकान जायेंगे, उन ही कामोंको उस ही समय पर आज भी करेंगे, जो कल किये थे। तो जब तक जिन्दा है तब तक वही वही चक्कर लगाता रहता है, कोल्हूके वैलकी नाई यह गोलगोल चक्कर लगा रहा है, पर जैसे पट्टी वंधे हुए वैलको कुछ भी भान नहीं हो पाता कि मैं गोल-गोल चक्कर लगा रहू, वह नो यही भ्रम किए हुए है कि मैं सीधा ही सीधा चल रहा हू, ऐसे ही इस अज्ञानी जीवको यह भान नहीं हो पाता है कि मैं गोल-गोल चक्कर काट रहा हू। वह तो जानता है कि मैं रोज-रोज नया-नया, उन्नतिका बढ़वारीका, सुखका काम कर रहा हू।

विभावभ्रमण— भावोंका गोल देखिए। पंचेन्द्रियके विषय और छठा मनका विषय इन ६ का गोल लग रहा है। इस ससारी प्राणीने इन ६ विषयोंके अतिरिक्त अन्य कुछ भी अनुभव किया है क्या? अब पेट

भर गया तो थोड़ीसी सुगंधित चीज भी चाहिए। इत्र कानमें लगाया, कोट के कालरमें लगाया। यह शौक पूरा किया तो अब धन कमानेकी लौ लगी है। चलो मनका विषय लगने लगा। अब सुन्दर रूप निहारने लगा, अब संगीतका विषय चाहिए। कितना गोरखधंधा कितना गोल चक्कर है, जिसमें लाभ तो कुछ नहीं मिलनेका है और अपने आपको बरबाद किए जा रहा है।

विकासके पीछे— जैसे देखते हैं कि कोई किसान जो मामूली पढ़ा लिखा भी नहीं है, वह अपनी खेती करके सूखा रूखा खाकर संतुष्ट बना रहता है, पर थोड़ा पढ़ लिख गया तो अब उसके संतोष नहीं रह पाता। अब असंतोष और तृष्णा बढने लगती है। कुछ थोड़ीसी नगरमें जानकारी हुई, प्रतिष्ठा हुई, कीर्ति मिली तो अब असंतोष और बढने लगा। और यह यश भी बढ़ गया तो बिल्कुल व्यर्थका है। आज जीवन है, थोडे समय बाद मरण हो गया तो अब क्या रहा इसके पास? किसीने कुछ प्रशंसा कर दिया तो उससे लाभ इसका क्या हो गया? कुछ भी तो यहां रहना नहीं है, और फिर कितनी संकुचित दृष्टि हो जाती है?

विश्वमें यशोविस्तारकी असंभवता— अरे तुझे यश चाहिए तो कहां चाहिए? सारी दुनियामें। यदि सारी दुनियामें तेरा यश फैल जाय तब तो अच्छा है, इस दुनियाके एक असंख्यातवें हिस्सेमें, जो समुद्रमें एक बूंद बराबर भी जगह नहीं है, इतनी जरासी जगहमें यश फैल गया तो क्या हो गया? उससे बचे हुए सारे असंख्यात लोक तो तेरे यशसे रहित हैं, इतनेमें क्यों झूठा संतोष मानता है? किसीका फैल भी सकता है क्या समस्त लोकमें यश। कल्पना कर लो, झूठ भी जबरदस्ती मान लो कि फैल गया सारे लोकमें यश तो भी उसकी दृष्टिमें तू दुःखी रहेगा, शान्त न रहेगा।

सर्व जीवोंमें यशोविस्तारकी असंभवता— तू किनमें यश फैलाना चाहता है? जीवोंमें। तो फैला लो सब जीवोंमें तो कुछ अच्छा भी है। पर जितने जीव हैं उसके असंख्यातवें भागकी संख्यामें भी तेरा यश फैल नहीं पाता। अनन्तानन्ते भाग प्रमाण जीवोंमें कदाचित् कुछ बात चलती है। जिसमें कुछ लोग अपनी कल्पनाके अनुसार प्रशंसाके शब्द गाने वाले हो जाते हैं। प्रथम तो सब मनुष्योंमें ही यश नहीं फैल सकता। आज जितने मनुष्योंका भूगोलमें परिचय किया है उन सबमें नहीं फैल सकता। मनुष्य ही इससे कई गुणा अधिक अभी पडे हुए हैं। और सब मनुष्योंमें यश भी नहीं फैलता और जितनेमें यश फैलाया है वह भी शुद्ध हो भला

होसो भी घात नहीं है। यशके साथ अपयश भी लगा हुआ है। कोई पुरुष ऐसा नहीं है जिसकी मात्र कीर्ति ही फैले। उसके साथमें अपयश भी लगा रहता है। हो कोई ऐसा तो बतावो जिसकी विशुद्ध कीर्ति हो। अच्छा यह एक भी गावमें भला हो ऐसा कोई बतावो। उसके साथ कुछ न कुछ अपयश भी लगा रहता है। सब मनुष्योंमें मेरा यश फैल गया, यह भी झूठी कल्पना है। यहां सब मनुष्य ही जीव हैं क्या ? अभी तो घोड़ा गधा आदि सारे जीव पड़े हुए हैं, वे भी तो तेरी कलाको अभी नहीं जानते हैं। कैसे तेरी वे प्रशंसा कर दें ? वे तो तेरी प्रशंसा करते ही नहीं हैं। उनसे भी तू अपनी प्रशंसा करवा।

अहितका अहितरूपसे निर्णयका प्रसाद— यह मनका विषय झूठा और अहितकारी है। यह मनुष्य यों हेरफेरकर उन्हीं विषयोंमें लगा रहता है और मानता यह है कि मैं उन्नतिका कितना सीधा काम कर रहा हूं ? पहिले तो यह ही निर्णय कर लो, हम जिस परिस्थितिमें रुचि रखते हैं, जिस भावमें बसा करते हैं वह भाव वह परिस्थिति सब विपदा है। इतना भी निर्णय नहीं कर सके तो आगे बढ़नेका कोई साधन नहीं रहेगा। पहिले जान तो लो सही बात। यह बात जब विदित होगी तब वस्तुके यथार्थस्वरूपका भान रहेगा।

पदार्थोंकी विविक्तता— प्रत्येक पदार्थ अपने ही स्वरूपमें मग्न है, अपने ही स्वरूपास्तित्वमें स्वतंत्र है। प्रत्येक पदार्थ अन्य समस्त पदार्थोंसे अत्यन्त भिन्न है। चाहे कोई जीव हो या अन्य अणु आदि अजीव हो, एक का स्वरूप किसी दूसरेमें प्रवेश नहीं कर सकता। हालांकि लोकमें प्रत्येक प्रदेशपर छहों-छहों द्रव्य बस रहे हैं। धर्मद्रव्य सारे लोकमें व्याप्त है। यों अधर्मद्रव्य भी और कालाणु कालद्रव्य प्रत्येक प्रदेशपर स्थित हैं। आकाश तो असीम है और जीव भी प्रत्येक प्रदेशमें है। जिसे हम पोल समझ रहे हैं कि यह भी कुछ नहीं है वहा भी अनन्त जीव बस रहे हैं और जहा ये सारे ससारी जीव हैं, उनके साथ ही अनन्त परमाणु लगे हैं। फिर और भी परमाणु हैं। यद्यपि लोकके प्रत्येक प्रदेश पर छहों द्रव्य विराज रहें हैं तथापि जैसे एक घरमें रहने वाले चार आदमियोंमें सबमें परस्परमें अनबन हो जाय तो एक घरमें रहते हुए भी एक दूसरेसे मिलते नहीं हैं। यह मोटी बात कही जा रही है। यों तो उस प्रदेशपर रहते हुए भी वे समस्त द्रव्य अनमिले हैं। हमारा द्रव्य हममें ही है, हमारी प्रत्येक द्रव्य, क्षेत्र, गुणकी परिणतिया हममें ही हैं, दूसरोंके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी परिणतिया उनकी उनमें ही हैं।

परसे हित पानेकी असंभवता— समस्त जीवोंका, समस्त पदार्थोंका उन उनका अपना अपना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उन-उनही में अपने खुदमें है। अब बतलावो कहां गुंजाइश है कि मैं किसी पदार्थका कुछ करूँ, भोगूँ, उसका स्वामी बनूँ, उस पर अपना अधिकार चलाऊँ—ऐसी रंच भी तो कुछ बात नहीं है। केवल कल्पनाएँ ही हो रही हैं। कोई परपदार्थ मेरे भोगनेमें नहीं आता। मैं ही भ्रमवश, अज्ञानवश कल्पनाएं उठाया करता हूं और उन कल्पनावोंसे सुख दुःख भोगा करता हूं। बाह्यपदार्थोंसे सुख दुःख मुझमें आ ही नहीं सकते। प्रथम तो इन समस्त अचेतन पदार्थोंमें स्वयमें भी सुख दुःख नहीं हैं। इन घड़ी, चौकी, गद्दा, तकिया आदिमें कहां सुख दुःख हैं? प्रत्येक पदार्थका सुखगुण उनका उनमें ही लीन है? उनसे बाहर आ ही नहीं सकता। कदाचित् आ जाय तो उसका अस्तित्व मिट गया और यों ही मुझसे मेरा कुछ कहीं चलो जाय, मेरा अस्तित्त्व मिटा, यों सारे विश्वका स्वरूप मिट जायेगा।

स्वरूपदर्शनकी कलाका प्रसाद— स्वरूपदर्शनकी सहज कला जिसे विदित हो जाय और अपने अस्तित्वके दृढ किलेमें अपने उपयोग राजाका निवास कर दे फिर कोई कष्ट ही नहीं है, चिन्ता ही नहीं है। इस आत्ममर्म का अपरिचयी पुरुष जीवित भी रहे तो क्या जीवन है, और जिसके आत्मबोध है उसका अपना आध्यात्मिक लौकिक जीवन आनन्दमय चला करता है। देखिये आध्यात्मिकता जिनके प्रकट हो उनका व्यवहारधर्म उनके लिए प्रगतिमें सहायक होता है और जब तक आध्यात्मिकता नहीं प्रकट हुई तब तक व्यवहारधर्म भी ठीक-ठीक नहीं चलता। जहा इस शुद्ध आत्मतत्त्वमें मग्न हो जायें वहा फिर यह व्यवहारधर्म भी रहता नहीं है, वह तो शुद्ध आनन्दमें मग्न हो रहा है।

निर्मोही ज्ञानीका विकास—एक कविने इस तथ्यको यों अलंकृत किया है कि एक ऐसा अध्यात्म पुरुष था कि उसे संध्या की भी खबर नहीं रही। सन्ध्या करनेके समय भी वह लेटा ही रहता था। एक पुरुषने प्रश्न किया— साधु महाराज! आप समय पर संध्या भी नहीं करते। तो उसकी ओरसे कविने उत्तर दिया—मृता मोहमयी माता ज्ञानपुत्रो ह्यजीजनत्। सूतकद्वयसंप्राप्ते कथं सन्ध्यामुपास्महे॥ भाई क्या करें, हमारे डबल सूतक लगे हैं। साधु कह रहा है, गृहस्थोंके पुत्र पैदा होनेका सूतक लग जाय तो उसे पूजन करना नहीं बताया, अभिषेक करना नहीं बताया। १० दिन गुजर जायें तब करे, और कोई मर जाये तो १२ दिन तक न करे, ऐसी रूढ़ि है ना? सूतक लगे हों तो ये पूजन आदिके कार्य न करें। साधु कहता है कि हमारे डबल

सूतक लगे हैं। क्या समझे? साधु महाराजके कोई मर गया है क्या? या साधुके कोई लड़का हो गया क्या? साधु कहता है सुनो, हमारी मोह-ममता रूपी माता तो मर गयी है, एक तो उसका सूतक लग रहा है और ज्ञानरूपी पुत्र पैदा हो गया है, एक उसका सूतक लग रहा है। अब ऐसे डबल सूतकमें हम कैसे सध्या करें? भाव उसका क्या है कि जहा मोह रच भी नहीं रहता, जहा रागद्वेष मोह ममता बिलकुल नहीं रहते और केवल ज्ञान-प्रकाश ही प्रकाश रहे, वहां विकल्प कैसे चल सकता है?

अपूर्व परमार्थलाभका कर्तव्य— यह स्थिति कैसे हो? जैसे कुछ न कुछ चित्तमें हठ बनाये हैं ना, कि मुझे तो लखपति बनना है, यह हठ बनाये है कि मुझे तो ऐसी स्थिति पाना है। कुछ भान होगा। ऐसे ही जिसके निर्विकल्प भावके पानेका प्रयत्न हो, भाव हो, वह इस स्थितिको पा लेगा। जीवनका पूर्णलाभ तो उसने ही पाया है। बाकी यहा तो यही ढला चला चल रहा है। जब यह जीव, मनुष्य सो जाता है तो मृतकवत् हो जाता है और जब जग जाता है तब मानो जीवनसा पाता है।' ऐसा ही रोज-रोज लग रहा है। ऐसे इस शरीरमें कितने काल तक ठहरना है? जो नित्य छिपे उसके रहनेका भरोसा नहीं है। यह शीघ्र ही शरीर छोड़ेगा, ऐसा निश्चय करके कोई परमार्थ कार्य करलो। इस विनश्वर समागमका ऐसा सदुपयोग करो कि अविनश्वर अपूर्व परमात्मतत्त्वका लाभ मिल जाय।

सत्यं वदात्र यदि जन्मनि बन्धुकृत्य-
माप्त त्वया किमपि बन्धुजनाद्धितार्थम्।
एतावदेव परमस्ति मृतस्य पश्चात्
सभूय कायमहितं तव भस्मयंति ॥८३॥

बन्धुजनोंसे हितकी अनाशा— हे बन्धु! तू सच तो बता कि इस जगत्में तू जो बान्धवजनोंसे इतना नेह लगाता है, इसके फलमें आखिर ये बन्धुजन तुम्हें लाभ क्या पहुचायेंगे? विचार करने पर यह निर्णय होगा कि कुटुम्बसे तो मेरा हित होता हुआ न मालूम पडेगा। केवल इतना उपकार जरूर कुटुम्बीजनोंका होगा कि मरे पीछे इकट्ठे होकर मेरा बैरी जो यह शरीर है इसको शीघ्र जला कर भस्म कर देंगे। कवि अलंकारमें यह बता रहा है। इसका मतलब क्या है कि बन्धुजनोंसे तुझे कुछ भी प्राप्त न होगा। बात तो सीधी यह कही गई है कि इन बन्धुजनोंसे तुझे कुछ भी प्राप्त न होगा। अन्तमें ये केवल इतना ही करेंगे कि इस शरीरको जलाकर ये भस्म कर देंगे। यह भी उपकारके लिए नहीं है, किन्तु कल्पना करो कि यदि किसी के मरे शरीरको भस्म न किया जाय, यों ही पड़ा रहने दिया जाय तो प्रजा

में जनतामें कितना कष्ट बर्तेगा ? लोग दुर्गन्धके मारे परेशान भी होंगे, बीमार भी होंगे, इस कारण शरीरको भस्म करनेकी जो प्रथा है यह भी कुछ बन्धुके उपकारके लिए नहीं है, किन्तु अपनी व्यवस्था और सुविधाके लिए है ।

अन्तिम बेअदबी— किसी कविने लिखा है कि जो लोग अपने मित्रजनोंका, बन्धुजनोंका अधिक विनय सत्कार करते हैं, अन्तमें तो वे भी विलक्षण अविनय ही करेंगे । इस बातको एक कविने अपनी भाषामें यों कहा है—

"यार मरते वक्त होगा एक बेअदबी का कार ।
यार तो पैदल चलेंगे, हम जनाजे पर सवार ॥"

हे मित्र ! जीवन भर मैंने तुम्हारी कभी बेअदबी नहीं की, पर मरते वक्त याने जब मैं मरूँगा, उस वक्त मैं तुम्हारी बेअदबी जरूर करूँगा । कैसी बेअदबी ? कि तुम लोग तो पैदल चलोगे और हम तुम्हारे सिर पर चढ़कर जायेंगे । इसका भाव यह है कि कितनी भी किसीसे घनिष्ट मित्रता हो, पर अन्तमें विछोह होगा । जो समागममें अनुरक्त रहता है, वह विछोहके समयमें बहुत दुखी होगा ।

विपरीत श्रद्धाकी हेयता— भैया ! जिन बन्धुजनोंके पीछे कुटुम्बीजनोंके लिए तू इतना परेशान हो रहा है, ये बन्धुजन तेरा क्या काम कर देंगे, क्या लाभ मिलेगा, क्या शान्ति मिलेगी ? अरे वे तो इतना ही करेंगे कि इस शरीरको जला देंगे । इतनेके अतिरिक्त और कुछ भी तुम्हारा लाभ करनेमें ये बन्धुजन समर्थ नहीं हैं । जरा स्वरूपदृष्टि करके तो सोचो— जगत्में जितने भी जीव हैं वे सब जीव मेरे ही समान स्वरूप वाले हैं । स्वरूपदृष्टिसे मुझमें और अन्य समस्त जीवोंमें कोई अन्तर नहीं है, पर सत्वकी दृष्टिसे, अनुभवन और व्यक्तित्वकी दृष्टिसे प्रत्येक जीव प्रत्येक जीवसे अत्यन्त भिन्न हैं । अब उन सब जीवोंमें से परिवारके दो चार जीवों को अपना मान लेगा और अन्य समस्त जीवोंको पराया मान लेना, यह तो मनकी स्वच्छन्ताकी बात है, वस्तुतः तो भिन्न हैं तो सब हैं, समान हैं तो सब हैं । तू किसी भी जीवमें आसक्त मत हो, यह मेरा है, ऐसी बुद्धिको छोड़ दो । परिस्थितिमें जो करना पड़ता है ठीक है, पर श्रद्धा विपरीत हो गई है तो उस विपरीत श्रद्धाका फल कोई दूसरा भोगने न आयेगा । जो विपरीत यत्न करेगा वही रोवेगा, कोई दूसरा नहीं ।

समागमका वियोग— है क्या जीवनमें ? जिन्दा हुए, बड़े बने, कुछ कला सीखी, कुछ धन कमाया, अन्तमें बूढ़े हुए, शिथिल हुए, मर गए, चले

गए, सबकी यही पद्धति है। एकका मर गया भाई, तो लोग आये समझाने। तो कोई यह भी पूछता है कि तुम्हारे भाई साहब क्या कर गये दान पुण्य वगैरह? तो भाई उत्तर देता है – 'क्या बतायें यार क्या कारोनुमाया कर गए। बी. ए. किया, नौकर हुए, पेन्शन हुई और मर गए।' एक सर्विस वालोंकी ही क्या बात, सभीकी यही कहानी है। कुछ विद्या सीखी, व्यापार की कला सीखी, कुछ धन कमाया, सेठ जी बने, अन्तमें सब कुछ पुत्रोंको बांटा, सौंपा और मर गए, क्या साथ ले गए? सो यहाके समागमोंकी ओर से कुछ उत्तर नहीं है इसका। हां किसीने अपने जीवनमें परिणाम निर्मल रक्खा हो, उससे जो धर्म और पुण्य किया वह साथ ले जायेगा, पर यहाके समागम जोड़कर कोई चाहे कि हम कुछ साथ ले जायें, सो नहीं हो सकता। जिस कमीजको पहिने हुए मरे हैं वह कमीज भी न जायेगी और कुछ धन पैसा-धेला छदाम भी साथ न जायेगा। कैसा साफ निकल जाता है यह? निकल जानेके बाद फिर यहाके समागमोंका क्या रहा इसके पास?

विघटन-- भैया, किसके लिए इतने मनका सत्य कर रहे हो? ये बन्धुजन जिनके लिए निरन्तर पीडित होकर और अपनेको भी कष्ट में डालकर इतना अथक परिश्रम कर रहे हो, ये बन्धुजन केवल इतने ही काम आयेंगे कि मर जाने पर इस शरीरको जल्दी जला देंगे। इससे आगे और कुछ काम न होगा। जगत्में ये जीव जन्मते हैं मरते हैं, पर मरण उन्हींका सफल है, जीवन उनका ही सफल है— जो ऐसे उपाय बनाते जायें कि जिन उपायोंसे यह जीव संसारके आवागमनसे सदाके लिए मुक्त हो जाये, अन्यथा यह जन्तुका ही जन्तु रहेगा। एक मित्र अपने बीमार मित्रको देखने शामको गया। वह बहुत कठिन बीमार था। बिस्तरसे भी नहीं उठा जाता था, करवट भी नहीं बदल सकता था। मित्र पूछता है, कहो मित्र कैसी दशा है? क्या स्थिति है? तो बीमार मित्रने कहा कि क्या बताएँ, बिस्तरसे भी नहीं उठा जाता, अत्यन्त कमजोर हालत है। कुछ बातें करके आगन्तुक मित्र अपने घर चला गया। रात व्यतीत होनेके बाद सुबह दोपहरके बीचमें वह गुजर गया। अब पुनः वह मित्र शामको आया तो मित्र पूछता है मित्रके भाईसे, कहो जी क्या हालत है? तो वह कहता है कि वह तो दुनियासे भी चल दिया याने मर गया। तो वह झुंझलाकर बोला कि "कल तक तो यों कहते थे कि बिस्तरसे उठा जाता नहीं, आज दुनियासे भी चल देनेकी ताकत कहासे आ गयी?"

जीवन और मरणकी दशायें— जीवन और मरण ये दोनों रहटकी घडियोंकी तरह चलते हैं। जैसे रहटकी घड़ी भरी और थोड़ी देरमें रीति

हो गई, फिर भरी फिर रीति हो गई। जैसे कोई वृक्षसे फल टूटा तो टूटते ही जमीन पर ही तो वह आयेगा, टूटकर तो टूटनेके बाद जमीन पर गिरने के बीचमें वह फल कितनी देर रहेगा? आधा या एक दो सेकेण्ड भी न रहेगा। यों ही समझिये कि जन्म हुआ तब यह टूटा और मरणकी जमीन पर आ गया। इस बीचमें हम आपका कितना समय है? अभी लग रहा है है कि समय खूब है। अरे जितना समय व्यतीत हो गया, हम आपके ४०, ५० वर्ष व्यतीत हुए ऐसा लग रहा है कि यह समय कहांसे बीत गया इतनी जल्दी, किन्तु आजका १ दिन बहुत बड़ा लग रहा है। अभी तो ६ घन्टे और हैं, आठ घन्टे और पडे हैं, हो जायेगा काम। आजका दिन बड़ा लम्बा लग रहा है और बीतें हुए ४०, ५० वर्षका समय ऐसे बीत गया कि पता नहीं चलता कि ये वर्ष कहांसे गुजर गये? अरे जैसे ये चालीस पचास वर्ष, चालीस पचास मिनट जैसे गुजर गये, यों ही अब रही सही थोड़ीसी आयु यह तो शीघ्र ही गुजर जायेगी। इस दुर्लभ जीवनको पाकर कोई अनुपम कार्य कर लें।

सम्यक्भावकी आदेयता— देखो भैया! अपूर्व बात प्राप्त करनेमें कोई कठिनाई भी नहीं है। बस थोड़ी ज्ञान विवेक दृष्टि भर चाहिए। काम जो कर रहे हो, सो होने दो। व्यापार आदि अन्य अन्य काम, पर सही को जाननेमें भी क्या कुछ कठिनाई आती है? मैं आत्मा चेतन हूं, अनादि काल से यह उपाधि सहित है, शरीर और कर्म इसके संबन्धमें बने हुए हैं। इतने पर भी आत्मा अपने स्वरूपसे आत्मामात्र है। ये जड़ कर्म परमाणु अपने स्वरूपसे जड़ हैं, यह शरीर परमाणु यह भी जड़ है, मैं सबके बीच सबसे न्यारा केवल चैतन्यस्वभावमात्र हूं। धन्य हैं वे सद्गृहस्थ जो सारे काम भी करते जा रहे हैं और अपनेको न्यारा ज्ञानस्वरूप निरखते जा रहे हैं। वे तो सम्यग्दृष्टी हैं, पूज्य हैं।

कृतज्ञता— एक कथानक आता है कि एक सेठने मरते हुए बैलको णमोकारमंत्र दिया और कुछ समाधान कराया। वह बैल मरकर स्वर्गमें देव हुआ। देव होकर उसने अवधिज्ञानसे विचार किया कि मुझे अमुक सेठकी कृपासे यह सद्गति मिली है, देव नीचे आता है, सेठको वन्दना करके के लिए। सेठ एक मन्दिरमें था, वहीं पासमें एक मुनि महाराज बैठे हुए थे। देव आया, उसने सबसे पहिले सेठको वन्दन किया और पीछे मुनिको वन्दन किया, लोग बडे आश्चर्यमें पडे। तो मुनि महाराज स्वयं अवधिज्ञानी थे। उन्होंने कहा कि भाई! इस जीवका साक्षात् उपकार इस सेठके निमित्तसे ही हुआ है, इस कारण कृतज्ञ होकर इस सम्यग्दृष्टी परोपकारी श्रावकका वंदन

किया है।

यथार्थज्ञानका आन्तरिक सुफल— भैया! सम्यक्त्व उत्पन्न हो जाए, इसके समान और कोई वैभव नहीं है। अरे घरगृहस्थीके कमानेके सारे धधे करते रहो, पर जो यथार्थ बात हैं, उसको समझते रहनेमें क्या कठिनाई हो रही है? यदि कुछ समय आत्मदृष्टिमें व्यतीत न हुआ तो वह जीवन क्या जीवन है? एक बार किसी भी क्षण यदि एक आत्माकी झलक हो जाए तो उससे हमें केवल शान्तिके लिए ही उपयोग मिलता हो, इतना ही नहीं, किंतु जब तक इस लोकमें रहना शेष रह गया है, तब तक उसकी बुद्धि लौकिक कामोंमें व्यापार आदिकमें भी प्रखर रूपसे चलने लगती है। उसका सबसे मुख्य काम केवल आत्मसाधना ही है। सभी रागी मनुष्य ज्ञान वैराग्यकी धुनको बनावें।

ज्ञानियोंके आत्मसाधनाकी मुख्यता— साधुओंको तो आरम्भ और परिग्रहकी किल्लत नहीं है, अत वह ज्ञानसाधनाकी तो निरन्तर धुन बना सकता है, परन्तु गृहस्थको तो आजीविकाका कार्य भी अत्यन्त आवश्यक है गृहस्थके रहते हुए। ठीक है उसे भी करें। केवल दो ही प्रोग्राम रक्खें अपने और कुटुम्बके शरीरके पालन पोषणके लिए— धनका अर्जन करना और धन कमाना, पर यहा केवल दो ही काम कौन करता है? बीचमें पचासों काम मान लेते हैं, अनेक राग, द्वेष और मोहकी बातें करते हैं और इतना ही नहीं, व्यर्थकी गप्पों सप्पोंमें अपना घण्टोंका समय बरबाद कर देते हैं। अरे! काम तो इतना ही करो अजीविकाके लिए, धन कमाओ और धर्म करो। धनसे जिस-जिससे सम्बन्ध है, उस-उससे सद्व्यवहार करलो, परन्तु ऐसे कामोंमें तो न पढ़ो, जो व्यर्थके काम हैं, जिनका न आजीविकासे सबध है और न धर्मसे सम्बन्ध है, जिनमें तुम घुलमिलकर अपना मन बहला रहे हो, वे परिजन, इष्टजन, बन्धुजन तुम्हारे आत्माके काम न आयेंगे। इस पर गभीर दृष्टिसे निर्णय तो करो।

पापका भागी अन्य नहीं—बाल्मीकि ऋषिकी कथामें बताया है कि वे पहिले समयमें लुटेरे थे। एक बार कोई साधु उस रास्तेसे निकला। बाल्मीकि ने पूछा कि क्या है तेरे पास? साधु बोला कि हमारे पास यह सोंटा और कमण्डल व कम्बल है। बाल्मीकिने कहा कि जो कुछ हो रख दो। साधुने कहा कि हे बाल्मीकि! हमारा एक प्रश्न है, तुम घरके सब लोगोंसे उत्तर ले आवो। यह सब कुछ लेते जाओ या यहीं रख जावो, हम यहीं बैठे मिलेंगे। बाल्मीकिने पूछा कि क्या पूछ आयें महाराज! साधुने कहा कि तुम सबसे यह पूछ आवो कि तुम्हारे लिए मैं सभी मुसाफिरोंको मार पीटकर धनको

कमाता हूं, अन्याय करता हूं तो इससे जो पाप बंधेंगे, उनको तुम बांटोगे या नहीं ?

भैया ! पापोंका बांट लेना तो दूर रहा, साधारणतया सज्जन लोगों को पापोको स्वीकार कर लेनेमें भी डर लगता है। सो सभीने यों कहा कि हम पाप न बांटेंगे। उन पापोका फल तो तुम अकेले ही भोगोगे। बालमीकिके कुछ ज्ञान जगा और साधु महाराजके पास आते आते बहुत वैराग्य बढ गया। साधुसे बाल्मीकिने कहा कि महाराज ! जो कुछ भी हम पाप करते हैं, वे कोई भी बांटनेको तैयार नहीं है। हमें तो आप जैसा बनना है, मुझे अब किसी भी वस्तुसे कुछ प्रयोजन नहीं है। अन्तमें वह एक संन्यासी हुए और कुछ साहित्यिक रचनाएं भी उन्होंने कीं।

परिणामोंकी निर्मलताकी आवश्यकता— सोच लीजिए कि जिस पदार्थमे जिस प्रकारसे जो परिणमन होता है, उस परिणमनको दूसरे कैसे बांटेंगे ? हम पापपरिणाम करें और दूसरे बांट लें, यह कभी नहीं, हो ही नहीं सकता। खुदकी करनी खुदको ही भरनी पडेगी, दूसरा कोई भरने न आएगा और जो कुछ हम पाप अथवा कर्म करते हैं, बड़ी मुश्किलसे टल सकें तो टल जायें, अन्यथा इनका टलना कठिन है। हमें अपने परिणामों की निर्मलता बनाने की ओर ध्यान रखना चाहिए। वर्तमानमें कुछ थोड़ासा धन समागम मिल जाए तो यह बड़ी बात नहीं है, किन्तु अपना परिणाम न्याययुक्त बना रहे हैं, यह बड़ी बात है। धर्म वही कर सकता है, जो दुनियाके लिए अपनेको मरा हुआ समझ ले। चेतो और अपने आत्महितके कार्यमे लगो। आत्महित यही है अपने सहजस्वरूपको पहिचानों, उसका ही उपयोग करो और उस ज्ञानपुंजके उपयोग में ही लीन रहकर स्थिर रहो।

जन्मसन्तानसम्पादिविवाहादिविधायिनः।
स्वाः परेऽस्य सकृत्प्राणहारिणो न परे परे ॥८४॥

जीवके बैरी— इस जीवका वास्तविक बैरी वह है जो इस जीवको जन्म मरणकी संतान बढ़ानेमें कारण बने। संक्लेश, विह्वलता आदि संकटों का जो कारण बनें उसको ही तो वास्तवमें बैरी कहेंगे। अब लौकिकजनों द्वारा माने गये बैरियोंकी और ज्ञानीजनों द्वारा देखे गए बैरियोंकी तुलना करिए। बालकके माता पिता, बन्धुजन, इष्टजन और रिश्तेदार उस बालक की आत्मा के प्रति क्या अच्छे या बुरे कर्तव्य करते हैं? इसको जरा ध्यानसे सुनिये।

हितकारी माता पिता— बालकके आत्माका हित हो, इस प्रकारक

कर्तव्य माता पिता करे, तभी तो वे हितू होंगे, क्योंकि सब कुछ सुख दुख और सभी अनुभव एक ज्ञानकी दशा पर निर्भर हैं। जिस प्रकार का ज्ञान किया जाये, उस प्रकारके सुख दुख आदिक अनुभवमें आते हैं। यदि यह ज्ञान अपने आपके सही स्वरूपको जाननेमें लगे तो उस ज्ञानमात्र निजतत्त्व के अनुभव होनेमें सर्वकल्याण ही कल्याण होता है। कर्म झड़ते हैं, कर्म रुकते हैं, शाति और सतोषका अनुभव होता है। तब ऐसे कार्योंमें अपने को लगावें तब तो माता पिता और इष्टजनोंने मेरा हित किया, यह तो अवश्य समझिये।

अकलक और निकलकका हित— एक बार अकलंक और निकलक देवके माता पिता अष्टाह्निकाके दिनोंमें किसी तीर्थराजके दर्शन करने गए। एक मुनि महाराज वहां पर बैठे हुए थे। माता पिताने अष्टाह्निकामें मुनिराजसे ब्रह्मचर्य व्रतका नियम लिया और साथमें दो छोटे बालक थे। सो ऐसा प्रेम होता ही है कि नियमकी बात, कुछ धर्मकी बात बच्चोंसे कह दी जाती है। तो माता पिताने कहा कि बेटा! तुम्हारा भी यही नियम रहे ब्रह्मचर्यका। बालक कुछ समझदार थे। नियम ले लिया। जब अष्टाह्निका गुजर गयी, कुछ और महीने गुजर गए तो माता पिताने उन दो बालकोंकी शादीकी बात की। वे दोनों बालक कहते हैं कि आप लोगोंने तो हमें ब्रह्मचर्यका नियम दिलवाया है, अब तो हम ब्रह्मचारी ही रहेंगे। तो मा बापने बताया कि वह नियम तो केवल अष्टाह्निका भरके लिए था। अब उन दोनों बालकोंने यह बताया कि हमने तो उस समय आजीवन ब्रह्मचर्यसे रहनेके लिए ही समझा था। इसलिए अब तो हम आजीवन ब्रह्मचारी रहेंगे। माता पिता बड़े खुश हुए।

ससारवृद्धिके कारणभूत बन्धुजन— यह जीव ज्ञानमात्र है, पर यह लौकिक सकटोंका मूल जो राग मोह है, इसका विनाश हो— इस प्रकारकी विधि कोई बनाये, तब तो समझिये कि परिवारजनोंके बालकके प्रति मित्रता का काम किया है, पर करते क्या हैं लोग, प्रथम तो विद्या पढ़ानेकी बात भी आए तो धनार्जन करनेकी विद्या पढ़ायेंगे। बादमें विवाह आदिकके कार्य कर देते हैं। ये जो सब सयोग लगाये हैं, ये ससार बढ़ाने वाले हैं या मोक्ष पहुचाने वाले हैं। ये सब योग ससारको बढ़ाने वाले हैं। तो जो जन्म मरण रूप संसारकी सतानको बढ़ाने वाले विवाह आदिक कार्योंको करें, इस प्रकार के जन तो इस जीवके वैरी हैं। एक बहुत गम्भीरतासे और अपने आपको सदाके लिए कैसे कल्याण हो, इस दृष्टिको लेकर इस बातको सुनिये। यह बात बिल्कुल सही मालूम पडेगी। हालाकि परिवारजन कोई द्वेष रखकर

ऐसा वैरका काम नहीं करते, वे तो अपनी बुद्धिके माफिक भलाई ही समझ कर बच्चोंका सुख और हित समझकर किया करते हैं, पर उसका फल क्या होता है कि जन्म मरण रूप संसारका बढाना होता है। भला ही समझा पुत्रको उन्होंने किसी वस्तुसे, पर यहा तो इस जीवको उसका कुफल भोगना पड़ा। यह जन्म मरण करानेका कारण बनता है।

शस्त्रघातक वैरीसे बरबादीका अनियम— कोई दुश्मन हो, शस्त्र लेकर आया हो, प्राणघात कर रहा हो तो उस वैरी ने प्रथम तो एक बार ही उसका प्राण हना, और दूसरे जिसका प्राण हना जा रहा है वह यदि कुछ शान्ति और समताका अभ्यासी बनता है, अपने शुद्ध परिणामोंका स्वागत करता है तो कई भवोंके बाधे हुए पापकर्म उसने दूर कर डाले। किन्तु हँसी खुशीसे, विवाह आदिक अनेक झंझटोंमें लगा तो सारे परिजन इस जीवके ऐसे वैरी जैसे काम कर रहे हैं कि इसको तो अनेक बार जन्म मरण धारण करना पड़ेगा, क्योंकि इसने स्वयं बाह्यदृष्टि करके, पापपरिणाम करके कर्मोंका बन्धन किया। जब बहुत समय तक ससारमें रहना पडेगा, जन्म लेना पड़ेगा तो इसका अर्थ है कि मारनेको जो शस्त्र लेकर वैरी आया है वह तो उसका एक बार ही प्राण हरने का कारण बना, किन्तु जो मोह और राग करने वाले परिजन हैं ये तो अनेक बार प्राण हरनेके, मरण होनेके कारण बनते हैं। इसलिए कहा जा रहा है कि तुम परिजनोंमे मोह मत करो, यहां भी अपने ज्ञानबलसे यथार्थ तत्त्वके ज्ञाता बने रहो।

धर्म और धर्ममयकी मगलता— हे भव्यात्मन्! इस जीवको केवल अपने आपका धर्म ही शरण है। दर्शन और पूजनसे पहिले पढ़ते हैं— चत्तारि मगल। मंगल चार हैं। कौन से ४ मंगल हैं? अरहत प्रभु मगल हैं, सिद्ध प्रभु मंगल हैं, साधु मगल हैं और केवलीप्रणीत धर्म मगल हैं। अरहंत मगल हैं क्योंकि वे वीतराग सर्वज्ञ हैं, शुद्ध ज्ञान विकास वाले हैं। भले ही चारों अघातिया कर्म लगे होनेके निमित्तसे उनके अभी शरीरमे बन्धन है, फिर भी भावबन्धन रंच नहीं रहा। और ऐसा अपूर्व केवलज्ञान प्रकट हुआ है कि समस्त लोकालोक उनके ज्ञानमें प्रतिबिम्बित हुआ है, ऐसे शुद्ध वीतराग सर्वज्ञ परमेष्ठीकी भक्ति करने योग्य है। अपना ज्ञान निर्मल करें तब ही तो भक्ति कर सकते हैं और प्रभुकी भक्तिके उपयोगके प्रसादसे उसका ज्ञान भी निर्मलता की ओर बढ़ता जाता है। जब ज्ञान निर्मल हो, रागद्वेषकी छाट हो उस समय भव-भवके बांधे हुए कर्म स्वयं खिर जाते हैं और विशुद्ध आत्मीय आनन्द उत्पन्न होता है।

मंगलका अर्थ— मंगल किसे कहते हैं? मंगलमें २ शब्द हैं- मंग ल

अथवम गाल । दो तरहके अर्थ होंगे, मंग का अर्थ है सुख। लोग कहते हैं चगे मगे। चगेका अर्थ है स्वस्थ, मंगेका अर्थ है सुखी। जो मंगको ला देवे उसे मगल कहते हैं। दूसरा अर्थ है, म गल। म नाम पापका है। जो पापको गला दे, नष्ट करदे उसे मगल कहते हैं। लोकव्यवहारमें मगलकलश भी चलता है। कोई शुभ कार्य हो तो मंगल कलश रख देते हैं। वह कलश क्या मगल होगा? मगल तो वह चीज है जो हमारी सुखकी सहयोगी हो। और दु खकी दूर करनहारी हो। फिर कलशमें मंगलकी रूढि क्यों हो गयी? इसका कारण यह है कि पानीसे भरे हुए कलशको देखकर यह निर्णय होता है कि ज्यों कलश पूर्ण जलयुक्त है, पूर्ण घन है यों ही यह आत्मा पूर्ण ज्ञानघन है, पूर्णज्ञान युक्त है। वह कलश अपने आत्माकी सुध कराता है। इस कारण वह कलश मंगल माना गया है। पानीसे भरे हुए कलशके अन्दर रंच भी जगह खाली नहीं रहती है। जैसे मटके में लड्डू भर दिये तो उसके बीच-बीचमें जगह खाली रहती है, ऐसी बात जलसे भरे हुए घडेके अन्दर नहीं होती है। उसमें तो जल लबालब परिपूर्ण भरा हुआ होता है। और वह नवीन मिट्टीका घड़ा है। जो भीतर भरा है पानी, वह पानी पूरी मिट्टीमें भी समाया हुआ है। यह कलश अपने आपकी आत्माकी सुध दिलाता है। मेरे में ज्ञान इसी तरह परिपूर्ण भरा हुआ है। बीचमें कोई प्रदेश ऐसा नहीं है जहा ज्ञान न हो। जीव जितने विष्कम्भको लिए हुए है उसमें प्रत्येक प्रदेशमें ज्ञान भरा हुआ है।

आत्माकी ज्ञानघनता-- इस आत्माको ज्ञानघन बोलते हैं। घनका अर्थ वजनदार नहीं, मोटा नहीं। घनका अर्थ है द्वितीय वस्तुका जिसमें अभाव हो। जैसे कोई शीशमकी लकड़ी, सागौनकी लकडी बड़ी ठोस है, सारभूत है तो कहते हैं कि इस लकडीमें सार अधिक है। इसका अर्थ क्या है कि इस लकड़ीमें लकड़ीके तत्त्वको छोड़कर अन्य कोई तत्त्व नहीं पड़ा है। अन्य कोई तत्त्व पड़ जाय तो सार नहीं रह सकता। घुन हो, कीडा हो, पोल हो तो उसे सार नहीं कहते। सार तो उसे कहते हैं जिसमें द्वितीय द्रव्य का अभाव हो। यह आत्मा ज्ञानघन है। ज्ञानके अतिरिक्त अन्य कोई पर-तत्त्व इसमें नहीं है। यह कलश अपने ज्ञानस्वरूपकी हमें याद दिलाता है, और ज्ञानस्वरूपका स्मरण मगल है, यों उपचारसे वह कलश भी मगल है।

मगलचतुष्क— चार मगल हैं, अरहंत प्रभु मंगल हैं और यह ही अरहत प्रभु जब चार अघातिया कर्मोंका विनाश करके शरीररहित हो जाते हैं, केवलज्ञानपु ज आत्मा ही रहता है उन्हें सिद्ध कहते हैं। आत्माका परि-पूर्ण विशुद्ध अन्तर बाह्य सर्वयत्नोंके सम्पर्कसे रहित यह शुद्धस्वरूप है। ऐसा

ही स्वरूप हम आप सबका है। पर उसका विश्वास न करने से बाह्यकी दृष्टि करके जड़ विभूतिके प्रति भिखारी बन जाता है। जीवन चलाने योग्य सब कुछ मिला है तब भी संतोष नहीं कर सकते। सिद्ध प्रभु मंगल हैं। ये शाश्वत निराकुल सुखमें ही मग्न रहेंगे। कर्म बन्धनसे कभी भी लिप्त न होंगे। मंगल ४ हैं जिनमें दो तो बताये हैं अरहंत सिद्ध। ये देव कहलाते हैं। तीसरे मंगल हैं साधु। साधु कहनेमें आचार्य, उपाध्याय, साधु तीनोंको लेना। ये साधु पुरुष संसार, शरीर और भोगोंसे विरक्त हैं। अपने आपके ज्ञानस्वरूपकी दृष्टिमें निरत रहा करते हैं। ये समस्त जीवोंमें समता भाव रखते हैं। कोई वन्दन कर रहा हो तो, कोई गाली दे रहा हो तो, कोई लाठी से पीट रहा हो तो, सब जीवोंमें उनके समता रहती है। इसी लिए उनकी इतनी पूज्यता है। ये सब धर्मके प्रसादसे मंगल हैं। धर्म मंगल है।

साधुकी अविचलितता— राजा श्रेणिकके समयमें एक घटना घटी, जिससे श्रेणिक राजाके पतनका और उद्धारका दोनोंका सम्बन्ध है। पूर्व कालमें अपने जीवनके पूर्वार्द्धमें श्रेणिक बौद्ध थे और उनकी पत्नि चेलना जैन थी। कभी कभी इन दोनोंमें अपने-अपने धर्मके प्रति विवाद हो जाता था। एक बार श्रेणिकके धर्मविवादमें कहीं हार मानकर बदला चुकानेके लिए साधुके अपमानका प्रयत्न किया। श्रेणिक जंगलमें जा रहे थे। एक जगह एक मुनि महाराज बैठे हुए थे। पास ही वहीं एक मरा हुआ सर्प पड़ा था। सो उस ही सर्पको उठाकर मुनिके गलेमें डाल दिया और चले आये। इससे उसे ७वें नरकका बन्ध हुआ। दो तीन दिन बाद कुछ जिकर हुआ। जब जिस ओर दृष्टि नहीं है तब वहां कैसे मनमें यह आ गया कि उनको बड़ा कष्ट होगा। दो तीन दिनके बाद चेलनासे बात चली। चेलना साधुवोंके गुणोंको बखान रही थी। तब श्रेणिक बोले कि हमने तुम्हारे साधुके ऊपर मरा सांप डाल दिया है। तो चेलनाने कहा— अरे तुमने बड़ा अनर्थ किया। अभी तक साधु महाराज निराहार बैठे होंगे। तो श्रेणिकने कहा— अरे वह तो पहिले ही सांपको फेंककर उठकर चले गए होंगे। इस तरहसे दो तीन दिन कौन भूखा पड़ा रहेगा? तो चेलनाने कहा कि ऐसा हो ही नहीं सकता कि साधु महाराज उसे फेंककर चले गए होंगे। वह तो उसी स्थान पर ध्यानावस्थामें बैठे होंगे। दोनों चले मुनि महाराजको देखने। वहां जाकर देखा तो मुनि महाराज ध्यानस्थ बैठे हुऐ थे। मरा हुआ सांप गलेमें पड़ा हुआ था। बहुतसी चींटियां सारे शरीरमें रेंग रही थीं।

समताके दर्शनसे श्रेणिकका उद्धार— इस उपसर्गके निवारणमें चेलनाने क्या किया कि नीचे शक्कर बिखेर दी। सारी चींटियां नीचे उतर

गयीं, तब सांपको अलग कर दिया। कुछ ही समय बाद मुनिराजकी आंखें खुलीं। वे उत्कृष्ट ज्ञानी थे। दोनोंको मुनिराजने आशीर्वाद दिया— उभयो' धर्मवृद्धिरस्तु। तुम दोनोंको धर्मवृद्धि हो। अब तो राजा श्रेणिकको कुछ विवेक जगा। सोचा कि मैंने इतना बड़ा पाप किया, फिर भी मुझे ऐसा आशीर्वाद दिया। हम दोनोंके प्रति मुनिराजका यह भी भाव नहीं हुआ कि इस चेलनाने तो उपसर्ग दूर किया है, धर्मात्मा है, साधुभक्तिसे ओतप्रोत है तो इसकी ओर कुछ प्रसन्नतासे देख भी लें और इसे पहिले आशीर्वाद दें, सो भी नहीं। उन मुनिराजकी दृष्टिमें वे दोनों एक समान थे। अब तो श्रेणिक यह सोचने लगा कि मैंने ऐसे उदार महान् योगिराजको ऐसा उपसर्ग किया। मुझे तो जीवित रहना ही न चाहिए। विचार करने लगा कि मैं अपनी ही तलवारसे अपनी गरदन इसी समय उड़ा दूँ, ऐसे पापीको जीनेका अधिकार नहीं है। मुनिराज बोले— अरे श्रेणिक! यह क्या विचार तुम करते हो? ये तो कर्मोंके उदय हैं। आत्मा तो स्वभावतः पवित्र है। तुम आत्महत्या करना क्यों विचार रहे हो? लो मनकी बातको मुनिराजने बता दिया। इतनी बात सुनकर अब श्रेणिक और धर्मानुरागी हुआ। अब साधु महाराजके प्रति श्रेणिकके इतनी भक्ति जगी कि मन, सम्पदा, विषय, कषाय के सर्वविकल्पोंका परित्याग करके साधुके गुणोंमें अनुरक्त हो गया। वहां उसे सम्यक्त्व जगा कि उसके प्रतापसे सप्तम नरकसे घटकर केवल पहिले नरककी स्थिति रह गई और तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध किया।

साम्यधर्मकी ओर—एक समताभावके रख लेनसे साधुको भी आनन्द रहता और भक्तका भी उद्धार होता है। यों अरहंत, सिद्ध, साधुको मंगल कहा। अब चतुर्थ मंगल सुनें। केवली भगवान्ने जो धर्म बताया है, जो मेरा स्वरूप बताया है उस स्वरूपकी दृष्टि करना यही है धर्मपालन। यह धर्मपालन मंगल है। यों इस मंगलकी ओर जो लगाये, वह तो है वास्तविक मित्र और जो इस मंगलसे हटकर जन्म संतान बढ़ानेके ही करतब कराता है वह तो इस जीवका वास्तविक वैरी है। परिजन वैभव आदिकमें व्यामोह मत करो, हित मानकर राग न करो, किन्तु अपने आपके स्वरूपदर्शन और प्रभुदर्शनको हितका कारण मानकर उसकी ओर बढ़ो।

रे धनेन्धनसंभार प्रक्षिप्याशाहुताशने।
ज्वलन्त मन्यते भ्रान्त' शान्त सधुक्षणे क्षणे ॥८४॥

यत्न कर-कर जलते हुए स्वयंको और जलाना— यह भ्रान्त जीव आशारूपी अग्निमें धनरूपी ईंधनके भारको डाल डालकर जल तो रहा है और अपनेको शान्त समझ रहा है। जो बात संसारी प्राणियों पर बीत

रही है, उसको कहा जा रहा है। जिस चीज पर अपना वश नहीं है, जो अपनेसे अत्यन्त भिन्न है उसकी आशा बढ़ाना, यह तो अपने आत्मा भगवान् पर अन्याय करना है। यह स्वयं आनंदमय है। विकल्पोंने आनन्द मे बाधा डाली है। जैसे गम्भीर शान्त कोई तालाब हो और उसमे कंकड़ डाल देवे तो जैसे उसकी शान्तिमें खलल पड़ जाती है, तरंगें उठती हैं और वह सारे जलाशयको हिला देता है, ऐसे ही स्वभावतः ज्ञायकस्वरूप शान्त इस आत्मा भगवान्मे यह विकल्पोका ढला पड़ा है, तरग उठती हैं और यह आत्माको विकृत कर देता है। हे भव्य आत्मन् ! यही काम तू अनादिसे करता चला आया है, इस कार्यसे तू विराम नहीं लेता। इस धन ईधनके भारको अग्निमें डालकर जल रहा है, बढ़ रहा है, अग्नि ज्वालासे संतप्त हो रहा है और फिर भी मानता है कि मैं शान्त हूं। दुःखी होकर भी अपनेको दुःखी नहीं मान सकते। यह कितना तीव्र भ्रम है और दयनीय स्थिति है ?

उन्मत्तकी दयनीयता— जैसे जिसका दिमाग खराब हो जाता है वह पागल दुःखी तो रहता है और अपनेको दुःखी भी नहीं मान पाता, हँसत है, गाली देता है और दुःख उस पर बहुत अधिक है। इस दुःखको दूसरे लोग अनुमानतः जानते हैं। इष्टजन परिजन उस पर बड़ी तरस खाते हैं— हाय ! कैसे उसका दिमाग सुधरे, कैसे इसके विवेक जगे। इसकी तो बुद्धि ही उलट गयी है, किन्तु जिसकी बुद्धि पलट गयी है वह अपनेको उलटी बुद्धि वाला नहीं मानता है। दुःखी होकर भी अपनेको दुःखी नहीं समझ पाता है और व्यग्र तो अत्यधिक हो रहा है। हे आत्मन् ! जितने अपने आत्मा के निकट आवोगे उतनी ही शान्ति पावोगे। एक ही निर्णय है। चाहे कोई राजा महाराजा हो, चाहे कोई कुबेर सेठ हो, कोई भी हो, प्रत्येक जीव अपनी इस अज्ञानताके कारण निरन्तर दुःखी हो रहा है।

भेदभावके विवेककी आवश्यकता— अग्निमें ईधनको डाल-डालकर अग्निको शान्त नहीं किया जा सकता है, वह तो बढ़ेगी। ऐसे ही दुःख तो आशाका लगा है और यह आशा जैसे-जैसे वैभव धन मिलता जाता है तैसे ही तैसे बढ़ती जाती है। यह सब आंखों देखी बात है। आप हम सब देख रहे हैं। इस जीव तत्त्वको जानने वाला यहां है कौन ? सब इस मायामयी पर्यायको निरखकर इस रूप शकलसूरतको देखकर यह मानते हैं कि यह ही है जीव। ये ही हैं इष्टजन, ये ही हैं अनिष्टजन। ऐसे मायामय ये सब भाव बनाकर अपनी कल्पनाएँ बढाता है यह जीव। परमार्थसे अपनेको समझना कौन है ? ज्ञानी पुरुष पर ऐसी भी बड़ी विपदा आ जाय, जिसमें

कि ये तीन लोकके जीव सब मार्ग छोड़ दे, किन्तु यह ज्ञानी सत पुरुष गृहस्थ हो तो क्या, साधु हो तो क्या, जिसमें ज्ञानबल प्रकट हुआ है वह प्रत्येक स्थितिमें अद्विग रहता है। जिसे दु ख न चाहिए उसका कर्तव्य है कि जिस वस्तुका जिस जिसका समागम हुआ है उसमें मोहमस्त न हो, उसमें आसक्त न हो। यह तो दो और दो चार जैसा युक्तियुक्त है। जो समागममें खुशी मानेगा उसे वियोगके समय दु खी अवश्य होना पडेगा। वियोग सबके आयेगा। जिस जिसका सयोग हुआ है उस उसका वियोग अवश्य आयेगा। और वियोगके कालमें ऐसा ही दु ख भोगना होगा, जैसे हम अनेकको दु खी देख रहे हैं।

खुदको जलानेकी उन्मत्तता— जैसे कोई बावला थोड़ी अग्निसे जल रहा है और उसमें ईंधन डाल कर अग्निको बढ़ाये और बहुत जलने लगे तिस पर भी अपने को शीतल माने तो उसे आप कितना बावला कहेंगे? होती है बच्चोंकी ऐसी आदत कि वे आगको छूते हैं, मुट्ठीमें आगको पकड़ लेते हैं और जल जाते हैं। नादान बच्चा जलती हुई अग्निको पकड़ लेता है, उससे भी बढ़कर हैं पागल पुरुष। कोई अग्निसे जल रहा है और उसीमें ईंधन डाल दे, आग ज्यादा जलने लगे, तिस पर भी वह अपनेको शीतल हुआ मानता है, ऐसे ही यह भ्रान्त आत्मा थोड़ी आशाकी अग्निसे जल रहा है, उसमें धन वैभवका ईंधन डालकर आशाकी अग्निको बढाकर और ज्यादा जलने लगा। आश्चर्यकी बात तो यह है कि उस ज्यादा जलती हुई स्थिति में अपने को वह सुखी मान रहा हैं। परमार्थसे वह सुखी नहीं है।

व्यवहारमे परमार्थताका अभाव— भैया! क्या किया जाय कि सुख मिले? धन सम्पदा बढायें, उसमें भी सुख नहीं। अच्छी बात दिलमें घर नहीं करती। क्योंकि धन सम्पदाकी तृष्णा लगी हुई है। कीर्ति बढ़े, प्रशसा बढ़े, यश बढ़े उसमें भी दु खी रहता है। सत्य बात तो यह है कि किसको तुम क्या दिखाना चाहते हो? जो ये दृश्यमान् मूर्तिया हैं वे सब मायामय हैं, परमार्थ नहीं हैं। जिसे कहते हैं कि कहीं का ईंट कहीं का रोडा। भानुमतीने कुनवा जोडा। कहा तो ये आहारवर्गणाके स्कध जिनसे शरीर बनता है, कहा ये कार्माणवर्गणाके स्कध जिससे कर्म बनते हैं। तैजस वर्गणाके स्कध जिससे तैजस शरीर बनता और भाषावर्गणाके स्कध जिससे भाषा बनती, मनोवर्गणाके स्कध जिससे मनकी रचना होती। कहींका ईंट कहींका रोड़ा, और इस भ्रान्त जीव ने यह कुनबा जोडा। सारभूत तत्त्व है क्या यहा? किसे मानते हो कि यह मैं हू। जो मैं हू वह अदृश्य हू, ज्ञानमात्र हू, आनन्दघन हू। इस मेरेमें किसी भी प्रकारका कोई अपनी ओरसे मिलता

नहीं है, किन्तु जरासी भूलपर इतनी मलिनता चिपट गई है कि स्वभाव की बात नहीं नजरमें आती, नहीं समझमें आती।

असंभवको संभव करनेका व्यर्थका प्रयास— भैया! आखिर यह तो ख्याल करो—एक समय वह भी तो आता है कि सब कुछ छोडकर देहको भी छोड कर यहां से चला जाना है। जरा कल्पनामें तो उस अगले १०-५ वर्षको अभी ला दो मनमें उपयोगमें। मान लो यह अभी ही हो चुका हो कि मैं सब कुछ छोड़कर आगे चला गया, मर गया तो अब किस गतिमें होता? मेरे लिए तो अब यहां का कुछ नहीं रहा, जिसको निरखकर चिन्ता और व्याकुलताएँ मचाया करते हैं, सुगम स्वाधीन इलाज तो किया नहीं जाता और जो पराधीन, दुर्गम, दुर्गम भी क्या, असम्भव है उसे सम्भव करने पर तुले हुए है ये भ्रमी जीव।

प्रत्येक परिस्थितिमें ज्ञानबलका प्रभाव— इस प्रसंगमें यह प्रश्न हो उठता है तो फिर क्या करे? क्या दुकान न जाये? क्या थोड़ी बहुत कमायी न करे? फिर कैसे व्यवस्था चलेगी इस देहकी, घरकी और अन्य-जनोंकी और जो ऋषी संत त्यागीजन उपदेश दे रहे हैं उनकी भी क्या गति होगी? हम सब गृहस्थ छोड़ दें तो कैसे व्यवस्था बनेगी? अरे व्यवस्था कोई नहीं बनाना। मार्ग तो ज्ञान और वैराग्य का ही है युक्त चलने के लिए। उस पर दृढ़तासे न चल सकें तो उस कमजोरीमें ऐसा रागभाव बर्तता ही है कि यह सब करना पड़ता है। करते हुएमें भी यथार्थ बात तो चित्तमें रक्खो कि मै क्या हू, मेरा निमित्त पाकर फिर बाहरमें कितनी परिणतियां बनती हैं? यथार्थज्ञान करने को कौन रोकता है? परिस्थितिसे बाध्य हैं आप, ठीक है, रहेंगे बाध्य कुछ समय तक, पर ऐसा बाध्य होनेकी स्थितिमें भी सच्चा ज्ञान करें तो उसे कौन रोकेगा? कौन आडे आयेगा? ससारके संकटोंसे छूटनेके लिए एक सम्यग्ज्ञान ही आवश्यक है, जिसके प्रतापसे सब औपाधिक सकट दूर हो जाते हैं। श्रम कर करके खूब उमर बढ़ी, आशा लगा लगाकर जवानीका अन्त आ रहा है और इस स्थितिके बाद क्या गुजरता है तिस पर भी यह कितना बेहोश रहता है—इस बातको गुणभद्र स्वामी कह रहे हैं—

पलितच्छलेन देहान्निर्गच्छति शुद्धिरेव तव बुद्धः।
कथमिव परलोकार्थं जरी वराकस्तदा स्मरति ॥८६॥

निर्बुद्ध दशा— बुढापा शुरू हुआ, यह सारा सिर सफेद बालोंसे भर गया, श्वेत ही श्वेत ये केश दिख रहे है, यह क्या चीज है? यह क्या सिरमें से सफेद-सफेद निकल रहा है? ये सारे श्वेत बाल निकल रहे हैं,

यह बुद्धि की स्वच्छता निकल रही है। जो देहमें स्वच्छ बुद्धि थी अब उस स्वच्छताके लायक यह घर नहीं रहा। शरीरका बल भी घट जाता है। बुढ़ापेमें और दु:ख तो कम रहते हैं, पर बुद्धिकी स्वच्छता निकलनेसे दु:ख विशेष बढ़ जाता है।

वृद्धकी हठ— लड़के हों चार छ और एकसे एक बढ़िया व्यापार भी करते हैं, कमाऊ हैं, तिस पर भी इस बुड्ढेसे नहीं रहा जाता। यह बुड्ढा उन लड़कोंकी किसी न किसी करतूतमें कुछ न कुछ बतावेगा। लड़के न मानेंगे तो यह खिसियायेगा कि कोई मानते नहीं हैं। उसके बताने से चाहे नुक्सान हो जाये, तिस पर भी यह बूढ़ा चुप नहीं बैठ सकता। अरे रोटी खाना और शान्तिसे बैठना यही काम होना चाहिए, सो नहीं। शरीर जैसे ही शिथिल हुआ, इन्द्रिया जैसे शिथिल हुई वैसे ही इसकी वाञ्छाएँ और बढ़ जाती हैं। यही तो कायरता है। बलवान् पुरुषके वाञ्छावोंकी परवशता नहीं होती है।

लोककी प्रकृतिवश अशुभवृत्ति— ये देखो सफेद केश के बहानेसे तेरी बुद्धिकी स्वच्छता शरीरसे निकली जा रही है, अब तू वृद्धावस्थामें परलोक के वासते भी विचार नहीं करता। तू ऐसा विचार कि युवावस्थामें तो धन स्त्री आदिकके सुख भोगेगा और वृद्धावस्थामे धर्म करके परलोकका यत्न करेगा, सो देख, वृद्धावस्था जब आती है तो श्वेतकेश निकलते हैं, उससे बुद्धिकी शुद्धता निकल जाती है। तू जो पहिले सोच रहा था वह सब व्यर्थ हो जाता है। कोई बिरला ही पुरुष होगा, जिसके आत्मकल्याणकी भावना जगती है।

लोककी प्रकृतिवश अशुभवृत्ति— एक ऐसी ही किम्वदन्ती है कि नारदके चित्तमें आया कि चलो जरा पाताल लोककी सैर करें। गये पाताल लोक। नरकभूमिमें देखा कि ठसाठस जीव भरे हुए हैं। कहीं खडे होने तक को भी जगह न मिली। वहासे भागकर स्वर्गलोक गए। वहा विष्णुदेव दो तीन सेवकों सहित आराम कर रहे थे। नारदने कुछ डाटासा कि तुम पक्षपाती हो। नरकमें ठसाठस जीवोंको भर दिया है, वहा खडे होनेकी भी जगह नहीं है और यहा बिलकुल सूनासाना है। अपना घर आप अच्छा बनाए हैं। तो विष्णु बोले कि यहा कोई आता ही नहीं है। जावो हम तुम्हें आज्ञा देते हैं कि जो भी यहा आना चाहे उसे लिवा लावो। अब नारद आये मध्यलोकमे। सोचा कि बूढोंसे अपनी दाल गलेगी, उन्हींके पास चलना चाहिए। गये एक बूढेके पास। उससे कहा चलो बाबा जी! हम तुम्हें स्वर्ग ले चलेंगे। स्वर्ग बिना मरे तो कोई जा नहीं सकता, सभी जानते हैं। तो

उस बूढ़े ने जवाब दिया कि हमही तुमको मिले, तुम जावो, हम न जावेंगे। इसी तरहसे कई बूढ़ोंके पास नारद गये, पर वहां दाल न गली। सोचा कि अब जवानोंके पास चलें। एक जवानके पास जाकर बोले नारद कि चलो हम तुम्हें स्वर्ग ले चलेंगे। तो उसने भी अपनी सारी झंझटें बखान दीं। ये बच्चा बच्ची हैं, इनकी शादी करना है, पढाना लिखाना है। यों कई जवानों के पास नारद गये, पर कोई भी जानेको तैयार न हुआ। तब नारदने सोचा कि जवानोंसे दाल नहीं गलती चलो अब लड़कोंके पास चलें। ढूंढते-ढूंढते एक १९ वर्षका लड़का मिला, जो कि किसी मंदिरके चबूतरे पर बैठा हुआ माला फेर रहा था। सोचा कि यह जरूर चलेगा। नारदने कहा—चलो बेटा हम तुम्हें स्वर्ग ले चलें। वह झट तैयार हो गया, चल दिया। कुछ दूर चल कर कहता है कि महाराज! एक बात सुनो, अभी १०-५ दिन पहिले सगाई हुई है, ५ दिनमें शादी होने वाली है। कुछ रिश्तेदार तो अभी से आ गए हैं। सो महाराज शादी हो जाने दो, फिर आप ५ वर्ष बाद आना हम जरूर चलेंगे। ५ वर्ष बाद नारद पहुंचे। अब वह हो गया था २४ वर्षका। नारदने चलनेको कहा तो वह बोला— महाराज! एक बच्चा हो गया है। इसे समर्थ करदें फिर चलेंगे। सो महाराज २० साल बादमें आना। २० साल बाद नारद आये। अब वह हो गया ४४ वर्षका। नारदने चलने को कहा तो वह बोला— महाराज अब नातीका मुख देख लें तब जरूर चलेंगे। आप १५ वर्ष बादमें आना। १५ वर्ष बाद नारद आये तो अब तो वह बूढा हो चुका था। नारद ने चलने को कहा तो वह बोला, महाराज मैंने धन कमाकर रक्खा है लड़के नाती कुपूत हो गये हैं, यदि हम चलेंगे तो ये इस धनको थोडे ही समयमें बरबाद कर देंगे। सो महाराज आप इस भवमें नहीं, अगले भवमें जरूर आना तब हम चलेंगे। अब वह तो मरकर सांप बन गया, उसी स्थान पर रहे जहां धन गड़ा था। नारद वहां भी पहुंचे, स्वर्ग चलनेको कहा तो वह फन हिलाकर कहता है— महाराज! हम तो धनकी रक्षा करनेके लिए ही यहां पैदा हुए हैं। नारद लौट गए।

आशानिवृत्ति व समतावृत्तिमें कल्याण— अरे भैया! कब कल्याण करोगे? वृद्धावस्थामें तो और भी शिथिलता आ जाती है। वृद्धावस्थामें वह ही पुरुष सफल होता है जिसने जवानीमें तप व्रत संयम किया हो, ज्ञान कमाया हो। सो अब विराम लो। इस धनरूपी ईंधनको डाल-डालकर आशारूपी अग्निको न बढ़ावो। अपने ज्ञानस्वरूपकी ओर झुकाव करके शीघ्र धर्म कर लेना चाहिए। सर्वविकल्पों को मिटाकर समतापूर्वक मरण करेंगे तो उस समाधिमरणके प्रतापसे सद्गति पाकर आनन्द पायेंगे।

इष्टार्थाद्यदवाप्ततद्भवसुखक्षाराम्भसि प्रस्फुर-
न्नानामानसदु खवाऽग्निशिखासदीपिताभ्यन्तरे ।
मृत्यूत्पत्तिजरातरङ्गचपले ससारघोरार्णवे,
मोहग्राहविदारितास्यविवराद् दूरे चरा दुर्लभा' ॥८७॥

ससारसमुद्र— यह ससार भयानक समुद्रके समान दुस्तर और दु ख कर है। जैसे कोई भयानक समुद्र जो प्रथम तो सारे खारी जलसे भरा हुआ है और जिसमें बीच-बीचमें वड़वानलकी ज्वालाएँ भी निकलती हों, जिनकी बड़ी कठोर चपलताएँ उठ रही हों और जिनके मध्यमें बड़े-बड़े मगर ग्राह विचर रहे हों, ऐसे समुद्रमें कोई मनुष्य फंस जाय तो उस मनुष्य को कितनी व्यथा है, कितनी आकुलता है ? ऐसे ही जानो कि यह ससार उस भयानक समुद्रसे भी घोर भयानक है। इस ससारमें सुख तो है। जैसे समुद्रमें जल तो है मगर खारी है। इसी तरह इस ससारमें सुख तो है, लेकिन इन्द्रियजन्य, पराधीन, विषयकर उत्पन्न होता है, अतएव उससे तृप्ति होती नहीं है। ऐसा खारी जलकी भाति है यह। जैसे खारी पानी को पीने से प्यास दूर नहीं होती, इसी प्रकार सासारिक सुखोंके भोगनेसे प्यास दूर नहीं होती है, तृष्णा दूर नहीं होती है।

विषयोंकी व्यर्थता— भला कह लो एक जीने के लिए भोजन आवश्यक है, पर एक भोजन को छोड़कर बाकी जो अन्य विषय हैं—स्पर्शन के, गध तेल इत्र फुलेलके, रूप देखनेके, संगीत सुनने के, ये जो समस्त विषय हैं उन विषयोंके साधन न मिलाये जायें तो यह जीव मर तो न जायेगा हा भोजन और पानी न मिले तो मर जायेगा यह मनुष्य, पर इत्र फुलेल न सूँघे तो मनुष्य मर जायेगा क्या ? ये विषय व्यर्थ ही तो हुए ना। जीवनमें साधक नहीं और व्यर्थकी कल्पनाओंका उत्पादक है। चक्षुरिन्द्रिय से सुन्दर रूप मनके अनुसार रूप न देखा जाय, मान लो आंखें बद करके ही बहुत काल तक रहा जाय तो क्या प्राण घुटते हैं, क्या मरण हुआ जाता है ? यह भी बिलकुल व्यर्थका विषय है कि नहीं ?

इन्द्रियज विषयसाधनकी दूरता— इन इन्द्रियोंके दूर दूरसे ही विषय साधन होते हैं। रूप दूरसे ही तो निरखा जाता है। जो सुन्दर रूप मालूम पड़े, तो आंखमें लगा लो कुछ तो कुछ नजर ही न आयेगा। तो यह भी व्यर्थका आपत्तिमें फसाने वाला विषय साधन है। सगीतकी भी बात इसी प्रकार है। कर्णोंसे न गायन सुने, न गीत सुनें, न सगीत सुनें तो भी जीवन बिगड़ता नहीं है। भोजन पानकी बात भी विचारणीय है। इस विषयमें भी चटपटी और रसीली स्वादिष्ट चीजें न खायें तो कुछ बिगड़ता नहीं है।

ऐसे ही स्पर्शन इन्द्रियका विषय बिल्कुल व्यर्थका है और फिर मान ल विषय साधनोंका उदय है, करना पड़ता है, पर यह भी तो तृष्णा और व्याकुलतासे भरा हुआ है। यह सांसारिक सुखसमुद्रमें खारे जलकी तरह है। इस सुखसे तृष्णा शान्त नहीं होती है।

ज्ञानसिंधुमें क्लेशाग्नि— जैसे समुद्रमें बडवानलकी ज्वालाएँ फूट निकलती हैं। भला देखो विचित्रता कि है पानी, किन्तु उसमें से अग्नि निकल आती है, उसीको बड़वानल कहते हैं। है ना अचरजकी बात कि पानीमें आग लग जाय और यहां देखो तो पानीसे आग ही पैदा हो जाती है। इसीको बड़वानल कहते हैं। ऐसे ही मानसिक जो दुःख हैं, चिंताएँ हैं ये भी बड़वानलकी तरह हैं। जहां मानसिक आभ्यंतर निरन्तर पीडा चल रही है वह पीड़ा इस जीवको सोख रही है। जैसे समुद्रमें उठा हुआ बड़वानल जलको सोखता है ऐसे ही संसारका जो मानसिक दुःख है वह मानसिक दुःख इन्द्रियजन्य सुख तक को भी भोगने नहीं देता। जब कोई मानसिक क्लेश होता है तब भोजन भी नहीं सुहाता, खाया नहीं जाता। जब कभी धन बढ़ाने की तृष्णाकी धुनमें मानसिक क्लेश बढ जाता है तो जो पासमें सामग्री है, साधन है, वैभव है उसका भी सुख नहीं भोग सकता। एक कहावत है—आधी छोड सारी को धावे। आधी मिले न सारी पावे॥ वर्तमान प्राप्त सामग्रीमें संतोष न करके जो अप्राप्त है, नहीं है उतने वैभवकी ओर दृष्टि रहे तो वह अधिक तो प्राप्त है ही नहीं। उसका सुख कहांसे हो, और जो प्राप्त है उसका भी सुख नहीं रह पाता। बस यही मानसिक दुःख है। यह इस संसारमें बड़वानलकी तरह संताप उत्पन्न करने वाला है। भयानक घोर समुद्रसे भी अत्यन्त भयानक यह संसार है। समुद्रमें तरंगें जैसे चंचल और कठिन चलती रहती हैं, ऐसे ही इस संसारमें जन्ममरण बालक जवान वृद्ध सभी सभी दशायें चचल होकर चलती रहती हैं।

क्लेशमुक्तिका बीज यत्न— संसारसमुद्रमें फंसा हुआ यह जीव अनादि कालसे दुःख भोग रहा है। इन समस्त दुःखोंसे छूटनेकी जरासी कुंजी है। जिसने कुञ्जी पा ली उसको सुगम है और न पाया तो उसे कठिन अथवा असम्भव है। इस देहके अन्दर सोचने वाला, चिन्तन करने वाला कोई सत् पदार्थ है ना। जिसको लोग मैं मैं कहा करते हैं—मैं आया, मैंने किया। मैंने सोचा, वह मैं क्या है? उसका वास्तविक स्वरूप एक झलक में जान जाता है। जैसे महलका उठाना एक सेकेण्डमें नहीं बनता, कोई व्यापारादिका चलाना एक सेकेण्डमें नहीं बनता, सांसारिक साधनोंकी बात एक मिनटमें नहीं होती, किन्तु यह आत्मस्वरूपकी झलक एक मिनट नहीं

एक सेकेण्ड नहीं, उसके भी कई हिस्सोंमें जितना समय हो जाता है, उतने में हो जाता है। किन्तु अनादि कालसे मोहवासनासे दूपित इस आत्माको ज्ञानभावना और ज्ञानाभ्यासकी विशेष जरूरत है।

मानवजीवनका लक्ष्य— सच पूछो तो यह मानवजीवन एक आत्मस्वरूपका परिचय पाकर उसमें मग्न होकर आत्मकल्याण करनेके लिए है। यह निर्णय जब तक न किया जायगा तब तक तो भटकना पड़ेगा और यह जीवन यों ही व्यर्थ खो दिया जायेगा। यह बात सबकी अपनी अपनी है। एक इस आत्मसाधनाके सिवाय बाकी अन्य जो क्रियाएँ हैं उनमें खूब परख लो, उनको करके अन्तमें लाभ कुछ न मिलेगा। वर्तमानमें भी यह कल्पना मात्र है कि यह मेरा पुत्र है, यह मेरा घर है, यह मेरी स्त्री है, और फिर उन सबका भाग्य तुम्हारे भाग्यमें समाया हुआ है क्या ? यह भी विश्वास नहीं होता कि जितने घरमें प्राणी हैं उन सबका भाग्य उन सबके साथ है, इतना भी विश्वास न हो तो फिर अनाकुलता पानेकी तो चर्चा ही क्या की जाय ? अरे यह सम्भव है कि घरमें रहने वाले जो लोग हैं उनका भाग्य तुम्हारे भी भाग्यसे अधिक अच्छा हो। और यदि उनका भाग्य ऊँचा न होता तो कमानेकी कला अच्छी जानने वाले आप उनकी सेवा क्यों करते ? इस लोकमें चिन्ताकी बात तो कहीं रंच भी नहीं है। चिन्ताके ढगसे अपना ज्ञान बनाया तो चिन्ता बनती है, नहीं तो कहीं चिन्ताकी बात ही नहीं है।

ज्ञानियोंका बल— यह ससार यद्यपि खारे समुद्रसे भी भयानक है, फिर भी जो ज्ञानी पुरुप होते हैं वे इस मोहके ग्रासके मुखसे अलग बने रहते हैं। बाह्यदृष्टि करके किस ओर दौड़ लगायी जाय कि जहा मेरेको शरण मिल जाय ? बाहरमें आलम्बन देने वाले तो मिल जायेंगे, पर यह सब धोखा है। कोई मेरी रक्षा कर सके, ऐसा किसी दिशामें दौड़ लगाकर कहीं पहुच जानेसे कोई मिल जाय तो बता दो। कहीं इस जीवको शरण नहीं है। इस का शरण तो स्वयं ही यह है। जब बाह्यपदार्थोंका विकल्प त्यागकर ज्ञानपुंज मात्र अपनेको अनुभव करें, बस उसीकी शरण मिलेगी। फिर रही यह बात कि आखिर फिर भी तो शरीर लगा है। इसको खिलाना पिलाना और व्यवस्था करना फिर भी तो आवश्यक है। ठीक है, पर उसके लिए जीवन न समझो। इससे तो रहित होनेका प्रोग्राम है अपना।

ज्ञानभावनाका पूज्य क्षण— भैया ! कोई क्षण ऐसी भावना तो आए कि मैं शरीरसे रहित खुद ही खुद रह जाऊँ। इसकी सफलता देहमें दृष्टि करने से न मिलेगी। यह आत्मा तो बड़ा समर्थ सत् है। देहदृष्टिसे तो देह मिलनेकी परम्परा ही बढेगी और आत्मदृष्टि रखोगे, देहसे विविक्त ज्ञानमात्र

आत्माका अनुभव करोगे तो देहोंका मिलना छूटेगा। ऐसी भावना करो कि मुझे तो इस शरीरसे भी न्यारा रहना है। सर्वशरीरोंसे जुदा केवल ज्ञान स्वरूपाश्रित मात्र मुझे रहना है। यह अपना प्रोग्राम यदि नहीं बन पाया तो फिर मंदिरमें किस लिए आते हैं सो बतावो ? एक इस प्रयोजनको छोड़कर अन्य कोई प्रयोजन मनमें हो और उन उद्देश्योंसे मंदिरमें आना हो रहा हो तो फायदे की बात कुछ न मिलेगी। भले ही कुछ मंदकषाय होनेसे पुण्य बंध हो जाय। प्रथम तो इसका ही विश्वास नहीं है कि मंद कषाय है, क्या एक तेज बोलने से ही तीव्र कषायी कहलाता है ? मोह भरा रहे, तृष्णा बनी रहे, राग बना रहे, लोभ बना रहे, बाह्यवस्तुवों को अपनाने की बुद्धि रहे, यह तो गुस्सा करने वाले से भी तेज कषाय है। मंद कषाय भी कहा हुआ ? अब सोच लीजिए। यदि चित्तमें यह बात नहीं समाती है तो मंदिरमें आकर कोई लाभकी बात नहीं पायी।

प्रभुमार्गके अनुसरणका निर्णय— भैया ! एक निर्णय बनावो, मंदिर आते ही प्रभुकी मूर्तिको निरखकर प्रभुके परिणमनमें जो बातें गुजर रही थीं, उन सब दृश्योंको अपने उपयोगमें ले आएँ और उनके चारित्रको निरख कर अपनेमें ऐसी भावना जगावें कि हे प्रभो ! जिस मार्गसे आप चले उस मार्ग पर चले बिना हमारा उद्धार नहीं हो सकता। आपने जो किया वह श्रेष्ठ ही किया, वही मेरे करने लायक काम है। ऐसी उपासनाका प्रोग्राम मनमें न आये तब तक नाम मात्रके हम धर्मी पुरुष हैं। वास्तवमें धर्मका पालन हो और दुःख रह जाय यह हो नहीं सकता। धर्मका नाम लगाया जाता रहे और कषायोंकी बात ही पोषी जाय, वहां अनाकुलताका क्या काम है ?

संसाररूपी भयानक समुद्र और उसके तिरनेका उपाय— यह संसार खारे समुद्रसे भी भयंकर स्थल है। कोई जीव ऐसे समुद्रमें फँस जाय जहां खारा पानी है, बड़ी तेज लहरें उठ रही हैं और कहीं कहीं बीचसे अग्निके भयंकर संताप उठ रहे हैं और नीचे हजारों मगर फिर रहे हैं तो सोचो उसको कितनी व्याकुलता और बेचैनी है ? ऐसे ही जानो कि जहां संसार सुखका खारा जल भरा हुआ है, पीवे तो प्यास बढ़े, तृष्णा बढ़े। जहां मानसिक चिंतावोंकी भयंकर धारायें चल रही हैं, ऐसे स्थलमें यह जीव कितना दुःखी है ? देखो पानीमें भी भभका उठता है और आनन्दनिधान इस आत्मामें भी मानसिक दुःखके बड़वानल का भभका उठ रहा है, बीमारी बन रही है। डाक्टर साहब बीमारी की दवा दो। अरे जो तुम्हारे रोग है उसकी तो हमारे पास दवा ही नहीं है। छोड़ दो चिन्ता, समस्तपर

हैं, उनकी चिन्ता, उनका शोक, उनका विचार, मोह व्यामोह और आकुलता छोड़ दो। कोई परिस्थिति ऐसी हो कि न छोड़े जा सकें तो वहां यह समझ कर छोड़ दो कि हमारे वशकी परिस्थिति तो नहीं है। अब जैसा जो जहां परिणमत होगा, हो लेगा, जरासी औषधि है। अपनेको सबसे न्यारा जान लो, चिन्ताएं त्याग दो, जैसा समय गुजरे, गुजरने दो।

अतीत और भावी निर्णय— अहो ! यह जीव भव भवमें भी व्यामोह नहीं छोड़ता और मरण कर जाता है, दूसरे भवमें भी पहुंचकर व्यामोह नहीं छोड़ता। यह सोच यह बात, यह चाल अनादिकालसे चली आ रही है। इस ससारसमुद्रमें यह मोहरूपी ग्राह अपना मुख फाड़ रहा है जीवोंको लीलनेसे लिए। इस मोहसे जो दूर विचरता है, जो इस मोहके विषयसे तद्रूप नहीं होता है—ऐसे जीव संसारमें दुर्लभ हैं, थोड़े हैं। अगर ऐसे जीव बहुत हो जाये तो यह संसार फिर चल न सके। संसार कैसे चलेगा ? देखो ससारमें कितने प्राणी हैं ? इतने प्राणी हैं कि अब तक उनमेंसे अनन्त जीव मोक्षको प्राप्त हो गए हैं और अनन्तकाल तक मोक्षको प्राप्त होते ही रहेंगे। आज संसारी जीवोंकी संख्याका अनन्तवां हिस्सा भर मुक्त जीव हैं और अनन्तकालके बाद तक भी ससारी जीवोंकी अनन्तानन्त हिस्से रूप अनन्तकी सख्या मुक्त जीवोंकी रहेगी याने सब जीवोंका अनन्तवा भाग भी इतनी बड़ी वृहद् राशि है, अनेक अनन्त होने पर भी वह अनन्तानन्तवा भाग है।

जैसे एक अरब रकममें से एक एक पैसा निकलता जाए तो उसे यह भी कह सकते हैं कि अरबका करोड़वां हिस्सा है और सौ हो जाए तो करोड़वा हिस्सा है—ऐसे ही समझिए अनन्तानन्तमें से कई अनन्त निकलें, वह भी अनन्तानन्तवां भाग है। एक निगोद शरीरके जितने जीव मिलते हैं, उतनी भी सख्या नहीं हो पाएगी अनन्तानन्तकाल तक मुक्त जीवोंकी। यह ससार सारा क्लेशमय है, फिर भी ज्ञानीपुरुषमें ऐसी सामर्थ्य है कि वह मोहके ग्राससे दूर रहता है, वह निकटससारी है। अल्पकालमें वह मुक्तिको पाएगा। अपना प्रोग्राम भी यही बनाना है।

अव्युच्छिन्नैः सुखपरिकरैर्लालिता लोलरम्यैः,
श्यामाङ्गीनां नयनकमलैरर्चिता यौवनान्तम्।
धन्योऽसि त्वं यदि तनुरियं लब्धबोधो मृगीभि—
र्दग्धारण्यस्थलकमलिनीशङ्कयालोक्यते ते ॥८८॥

वीर सुकुमारोंको धन्यवाद— वे पुरुष धन्य हैं जो गृहस्थावस्थामें बड़े लाड़ प्यारसे पाले गए और अनेक प्रकारकी सम्पन्नताके सुख भोगते थे व

कदाचित् ज्ञानवैराग्य जगने पर सकल संन्यास करके स्थिर आसनसे निश्चल उपयोग रखें, जो एक ज्ञायकस्वरूपका अनुभवन करें, जिसके ऐसे स्थिर शरीरको निरखकर ठूंठ जानकर हिरणियां अपना अंग खुजलायें—ऐसी स्थिति जिनकी हो, वे महाभाग धन्य हैं। जिन्होंने ऐसे सुख पाये हैं, जिनका विच्छेद नहीं हुआ, कोई पुरुष तो सुखका विच्छेद होने पर कुछ हैरानी मानकर भावुकता परित्याग कर देते हैं, किन्तु जिसके लिए धन्यवाद कहा जा रहा है, उस पुरुषकी बात यहा यों बतायी गयी है कि जिसके भी जीवनमें सुखका कभी विच्छेद नहीं हुआ। सुखके समान सुखके साधन तिसकर पाला हुआ है, उन्होंने सकल सन्यास करके आत्मीय आनन्द पाया है।

वीर सुकुमाल—जैसे एक सुकुमाल मुनीश्वरकी कथा है। जो बड़ी ही सुकुमार क्रियाओंसे पाले गए थे, जो रत्नोंकी ज्योतिसे दीप्त महलमें निवास करते थे। दीपकी शिखा भी जिन्होंने आंखोंसे न निरखी, कमलके फूलमें बसे हुए सुगंधित चावलोंका भोजन ही जिनके चलता था और और भी तो समस्त आरामके साधन थे, पर जब यथार्थज्ञान होता है—यह मैं आत्मा समस्त परद्रव्योंसे भिन्न, परभावोंसे विवक्त केवल विशुद्ध चैतन्यमात्र हूं, इस मेरेका किसी भी अन्य पदार्थसे कुछ सबंध नहीं है, यह मैं न किसीका स्वामी हूं, न कर्ता हू और न भोक्ता हू, मेरे गुण अथवा पर्यायका किसी परवस्तुमें सम्पर्क और प्रवेश होता ही नहीं है, फिर यह मैं सबसे न्यारा केवल ज्ञानस्वरूप जैसा हूं, तैसा उपयोग रखना कर्तव्य है। जब ऐसा यथार्थ ज्ञान होता है और यथार्थ ज्ञानके प्रसादसे वैराग्य हो जाता है, तब वह सुकुमाल जिसको महलसे बाहर निकलनेका कोई रास्ता नहीं दिया जाता था, वह माता पिताका इतना प्रिय था। वे एक पल भी सुकुमालको अन्यत्र न देखना चाहते थे।

विरोध उन्हें सहन न था। इस प्रकारके लाड़प्यारमें पाले गए सुकुमाल जब विरक्त हुए तो अन्य कुछ उपाय न निरखकर रात्रिके समय वे धोतिया बांध बांधकर रस्सासा बनाकर महलके पीछेसे धोतियोंके सहारे ही निकल गए। कितना सुकोमल था उनका शरीर। अच्छे रास्तेमें जा रहे हैं तो भी कंकड़ चुभते हैं और पैरोंके तलेसे खून भी निकलता जाता है, लेकिन इस ओर उन्हें भान ही नहीं है। यह उपयोग जिस ओर रम जाता है, उस उपयोगकी दृष्टिमें वही समाया हुआ रहता है। सुकुमालको केवल यह विशुद्ध ज्ञानस्वभावमात्र मैं हूं—ऐसा निर्णय हो चुका, उसी ओर दृष्टि है। इस कारण खूनकी ओर ख्याल भी नहीं जाता, चले जा रहे हैं वनको। वनमें जाकर वे

किसी योगीश्वरके समक्ष दीक्षा ले लेते हैं और आत्मध्यानमें अडिग पद्मासनसे बैठ जाते हैं। रास्तेमें पैरोंसे गिरे हुए खूनको चाटती हुई स्यालिनी सुकुमालके निकट पहुची। सुकुमालको देखते ही पूर्वभवके स्मरण से वह बडी क्रुद्ध हो गई। उसने अपने बच्चों सहित सुकुमालके शरीरका भक्षण करना शुरू कर दिया। तीन दिन तक ऐसे उपसर्गमें यह सुकुमाल कैसे अडिग रहे?

धुनकी दृढता— जिसको जिसकी धुन हो जाती है, वह उस वस्तुकी प्राप्तिके लिए सब कुछ सह सकता है। किसीको धन प्राप्तिकी धुन हो तो सफर करते हुएमें अनेक प्रकारके संकट आये, उनको भी वह सह लेता है। ऐसे ही जिसे ज्ञाताद्रष्टा रहनेकी, विशुद्ध आनन्दको भोगनेकी, सर्वविकल्पोंसे अलग होकर अपने आपके इस ज्ञानस्वरूपमें प्रवेश करनेकी जिसे धुन है— ऐसे पुरुषको कैसे किसी बाह्यउपाधि शरीर आदिकके आश्रय वेदनाकी तो अनुभूति हो।

धन्य हैं वे योगिराज जो बडे लाड़प्यारसे भी पाले पोषे गए थे और जिनकी युवावस्थामें अनेक अथवा मनप्रिय रमणियोंने विनय सत्कार और सिष्ट भाषण करके अथवा अपना कलाकौशलसे जिनको प्रसन्न किया है, जो जवानीमें भी बडे सुखके साधनोंमें रहे हैं—ऐसे महापुरुष जवानीकी अवस्था के बीचमें ज्ञान पाले हुए ज्ञानी सत पुरुषकी तरह विरक्त होकर आत्मध्यानमें मेरुवत् निश्चल रहते हैं व वहा ये हिरनिया अपना खुजेला अग खुजानेको नि शक हो ठूंठ समझकर आती है। ऐसी अन्तरभावनाके कारण जिनकी स्थिति हुई, वे प्रशसनीय हैं। वे पुरुष धन्य हैं जो आखिर सबका परिहार करके अपने विशुद्ध ज्ञानका उपयोगकर आनंदमें मग्न रहा करते हैं।

वैरी और उसका विजय— मोहभाव और ममात्वभाव हम आपके वरी हैं। जगत्में अन्य कोई पदार्थ वैरी नहीं है। कोई जीव मेरा दुश्मन नहीं है। ये सभी जीव चाहे उनकी चेष्टा इनके विषयसाधनोंमें बाधक भी बने, तिस पर भी दूसरे जीवोंने केवल अपनी कषायकी चेष्टा की है, दूसरे से कोई वैर भजा भी नहीं सकता है। एक पदार्थ दूसरे पदार्थमें अपना गुण, द्रव्य, पर्याय, प्रभाव और असर कुछ भी नहीं पहुचा सकता। यह तो सब जितने विभावोंका परिणमन है, निमित्तनैमित्तिक योगसे प्रत्येक पदार्थका अपने अपने उपादानमें विभावोंका परिणमन है। यह ज्ञानी पुरुष अपनेको अशत्रु देख रहा है। मेरा दुनियामें कोई वैरी नहीं है। चाहे कोई अज्ञानी अपने चित्तमें ऐसी भी कल्पना करे कि मेरा यह वैरी है, तिस पर भी कोई

किसीका बैरी नहीं है। सब जीव अपने अपने कषायोंके अनुसार मन, वचन और कायकी चेष्टा किए जा रहे हैं। ऐसा सम्यग्ज्ञान पाकर इस जीवको विश्राम होता है।

समृद्धि— भैया ! अपने आपमे जैसे पूर्वभवका समागम आज अपने लिए कुछ नही हैं, ऐसे ही चद दिनोंके बाद इस भवका समागम भी उस ही प्रकार व्यवहारमात्रका भी कुछ न रहेगा। योगिराज ज्ञानीसत श्लाघनीय हैं। जो अपने को मात्र ज्ञानस्वरूप ही निहारते हैं और ऐसे ही श्रद्धा बनाते हैं। जैसा अभ्यास होता है वैसी ही इस जीवकी प्रवृत्ति होती है। पूर्व पुण्य उदय कर सुखसम्पन्न और अनुकूल स्त्री पुत्रादिकके कारण महाभाग पुरुष संसार सुखसे भी सुखिया रहते हैं और जो इस प्रकारके सुखिया रहे थे ज्ञान पाने पर जब वैराग्य बढ़ा, सकल सन्यास किया उनके दृढ मन, वचन, कायकी स्थिरता हुई। जैसे स्वरूपाचरण चारित्रका वर्णन करते समय यह बताया गया है कि ऐसी निश्चल काया हो जाती है कि पत्थर जानकर जंगलके पशु उससे अपनी खाज खुजाने लगते हैं। आत्मध्यानकी ऐसी ही विचित्र महिमा है। परमसुखिया तो तीर्थंकर चक्रवर्ती भी तब हुए जब आत्मज्ञानके आग्रहसे मेरुपर्वतवत् निश्चल विराजे। अपने आपके अन्तर मे अपने आपके मनको निश्चल रखनेका यत्न करना चाहिए।

दु.खके कारणको खोजकर दूर करना— यह मन जिसका निश्चल नहीं रह पाता है उसके विचल होनेका कारण है किसी परपदार्थसे अपना हित और बड़प्पन समझना। जब कभी भी अपने को क्लेश हो, मनकी व्यग्रता हो तो बजाय किसी परवस्तुके विग्रह अनुग्रह करनेके एक यह तलाश करना चाहिये कि मैंने किस परपदार्थको अपने उपयोगमे जो स्थान दिया है, उसे खोजो। परका आश्रय लिए बिना इस जीवको क्लेश हो नहीं सकता। यदि किसी भी परको अपने उपयोगमे स्थान न दिया जाय तो क्लेशका फिर कोई कारण ही नहीं बन सकता। यह खोजो अपने आपमे कि मैंने किस पर-पदार्थमे अपनी मोहदृष्टि की है, वही दु.खका कारण है। चाहे कुछ करना पड़े किसी परिस्थितिमें कैसी भी क्रिया बने, लेकिन कुछ क्षण, कुछ मिनट अथवा कुछ सेकेण्ड ऐसी अपने अन्तरङ्गमे स्थिति बनाना चाहिए कि जिस समय किसी भी परद्रव्यके प्रति मोह और अनुराग न जगे, विकल्प न उठे ऐसी मनकी सताक करें जिसके पश्चात् यह उपयोग भी सभल जाय। ऐसा करना प्रत्येक कल्याणार्थीका कर्तव्य है। धनसचय विशेष होने से आत्माका कुछ भी पूरा न पडेगा। इन सब समागमों को छोड़कर जाना पडेगा। जैसा परिणाम किया उसके अनुकूल आगे यह वैसा ही स्थान पायेगा

पूरा न पडेगा यहां के समागमोंसे। समागमोंकी दृष्टि नियमसे क्लेश का कारण बनती है। उन सब क्लेशोंसे निवृत्त होनेका उपाय क्लेशरहित ज्ञानस्वरूप निज अन्तस्तत्त्वमें अपने उपयोगको लगाना है। जिसने ऐसा किया वह पुरुष धन्य है, इसी सम्बन्धमें गुणभद्र आचार्यदेव और कह रहे हैं।

बाल्ये वेत्सि न किञ्चिदप्यपरिपूर्णाङ्गो हितं वाहितं,
कामान्धः खलु कामिनीद्रुमघने भ्राम्यन् वने यौवने।
मध्ये वृद्धतृषार्जितुं वसुपशो क्लिश्नासि कृष्यादिभि—
र्वृद्धो वार्धमृतः क्व जन्मफलितं धर्मो भवेन्निर्मलः ॥८९॥

बाल्यकालके क्लेश — बालक अवस्थामें जब सम्पूर्ण अंगोंसे पूर्ण भी न था, कुछ हित अहितको जानता भी न था। बालक क्या जाने हित और अहित को? वह तो जलती हुई अग्निके कणको देखकर उसे भी हाथसे उठा कर मुखसे खानेका यत्न करना चाहता है। ऐसी बाल्यावस्थामें हित और अहितका कोई परिज्ञान नहीं रहा और जब जवानी आयी तो स्त्रीविषयक कामवासनाके कारण भ्रमण करते हुए यह अंध बना और मध्यमें जो स्थिति हुई वह तृष्णाकर व्याप्त हुई। पशुवोंकी भांति भार ढो ढोकर धन उत्पन्न करने के लिए अनेक श्रम कर रहा है। कोई खेतीमें महान् श्रम करता है, कोई किसी व्यापारमें कष्ट उठाता है।

सर्वत्र यथार्थज्ञानका आवश्यक कर्तव्य — देखिये ये ही सब बातें एक आत्मविवेक पाये बिना निन्दामें निहित होती जा रही हैं। क्या करें? गृहस्थावस्थामें रहकर कुछ करें नहीं क्या? खेती व्यापार सेवा कुछ भी व्यापार न करे क्या? यह तो गृहस्थके लिए गृहस्थावस्थामें हितकर नहीं हो सकता। सुनिये गृहस्थ त्रिवर्गका साधक कहलाता है—धर्म, अर्थ, काम, इन तीनों वर्गोंको एक समान सेवन करे उसे सद्गृहस्थ कहते हैं। कोई पुरुष धर्म धर्मको ही स्थान देता रहे, गृहस्थावस्थामें न धनके अर्जनकी ओर दृष्टि दे और न परिवारपालन देशपालन परोपकार आदिक उपायोंकी ओर दृष्टि दे, केवल धर्म ही धर्मकी धुन रक्खे, ऐसे पुरुषको तो साधु हो जाना पड़ता है। न वह गृहस्थ रहे, धर्म, अर्थ, काम इन तीनोंका निरादर करे तो उस गृहस्थीकी आगे निभ नहीं सकती कुछ। ठीक है तिस परभी इतना तो कर्तव्य है ही कि निजको निज परको पर जानकर परवस्तुवोंमें हितका विश्वास न करे। इस मध्यावस्थामें तृष्णा बढ़ती है तब यह पशुके समान भार ढो ढोकर महान् क्लेश पाता है।

अज्ञानीके अवस्थाकी बुद्धिविकलवता — जब वृद्ध हुआ यह तो

अर्द्ध मृतक सम हो जाता है। अंग शिथिल हो गए। लोग कहते हैं ना कि यह तो अधमरा हो गया। सारे मनुष्यजन्ममें समस्तपनोंमे ऐसी दशाएँ गुजरें, वह जीवन कैसे सफल होगा? निर्मल धर्म उनके कहांसे उत्पन्न होगा? छह ढालामें लिखा है--बालापनमें ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणीरत रह्यो और जब वृद्ध हुआ तो अर्द्ध मृतकसम भयो, अब बतावो अपना स्वरूप वह कैसे लख सकता है? यह सर्वथा एकान्तसे बात नहीं है। कोई वृद्ध पुरुषका अथवा सभी का जीवन रहा आये तो वृद्ध होना ही पड़ता है। क्या सारे जीवन भर बड़े-बड़े धर्म तपस्याएँ संयम इन कार्योंमें अपने को लगाए और बूढ़े हो गए तो यदि आत्मज्ञानके अपात्र रह जायेंगे तो इस तरह फिर साधु बननेकी क्या जरूरत है? आखिर बूढ़े होना ही पड़ेगा और बुढापेमे आत्मस्वरूप से वंचित रह जाना होगा। उसका समाधान यह है कि यह सब जो कहा गया है वह ऐसे एक व्यक्तिके बारेमें लगाना चाहिए, जिस पुरुषने बचपनमे कुछ ज्ञान प्राप्त नहीं किया है और जवानी में कामाध रहा वही पुरुष जब वृद्धावस्था पाता है, अंग शिथिल हो जाते हैं, भीतरमें जो आत्मबल नहीं बना पाया, सो वह पुरुष अब कैसे आत्माका ज्ञान कर है। सकता एक व्यक्तिके सम्बन्धमें बात समझना।

ज्ञानीके अवस्थाकृत विक्लवताका अभाव-- जो पुरुष बचपनमें ज्ञान प्राप्त करता है और जवानीमे भी विषयासक्त नहीं होता, उसके बुढ़ापा आ जाय तो बुढ़ापेमें भी उसके ज्ञानधर्म उत्साह सब कुछ जरूर चमकता है। जिसने युवावस्थामें धर्मकी ओर दृष्टि नहीं की, वह ही पुरुष वृद्धावस्थामे विचलित होता है। अपना कर्तव्य है कि कोई भी उम्र हो, बचपन हो, जवानी हो अथवा वृद्धावस्था हो, जब कभी भी ज्ञान किरण जगे, दृष्टि जगे हमें उस आत्मज्ञानकी उपासनामे लगना चाहिए। मुख्य काम तो जीवका आत्मकल्याण है और गौण काम है आजीविका का साधन। ऐसा निर्णय ज्ञानियोंके होता है। जो आनन्द अपने आप को केवल ज्ञानमात्र निहारे रहनेमें होता है वह आनन्द अन्य किसी भी बाह्यविषयोंकी साधना मे नहीं होता। ऐसा जानकर इस ही ज्ञानकी उपासनाके लिए अपना तन, मन, धन, वचन सब कुछ न्यौछावर कर दीजिए। यदि यह आत्मज्ञान मिल सका तो समझो कि मैंने सब कुछ पा लिया।

बाल्येऽस्मिन् यदनेन ते विरचितं स्मर्तुं च तन्नोचितम्,
मध्ये चापि धनार्जनव्यतिकरैस्तन्नार्पितं यत्त्वयि।
वार्द्धक्येऽप्यभिभूय दन्तदलनाद्याचेष्टितं निष्ठुर,
पश्याद्यापि विधेर्वशेन चलितुं वाञ्छस्यहो दुर्मते ॥६०॥

प्रवल वैरीके विनाश प्रोग्रामके अभाव पर आश्चर्य— कोई पुरुष यदि एक बार भी अपना बुरा करे तो उससे उपेक्षा तो हो ही जाती है, साथ ही उसके नाश करनेका भी सकल्प कर लिया जाता है, किन्तु देखो इन कर्मोंसे हम आपने अनादिकालसे नाना बुरा परिणमन किया, करते चले आ रहे हैं और इस भवमें भी अभी बतावेंगे कि कैसे-कैसे कष्ट इन कर्मों के निमित्तसे मिलते हैं, फिर भी कर्मोंके नाशका यह उपाय नहीं करता है।

बाल्यावस्थामें कर्मकृत उपद्रव - इस पर्यायमें बाल-अवस्थामें इन कर्मोंने जो कुछ तेरा बुरा किया उसका स्मरण भी उचित नहीं हो पाता है। बाल्यावस्थाके बालकोंको देखकर परख लो, न ज्ञान है, न विवेक है, न कुशलता, न वृद्धि, एक हम आपको उनकी निश्चिन्तता दिखती है, पर वे भी निश्चित नहीं हैं, उनके भी क्लेश हैं। उनके मनमाफिक कोई बात न हो सके तो वे दु खी हो जाते हैं। बच्चे जब चाहे रोते रहते हैं, उनके भी क्लेश हैं। विवेक तो है ही नहीं, बुद्धि नहीं है। यह तो बतानेकी बात है कि बच्चे कषायरहित होते हैं। अरे क्या उनके कषाय नहीं है? जैसी कषाय बड़ोंके है वैसी ही कषाय उन बच्चोंके है। वे बच्चे नहीं हैं, वे बूढ़े होनेके बाद आये हैं। पूर्वभवमें तो बडे-बूढ़े थे, कितना कषायोंका उनके पास स्टाक था। वह सब स्टाक लेकर बचपनमें आये हैं। उन्हें यों न देखना कि कषाय उनके नहीं है, पर इन्द्रिया अभी पुष्ट नहीं हैं, वे कषायोंका प्रकाशन नहीं कर पाते हैं, पर कषायें उनके भी हैं।

आबालवृद्धोंमें परस्पर दूसरेको सुखी माननेका भ्रम— बचपनकी अवस्थामें तो जवानीसे भी अधिक क्लेश हैं, पर लगता ऐसा है कि ये बच्चे अच्छे हैं। और बच्चे कोई ४-७ सालके हों तो वे सोचते हैं कि ये बडे लोग बडे अच्छे हैं। बड़ी अवस्थाके लोगोंकी, उन बूढ़ोंकी बातको उपादेय मानते हैं, सो उनकी नकल भी किया करते हैं। उन बूढ़ों जैसा कमर झुकाकर लाठी लेकर चलना, वैसा ही खांसना और इसमें वे बच्चे कुछ अपना बड़प्पनसा समझते हैं। अपनेको करनेका यही काम है, ये लोग बड़े अच्छे हैं, बच्चोंको वृद्धावस्था वाले सुन्दर लगते हैं, बड़ोंको बचपनकी अवस्था वाले सुन्दर लगते है। दु खी सभी एकसे हैं।

अहितकारी कर्मोंके प्रति— इन कर्मोंने क्या क्लेश उपजाए? इनके निमित्तसे हम कैसी दयनीय हीन स्थितियोंमें आये हैं, यह बताया जा रहा है। इतनी हीन स्थिति पाकर भी दु खोंसे दूर होनेका प्रोग्राम मनमें बैठता ही नहीं है। अरे जो कुछ यहां मिला है उससे क्या पूरा पड़ेगा? तृष्णा करके, असन्तुष्ट रहकर यह जीवन बिता दिया जायेगा और इसे आगे

अपनी यात्रा करनी पड़ेगी। इन कर्मोंने इस जीवका अनन्त बार बुरा किया। इनके नाश करनेका मनमें सकल्प क्यों नहीं करता ? बाल्यावस्थाके कष्ट बालक ही तो भोगते हैं। कुछ थोड़ीसी गलती हो जाये तो मां बाप उसे पीट देते हैं। वे बच्चे अपनी कल्पनावोंमें बसे हुए दु:खी होते रहते हैं। जब बाल्यावस्था आयी, किशोर अवस्था आयी तो उस समयके क्लेश भी विचित्र होते हैं। मध्य अवस्थामें विवाह हुआ, बड़े हुए, अब मध्य अवस्था के क्लेश नाना प्रकारके हैं। धनका उपार्जन करनेमें क्लेश और जिनको जितना धन मिला है वे उतनेको पर्याप्त समझते ही नहीं हैं। उससे अधिक होता तो सुख था, ऐसी कल्पना बन जाती है। सो जो कुछ पासमें है उसे भी आरामसे नहीं भोग सकते। यही स्थिति है मध्य अवस्थाकी। इस जवानीमें भी इन कर्मोंने क्लेश दिया।

सकल क्लेशोंका सामना— ऐसा कोई दु:ख नहीं बचा जो न मिला हो। सांसारिक रोग मानसिक कष्ट, अनेक चिन्ताएँ, कल्पनाएँ, इष्ट वियोग अनिष्ट सयोग अथवा बैठे-बैठे ही इच्छा बढ़ाकर निदान बना बनाकर दु:खी होते रहते हैं। सभी क्लेश इस जीवने पाये हैं। कष्टोंसे परिपूर्ण यह मध्य अवस्था है। ये सब कष्ट कर्मोंके निमित्तसे ही तो होते हैं। कष्ट आया जीवमें, उपादान है यह आत्मा, पर ऐसा कष्ट भोगना इस आत्मामें अपने आपके स्वभावसे नहीं होता। आत्माका स्वभाव तो शुद्ध शान्त निर्विकार ज्ञानानन्दमय है। इन कर्मोंके निमित्तसे हमें बार-बार कष्ट भोगना पड़ा, तिस पर भी इन कर्मोंसे विरक्ति नहीं आती। ओह! कितना कषायोंका मैल चढ़ा हुआ है कि कषायोंसे दु:खी भी होते जाते और उन कषायोंको छोड़ भी नहीं पाते। वस्तुस्वरूपका अभ्यास करो, भेदभावनाका अभ्यास करो, समस्त परवस्तुवोंसे और औपाधिक भावोंसे न्यारे निज ज्ञानतत्त्वकी आराधना करो अन्यथा संकटोंसे छूटनेका मार्ग न मिलेगा।

कर्मोंका वैर— इन कर्मोंने तो दांत भी तोड़ डाले वृद्धावस्थामें। कोई किसीके दांत तोड़ डाले तो कितनी कलह हो जाती है और ये दान्त अपने आप जो गिरते हैं इनको किसने तोड़ा ? कर्मोदयने। तो ये कर्मोदय दांत भी तोड़ देते, आंखें भी फोड़ देते। अनेक कष्ट आये। बार बार कष्ट भोगे, फिर भी उन कर्मोंके नाशका उद्यम नहीं करना चाहते। ये कर्म जो दु:खोंके निमित्तभूत हैं ये परपदार्थ हैं, इनका हम कुछ परिणमन नहीं कर पाते। अरे अपने परिणामोंको हम निर्मल बनाएँ, भावकर्म, रागादिकभाव इन्हें न होने दें तो ये कर्म तो अपने आप खिर जायेंगे। उनके नाशका क्या उद्यम करता ? वृद्ध अवस्थामें इन कर्मोंके निमित्तसे तेरा बड़ा अ[illegible]

दांत तोडे, आंखें फोडीं, कान बहिरे कर डालें, मु ह टेढ़ा कर दे, शिथिल हो गए, अरे ऐसा कोई पुरुष करे तो लोग उसे बड़ा अन्यायी कहते हैं, और इन कर्मोंके उदयसे ये सब होते जा रहे हैं। उन कर्मोंके विनाशका चिन्तन नहीं करते।

आत्मोपलम्भका अभ्यास— भैया ! एक बार तो अपनी चीज छू लो। अपनी चीज क्या ? आत्माका ज्ञानस्वभाव ज्ञानप्रकाश निजस्वरूप और उसे छूना कैसे होगा ? इस उपयोगसे ज्ञानसे अपने ज्ञानको इस ज्ञान स्वरूप आत्मतत्त्वमें लगावो। वहां जो अनुभव जगेगा वही अनुभव शरण है। इन अनन्त जीवोंमें से एक दो जीवोंको अपना सब कुछ परिचयी मान लेना, ये ही मेरे सब कुछ हैं, ऐसी जो एक भ्रमपूर्ण श्रद्धा बना रहा है यह इस आत्मा भगवान्को एक मुदी चोटकी तरह निरन्तर कष्ट दे रहा है। अपने ज्ञानस्वभावका उपयोग करना और उस ज्ञानस्वभावमें ही उपयोग करना और इस ज्ञानस्वभावमें ही उपयोगको स्थिर बनाना, यह बात सुगम है, पर इसके लिए हमें चाहिए अहर्निश अभ्यास। कर्तव्य तो यह होना चाहिए कि जितना समय हमारा धनार्जनमें लगाया जा रहा हो अथवा जितना समय गृहस्थीकी व्यवस्थामें लगाना पड़ रहा हो, लगायें, पर उससे बचा हुआ शेष समय तो सत्संगति, धर्मचर्चा, ज्ञानाभ्यास आदि कार्योंमें लगायें। नगरमें दो चार आदमी भी ऐसा करने लगें तो यह परम्परा बन जायगी। उनके बाद फिर कोई लोग होंगे।

हितप्रयोगमें हित— काम करनेको तो यही है आत्मदर्शन व आत्म-रमण। केवल बातोंसे तो पेट नहीं भरता। इस ससारके सकटोंसे सदाके लिए छूटनेकी बात सोचो और काम कुछ न करना पडे, यह नहीं हो सकता। एक बालक १०-१२ वर्षका अपनी मासे कहने लगा, मा मुझे तैरना सिखा दो। वह बालकोंको तालावमें तैरता हुआ, किलोल करता हुआ देखता था, एक दो बार वह खुद पानीमें घुस गया था, डूबते भी बचा था। बहुतसे बालकोंको डूबते मरते भी देखा था, पर उसके चित्तमें यह उत्सुकता जगी कि मैं भी तैरना सीख लूँ और पानीमें तैर कर खेला करूँ। सो वह बालक अपनी मासे बोला—मा मुझे तैरना सिखा दो। मा कहती है— बेटा ! सीख जावोगे, सिखा देंगे। हा सिखा तो दो, मगर पानीमें मुझे पैर न रखने पड़ें। अब बतावो पानीमें घुसे बिना तैरना कैसे सिखाया जा सकता है ?

प्रयोग बिना विद्याका अविकास- एक स्कूलमें बच्चोंको तैरनेकी शिक्षा दी जा रही थी, उनके कोर्समें था। सो अध्यापकने किताबोंसे तैरने

की खूब शिक्षा दी। इस तरह कूदना चाहिए, इस तरह लेट जाना चाहिए, ऐसे हाथ पैर फटकना चाहिए। खूब सिखा दी। ६ महीनेका कोर्स था। अब इसके बाद मास्टर ने कहा कि अब सब लोगोंकी परीक्षा होगी। सब बच्चे नदीके किनारे गए। अब मास्टर उन बच्चोंसे कहता है कि हम सब एक दो तीन कहेंगे, सो तीन कहनेके साथ ही साथ सब बच्चे नदीमें कूद जायेंगे और अपनी तैरनेकी कला दिखायेंगे। बहुत अच्छी बात। मास्टर ने एक दो तीन कहा कि सभी बच्चे नदीमें कूद गए। सभी बच्चे डूबने लगे, तब नाविक आया और उन बच्चोंको उठा-उठाकर नावमें धरा। फिर नाविकने मास्टरसे कहा कि तुम बडे बेवकूफ हो, इन बच्चोंको यों ही नदी में पटक दिया। मास्टर कहता है तुम क्या जानते हो ? हमने ६ महीने तक इन बच्चोंको खूब ट्रेनिंग दी। हर बात सीख ली, कैसे कूदा जाता है, कैसे तैरा जाता है ? भैया ! इस किताबी पढ़ाईसे तैरनेका काम नहीं बन सकता। अरे वह तो प्रयोगसाध्य चीज है, किताबसाध्य नहीं है।

आत्मानुभवका प्रयोग— यह आत्मानुभव भी किताबी पढ़ाईसे नहीं होता, वह तो प्रयोगसाध्य बात है। लगाओ चित्त, अनुभव करो, हिम्मत बनाओ, सबको पर जानकर उनकी उपेक्षा करो। अपने आपके इस ज्ञान-स्वभावी प्रभुसे नेह लगानेकी धुनि बनाओ तो यह बात मिलेगी। हम प्रयोग कुछ न करना चाहें तो यह सिद्धि नहीं हो सकती है। प्रयोग भी हमारा इस आत्माकी आराधनाका तब बन सकता है जब कि उसकी एक धुनि बन जाय। २४ घंटे जिसकी जो धुनि होती है उसकी ओर ही तो उसकी प्रवृत्ति बनेगी। अपनी अपनी धुन देख लो। सब अपनी-अपनी धुनि धुना करते हैं। देख लो। जो जड़ पौद्गलिक वैभव परिजन रूप रंग विषय कषायोंमें ही धुन बनाये रहते हैं उनको उसकी ही धुन है। वे सब विनश्वर हैं, असार हैं, उनसे कोई शान्तिकी सिद्धि नहीं है। धुन बने, लगन बने तो आत्मस्वरूपकी आराधना की बने। उसमें लगने वालोंकी प्रवृत्ति ऐसी होगी कि बात करते हुए भी बात नहीं कर रहे हैं, खाते हुए भी नहीं खा रहे हैं। जिनके अध्यात्मधुन बनती है उनके चित्तमें वही बात बसी रहती है।

प्रभुभक्तिकी शरणरूपता— प्रभुकी भक्ति करते हुएमें प्रभुसे भीख मांगनेकी जरूरत नहीं है कि हे प्रभो ! मुझे शरण मिले। जब तक लगन नहीं लगी है तब तक ही शरण मांगी जाती है। शरणका मांगना तब तक नहीं बन सकता जब तक प्रभुको यह न बताये कि हममें लगी है लगन। लग तो जाय लगन, शरण होंगे प्रभु, पर अपने चित्तसे पूछो तो सही कि प्रभु से लागी लगन कि पन्चों और घरसे लागी लगन। यहां भगवान् शरण

देने न आयेंगे। भगवान्के प्रतिनिधि आप ही स्वयं हैं। सब काम आप ही कर लेंगे भगवान्के नाम पर। जो धुन होगी, जैसी लगन होगी तैसा यहा बीतेगा, गुजरेगा। ये सब चीजें उदारता बिना, त्याग बिना सिद्ध नहीं हो सकतीं। वैभव परिवार बच्चोंमें ही यदि लगन लगी है तो लगाये रहो, धुनमें बसाये रहो, अन्त बतावेगा, समय बतावेगा कि तुमने व्यर्थ समय खोया। जो जीवन व्यतीत हुआ है वह व्यर्थ ही गया। यह खुद मान जायेगा आपमें।

विषयखाज — जैसे जिसको खाज हुई है, दाद हुई है, खुजाते समय तो उसे आगे पीछेका भी ध्यान नहीं रहता, वह उसमे बडा चैन मानता है। जिनके दाद, खाज होती है उनके गलेमें खूब बात उतर रही होगी। जैसे योगी लोग आत्मध्यान करके खूब प्रसन्न होते हैं, ऐसे ही ददैला भी खुजलाते समय सब दुनियाको भूल जाता है, हाथ पैरको टन्नाकर सुख लूटा करता है। ठीक है, परन्तु उसके बाद यह रोग और बढ गया। उस रोगको मिटाने की फिर पड़ती है, ऐसे ही पञ्चेन्द्रियके विषय और मनका विषय यह खाज है। इस खाजको खुजाते समय आगे पीछेका कुछ ध्यान नहीं रहता। उस समय तो यहा सब कुछ सार नजर आता है। जब समय मरनेका आता है तब मालूम होता है कि हमारा अतीत बिगाड़का समय कितना खोटा गुजरा। यों ही बनी बातका मूल्य बिगडे समयसे पूछो। पछतावा होता है कि यों न व्यतीत होता तो अच्छा था।

बने और बिगड़ेका माप— एक अभिमन्यु नाटकमे आया है कि जब अभिमन्यु गुजर गया तो उसकी मा अपने मरे हुए बच्चोंको देखने आयी। तो कुछ लोगोंने उस मा को रोका कि कहीं उस मरे हुए लड़केको देखकर यहा मा भी अपने प्राण न दे दे। उस समय मा कहती है— "करुणा निधान करुणा, करुणा भरे से पूछो। ज्वाला वियोगाका दु:ख, छाती जरेसे पूछो।। क्या मूल्य है बनेका, बिगडे समयसे पूछो। बच्चेका प्यार उसकी माके हृदयसे पूछो।। उस समय उसको हितकारी मानो। श्रीकृष्णने ही उसे रोका था। करुणाकी बात भरे ही बता सकते हैं, वियोगका दु:ख वियोगी ही बता सकते हैं। बने समयका कितना बड़ा महत्त्व है यह बिगडे समयसे ही अन्दाज किया जा सकता है। अभी तो सब बिगड़ा जा रहा है। विषयों की खाजके सुख लूटे जा रहे हैं। अभी अच्छी स्थितिका मूल्य कुछ नहीं जँच रहा है। निर्विकार ज्ञानानुभवमें विविक्त निज अन्तस्तत्त्वका आश्रय हो, उसकी जो स्थिति है उसका महत्त्व समझमें नहीं आ रहा है, क्योंकि यह अभी विकल्पोंका समय चल रहा है। जब बननेका समय आयेगा तब

बिगाड़का खोटापन भी समझमें आयेगा और बनेका महत्त्व भी बिगड़े समयकी याद करके समझमें आयेगा, अन्तरंग निमित्त कारण। इन कर्मोंके उदयसे निमित्तसे कैसी-कैसी परिस्थितियां हुई हैं, बड़े-बड़े अपमान हुए हैं, फिर भी इन कर्मोंके ही आधीन चलनेकी चाह रखते हैं। हे आत्मन्! अपने अन्त पुरुषार्थको प्रबल बनावो और अपना पौरुष स्वरूप सभालकर कर्मोंके अभावसे निराकुल रहनेका अब संकल्प करो।

अश्रोत्रीव तिरस्कृता परतिरस्कारश्रुतीनां श्रुति—
श्चक्षुर्वीक्षितुमक्षमं तव दशां दूष्यामिवान्ध्यं गतम्।
भीत्येवाभिमुखान्तकादतितरां कायोऽप्ययं कम्पते,
निष्कम्पस्त्वमहो प्रदीप्तभवनेऽप्यासे जराजर्जरे ॥६१॥

वृद्धावस्थामें बधिरता— वृद्धावस्थामें इस मनुष्यकी क्या हालत हो जाती है और उस हालतमें भी यह अपनी रक्षाका कुछ विचार नहीं लाता है। इस मर्मका इस छन्दमें वर्णन किया है। वृद्धावस्थामें कान बहिरे हो जाते हैं। बहिरे क्या हुए? वृद्धावस्था एक ऐसी असमर्थ दशा है कि इस अवस्था वाले को जो चाहे गाली दे, अपमान करे, तिरस्कार करे, ये सब बातें चलती हैं। अपमान, निन्दा, तिरस्कारके वचन सुनकर इस वृद्ध पुरुषके कान थक गए। अब ये कान अपमान और निन्दाके वचन नहीं सुन सकते हैं। इसलिए ये थक करके शिथिल हो गए हैं। कवि अलंकारसे कह रहा है। वैसे तो जो हितकी बात नहीं सुन सकते, हितकी बातको हृदयमें धारण नहीं कर सकते, वे सब बहिरे हैं।

बहरोंकी गोष्ठी— एक कथानक है कि एक मुसाफिर किसी गांवको जा रहा था। रास्तेमें बहुतसी भेड़ बकरियां चराने वाला गड़रिया इस मुसाफिरको देखकर सोचने लगा कि मैं इस मुसाफिरसे कहूं कि तू दो घन्टेके लिए हमारी बकरियोंको रखे रहना, हम घर जाकर भोजन कर आये और आकर संभाल लेंगे। भाग्यकी बात है कि वह मुसाफिर भी बहिरा था और वह गड़रिया भी बहिरा था। सो गड़रिया मुसाफिरसे बोलता है इशारा करके कि भाई इन बकरियोंको रखाये रहना २ घन्टेके लिए रोटी खा आयें, हम फिर आकर संभाल लेंगे। वह मुसाफिर खड़ा हो गया। गड़रिया भोजन करने चला गया। भोजन करके जब आया तो गड़रियेने सोचा कि इसने दो घन्टे मेहनत की तो इसे कोई बकरी इनाममें देना चाहिए। सोचा कि कौनसी बकरी दें? कोई ज्यादा काम तो किया नहीं इसने दो ही घन्टे तो काम किया। बढ़िया बकरी देने लायक परिश्रम तो किया नहीं, इसे टाग टूटी वाली बकरी दे देना चाहिए। देने लगा वह अपनी लंगड़ी

बकरी तो उस मुसाफिरने सोचा कि यह कह रहा है कि तुमने मेरी बकरी की टाग तोड़ दी। सो गुस्सामे आकर कहता है कि हमने तो दो घटे तक इतना श्रम किया, फिर भी व्यर्थका इल्जाम लगाते हो कि बकरीकी टांग तोड़ दी। गड़रिया ने समझा कि यह कहता है कि हम लगडी बकरी न लेंगे, हम तो अच्छी लेंगे। सो कहता है गड़रिया कि तुमने थोडी ही देर तो सेवा की, अच्छी बकरी तुम्हें कैसे दे दें? दोनों परस्परमें लड़ने लगे। इशारे से यह तय हुआ कि चलो अपन तीसरे व्यक्तिसे इसका न्याय करा लें। अब वे तीसरा व्यक्ति ढूँढ़ने लगे। रास्तेमे सामने से एक मुसाफिर अपने छोटे घोडे के बच्चे पर सवार हुआ चला आ रहा था। इन दोनोंने अपना झगडा उसके सामने रक्खा। भाग्यकी बात कि वह घुड़सवार भी बहिरा था। उसने समझा कि ये कह रहे हैं कि यह घोडा चोरीका है। सो कहता है कि यह घोड़ा तो हमारे घरकी घोड़ी का पैदा हुआ है, क्यों बेकारमें घोडेकी चोरी का इल्जाम लगाते हो, भगवान् कसम हमने घोड़ा नहीं चुराया। अब उन तीनोंमें लडाई होने लगी। तीनोंमें इशारे से यह तय हुआ कि चलो अपने किसी चौथेके पास चलकर न्याय करा लें। चले चौथे व्यक्तिको ढूँढनेके लिए। एक गांवमें एक पटेल (गावका मुखिया) मिला। उस दिन उस पटेलसे उसकी औरत की लड़ाई हो रही थी। लड़ाई हो ही रही थी कि उन तीनों ने पहुचकर अपनी-अपनी बात उसके सामने रक्खी। सुयोगसे वह पटेल भी बहिरा था। सो मुसाफिर तो कहे कि यह गडरिया हमे बकरी की टाग तोड़नेका व्यर्थमें इल्जाम लगाता है, गडरिया कहे कि इसने दो ही घंटे तो हमारी भेड बकरी ताकी, कैसे हम इसे अच्छी बकरी दे दें, घुडसवार कहे कि यह घोड़ा तो हमारे घरकी घोड़ीसे पैदा हुआ है, ये व्यर्थमें क्यों इल्जाम लगाते हैं कि यह घोडा चोरीका है। पटेल ने समझा कि हमारे घर लडाई हुई है, सो ये सब लोग समझाने आये हैं। सो पटेल बोला कि तुम सब चले जावो यहासे, तुम कौन समझाने वाले होते हो, यह तो हमारी घरेलू लड़ाई है। तो जैसे जहा बहिरे बहिरे ही बसे हो, वहां कैसे व्यवस्था बने? क्या न्याय हो, ऐसे ही इस जगत्में जो हितकी बात सुन न सके, हृदयमें समझ न सके, मोक्षमार्गकी बात जिसको न रुचे उसे तो बहिरा ही कहना होगा। जहा बहिरे बहिरे ही बस रहे हों वहा सभी अपनी अपनी गा रहे हैं। हित की बात कोई नहीं सुन सकता है।

वृद्धावस्थामें बधिरता व कम्पनका अलकारिक कारण— वृद्धावस्थाकी बात कही जा रही है कि इस वृद्धावस्थामें कानोंने काम करना बद कर दिया। तिरस्कार, अपमान, निन्दा गाली आदिक दुर्वचनोंको सुन सुनकर कान थक

गए। सो जो थक जाता है वह काम बंद कर देता है। वृद्धावस्थामें इन कर्णों की शक्ति घट जाती है। और इन आंखोंने भी अपना काम बंद कर दिया। इसकी अब दयनीय दशा हो गयी, अंध हो गया। और देखो ये बूढ़े काप क्यों रहे है, इनके कम्पन क्यों हो रहा है? कविसे पूछो, वे सबका राज जानते हैं ना। कवि जवाब देता है कि अब इस वृद्धके सामने काल आ गया है, सो उसके डरके मारे काप रहा है। अर्थ उसका यह लगाना है कि वृद्धावस्थाके बाद चौथी अवस्था और क्या आयेगी? मरण वृद्धावस्थामें थर-थर कांपने लगता है, शरीरमें बल नहीं रहता है। ऐसी तो इसकी स्थिति है। वृद्धावस्थामें सारे शरीरके अग जीर्ण हो गए। जैसे अग्नि लग जाने पर घरकी जो दशा हो जाती है, ऐसी ही दशा इस शरीरकी हो जाती है। फिर भी तू हे वृद्ध प्राणी, हे आत्मन्! क्यों व्यर्थकी चिंताएँ लाद रहा है? इन चिन्तावोंसे कुछ भी तो हित नहीं होनेका है। अहो, आशा जीर्ण नहीं हुई, किन्तु खुद ही जीर्ण हो गए।

ममत्वका सकट— भैया! जितने सकट हैं वे सब अपने से भिन्न परपदार्थमें ममत्व रखनेके कारण हैं। कोई पुरुष धनमें ममत्व रखता है तो उसके संकट आता है। कोई पुरुष शरीरमें ममत्व रखता है उसके कारण संकट आता है। सकट भी क्या, विकल्प, कल्पनाजाल। इन संकटोंसे छूटने का उपाय भी तब ही मिलेगा जब सर्वसे भिन्न ज्ञानस्वरूप अपने आत्मतत्त्व को निहारा जाय। जब भी आनन्द मिलेगा इस ही उपायसे मिलेगा। जिनको भी आनन्द मिला है उन्हें इस उपायसे ही मिला है। बूढ़े पुरुष अपनी कमर झुकाकर चला करते हैं। झुक ही जाती है कमर। और किन्हीं किन्हीं की कमर तो इतनी विशेष झुक जाती है कि घुटने और सिरमें मुश्किलसे हाथ भरका अन्तर रहता होगा। ये बूढ़े अपनी कमर झुका कर क्यों चलते हैं? किसी कविसे पूछो। कवि बताते हैं कि ये वृद्ध पुरुष नीचे झुककर अपनी जवानी ढूँढ़ रहे हैं। उनकी जवानी कहीं गिर गयी है, इस लिए वे अपनी जवानी ढूँढ़नेके लिए झुककर चलते हैं। कहीं जमीन पर गिर गई हो, मिल जाय, यह तो कविकी बात है। वृद्धावस्थामें यह स्थिति हो जाती है, यह कुछ बूढ़ोंको सताने की बात नहीं कही जा रही है। बात यह दिखायी जा रही है कि बचपनमें लोग अनेक विकल्प कर करके तृष्णा आशाजाल गूँथ-गूँथकर धन सचयको धुन और स्वप्न बना बनाकर ऐसे बूढ़े हो जाते हैं, फिर भी यह आशा जीर्ण नहीं होती। यह सब व्यर्थका रोना है। एक आत्मस्वरूपकी भूलकी, उसके फलमें यह सब रोना रोना पड़ता है।

ज्ञानभावनाका महत्त्व— किसी भी क्षण जितनी देर आकाशमें

बिजली चमकती है, एक आध सेकेण्ड को भी उतनी ही देर अपने आपमें बसा हुआ यह ज्ञान विकास इस उपयोगकी नजरमें आ जाय, इतने ही क्षणों मे इस जीवको मोक्ष प्राप्त होनेका फैसला हो जाता है। जिसने एक क्षण भी अपने आपमें बसे हुए ज्ञानस्वरूप का अनुभव कर लिया उसका जीवन सफल है। एक क्षण भी अपने आत्माका यह एकत्व सहज ज्ञानप्रकाश नजर में आ जाय तो अनन्त कालके लिए सदा आनन्दमग्न रहनेका निर्णय हो जाता है। भावनाके आधीन ही ससारमें रुलनेका काम मिल जाता है और सदाके लिए सकटोंसे छूटकर शुद्ध सहज आनन्दमें मग्न होनेका काम कर लिया जाता है। अब जैसी भावना, जैसा मन करना हो तैसी भावना बना लेनी चाहिए।

अभीष्टकी भावनासाध्यता— भैया! किसीके सामने एक ओर खली रख दी जाय और एक ओर रत्न रख दिया जाय और उससे कहा जाय कि जो तू मागता हो सो माग ले या जो तू उठाना चाहता हो सो उठा ले और वह उठाले खलका टुकड़ा तो उसे तो लोग पागल कहेंगे। यों ही हम आपकी भावनाके आधीन ही दो बातें हैं, ससारमे अनन्त कालके लिए रुलना और अनन्तकालके लिए ससारसे छूटकर आनन्दमय रहना—ये दोनों बातें हम आपको केवल भावनासे मिलती हैं। उसमें किसी परद्रव्यका लगाव नहीं लगाया जाता है। एक निर्विकल्प निश्चल शुद्ध निज ज्ञानस्वभावकी रुचि जगे, यही मात्र मैं हू, अन्य सब झूठ है, ये संसारमें रुलानेके कारण हैं, ऐसी भावना बने, ज्ञान भावना जगे तो इसके परिणामसे मुक्ति मिलेगी। क्या क्या मुक्तिके लिए करना है? केवल एक भाव। केवल भीतरमें भावना बनायें उसके फलमें मोक्ष मिल जायेगा। और देखिये जहा यह भाव बन जाय, यह घर मेरा है, वैभव मेरा है, इन लोगोंके कुछ भला कह देनेसे मेरी इज्जत बन जायगी, मेरा बड़प्पन हो जायेगा। कर क्या रहा है यह? भीतर अपने ही प्रदेशोंमें रहते हुए एक भाव बना रहा है। भावोंके अतिरिक्त यह अज्ञानी अन्य कुछ नहीं कर रहा है। अज्ञान भावनाके फलमें यह ससार में जन्म मरणका चक्कर लगाकर रुलता फिर रहा है। कीट पतगा बन रहा है। देख लो—भावनाके ही फलमें अनन्त दुःख मिलता है और भावनाके ही फलमें अनन्त आनन्द मिलता है। इतने पर भी कोई भावना दुःख प्राप्त करनेकी ही बनाए तो अब उस पर क्या किया जाये? कोई स्वयं ही मरना चाह रहा है, बरबाद होना चाह रहा है तो उसे कौन रोके?

शुद्ध भावनामें निर्भयता— सारे विकास विकार नटखट सब भावना के आधीन हैं, इस भावका मर्म जिसने पहिचान लिया, जिसने केवल जिन

आत्मस्वरूपसे रिश्ता माना, उसे तो मरनेके समयमें भी भय नहीं रहता। जिसने मरण समयमें अपना परद्रव्योंसे कुछ सम्बन्ध नहीं माना है उसे मरनेका क्या डर ? जिसने परद्रव्योंमे आत्मीयताकी श्रद्धा नहीं बसायी है उसे मरतसे क्या डर ? उसे तो यह विश्वास है कि जो मेरा वैभव है, वह त्रिकाल भी मेरे से छूट नहीं सकता। और जो मेरा नहीं है वह त्रिकाल भी मुझमे आ नहीं सकता। ज्ञानस्वरूपकी उपासनामें ये सब चमत्कार बसे हुए हैं। चमत्कार क्या ? आनन्द मिल जाय। इससे भी बढकर कुछ चमत्कार है क्या दुनियामे ? ऐसा विशुद्ध आनन्द मिले जिसके बाद कभी दुःख आये ही नहीं- ऐसा आनन्द पानेका उपाय बन जाय तो इससे बढकर और चमत्कार क्या अच्छा है? यह चीज तब होगी जब अपनेको अकिञ्चन् माना जाय। मेरा जगत्में कहीं कुछ नहीं है। जिन्हें हम इष्ट मित्र कह रहे हैं, परिवारजन कह रहे हैं उनके ही कारण हमें विपदा आ जाय, मरण आ जाय, इतना तक भी हो जाता है।

निर्मोहमें निर्भयता— जिनको मोह ममता नहीं है, ज्ञानस्वरूप आनन्दघन अपने सहज स्वभावसे ही जिनकी प्रीति लगी है उनने निज-स्वरूपमात्रमे जो निजके सत्त्वका अनुभवन कर रहे हैं— ऐसे ज्ञानी संतोंको न इस लोकका भय है, न परलोकका भय है, न वेदनाका, न मरणका, न अरक्षा का, न किसी आकस्मिक घटनाका। दुःख उन्हें होता है जिनका दिल फँसा है कहीं औरोंकी ओर, निज गेहसे छूटकर अन्यत्र भागनेकी जिनके नौबत आ गयी। बुद्धिमानी उस सद्गृहस्थकी है जो अपना मरण समय सुधारले। मरणके समयमें रागद्वेष मोह न जगे, समता बनी रहे, धैर्य बना रहे।

मारणान्तिक कष्ट— देखो भैया ! प्रायः कष्ट भी सब इकट्ठा होकर मरणके समयमें ही आता है। देखते भी हैं कि मरणके समयमें कितनी वेदना हो जाती है ? अंग शिथिल हो जाते हैं, आत्मा खिंच रहा है, गलेके नीचे पानी नहीं उतरता, प्यास तेज लग रही है, किसी को कुछ बता नहीं सकते, करवट बदलते है तो बदल नहीं सकते। और तो कहानी क्या कहें, यों कह लो कि सारे कष्ट मिलजुलकर वहा ही आते हैं जहां इन कष्टो की दाल गल सके। जहां कुछ देहमे बल है वहां कष्टोंकी दाल पूरी नहीं गलती। इसलिए ये सारे कष्ट खिंच-खिंचकर वृद्धके ही पास पहुचते हैं। ऐसी स्थितिमें भी ज्ञानमें बड़ा बल है। थोड़ी ज्ञानशक्ति लगाने से ये सब कष्ट भाग जाते हैं। चित्तमे मात्र इतना ही बसाना है कि मैं तो ज्ञानपुंज मात्र हूं, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हूं, लो सारे कष्ट भाग जाते हैं। हिम्मत

करने वाले हिम्मत करते हैं। जैसे किसी बुढियाके घरमें दो चार चोर घुस आये तो वह बुढ़िया जरासा खास भर दे कि सारे चोर वापिस भागनेकी सोचते हैं और भाग जाते हैं। तो जैसे एक खासी मात्रसे चोर खिसक जाते हैं (चोरोंकी बात कह रहे हैं डाकुवोंकी नहीं, ऐसे ही इस ज्ञानकी क्षणिक झलक से ये सारे सकट भाग जाते हैं।

कष्टनिवारणका मौलिक उपाय— भैया! कष्टोंको जीतना है ना, तो बाहरी उपचार करके कहा तक जीतोगे? जैसे मेढकोंका तौलना बड़ा कठिन है। कोई जिन्दे मेढक एक किलो तौलकर दिखा तो दे। पलडे पर दो मेढक रक्खे जायेंगे तो दो उछल जायेंगे। तो जैसे जिन्दा मेढकोंका तौलना कठिन है ऐसे ही बाहरी उपचार कर करके कष्टोंका मिटाना कठिन है। कहा तक बाहरी उपचार करके कष्टोंको मिटावोगे? कभी पुण्य अनुकूल हो तो कहो कष्ट मिटानेका कोई रास्ता बन आये। कष्टोंके मिटानेका उपाय एक ज्ञानस्वरूप का अनुभव है। मैं ज्ञानमात्र हू। यहा केवल ज्ञानविकासके अन्य कुछ नहीं हैं, यह दृष्टि बने, समता जगे, समाधिमरण बने तो जैनधर्मका पाना और तप व्रत सयम आदिका करना सब सफल हो जायेगा। ऐसी दृष्टि बनावो कि मेरा समाधि मरण हो जाय और उसके योग्य अभीसे ज्ञानसाधन का विशेष उपाय बनावो।

अतिपरिचितेष्ववज्ञा नवे भवेत्प्रीतिरिति हि जनवाद ।
त्व किमिति मृषा कुरुषे दोषासक्तो गुणेष्वरत ॥६२॥

लोकरीति व अज्ञानरीति— लोककी ऐसी रीति है कि जिन पदार्थों में अधिक परिचय हो जाता है उनमें इस मनुष्यकी अवज्ञा हो जाती है और नवीन वस्तुका सम्बन्ध हो तो उसमें प्रीति हो जाती है। ऐसी लोकोक्ति है अथवा लोकरीति है। प्राय ऐसा देखा भी जाता है कि जिनके सगमें अधिक रहना होता है उनमें अवज्ञा हो जाती है। प्रीति, उत्सुकता, उत्साह फिर नहीं रहता है, लेकिन हे आत्मन्! यहा तुम उस लोकोक्तिको भी झूठ बना रहे हो। यह शरीर अनादि कालसे तुम्हें मिलता चला आ रहा है, इससे ज्यादा और परिचयकी बात क्या कही जाय? ये राग द्वेष विषय कषायके परिणाम अनादिकाल से तेरे साथ चले आ रहे हैं, कितना चिर-कालका परिचय है, इसमें तुझे अवज्ञा क्यों नहीं होती है? इन रागादिक भावोंका इतना अनादिकालीन परिचय है—इन विषयकषाय भावोंसे, इनसे तुझे ग्लानि नहीं होती। और सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र, जो आत्माका कल्याण करते हैं इनको अभी तक कभी नहीं प्राप्त किया गया। ऐसे गुणोंमें तू क्यों रति नहीं करता है? तू तो उल्टी-उल्टी चाल

चल रहा है।

स्थूलशरीर व सूक्ष्मशरीर— इस जीवके साथ दो प्रकारके शरीर लगे हुए हैं – एक सूक्ष्मशरीर, दूसरा स्थूलशरीर। सूक्ष्मशरीर तो तैजस और कार्माण है, स्थूलशरीर वह औदारिक हम आप लोगोंके जो लगा है वह है। इसके अतिरिक्त एक वैक्रियिक शरीर भी होता है। आहारक शरीर ऋद्धिधारी मुनियोंके प्रकट होता है। इन ४ प्रकारके शरीरोंमें तैजस और कार्माण ये दो शरीर जो कि सूक्ष्मशरीर कहलाते हैं, इस जीवके साथ अनन्तकालसे अब तक अनवच्छिन्नधारासे जिसका कभी एक सेकेण्डको भी वियोग नहीं हुआ है इस तरहसे चले आ रहे हैं और यह स्थूलशरीर जो मनुष्यके ढांचेमें है, मरकर कल कोई और शरीर बन गया तो स्थूल शरीरका तो परिवर्तन हो रहा है। आज मनुष्यका है, कल हाथीका है, फिर कल चींटीका है, विचित्र विचित्र परिवर्तन होते हैं, किन्तु तैजस और कार्माण शरीर इस जीवके साथ निरन्तर लगा आया है। इन दोनों शरीरों का कभी वियोग हो जाय तो फिर यह शरीर सदाके लिए विमुक्त हो जायेगा।

द्रव्यकर्म व भावकर्ममें भी मोहीके अपूर्वताका अभाव— भैया! कर्मों से भी तो अब तक विच्छेदरहित संबंध बना आया है। इन कर्मोंमें तुझे अप्रीति नहीं होती। भावकर्म, क्रोध, मान, माया और लोभ आदिक भाव भी अदलते बदलते हैं, किन्तु कोई न कोई विभाव सदा रहता चला आया है। कितने दिनोंका परिचय इन रागादिक भावोंका है, किन्तु तुझे इनमें अप्रीति नहीं होती है।

यह भी प्रसिद्धि है कि जिसका बहुत-बहुत सेवन हुआ हो, उसी विषयसे अनादर हो जाता है और जो कोई वस्तु अपूर्व प्राप्त हो, उसमें ही प्रीति हो जाए। मेरे रागादिकभावोंका सेवन अनादिकालसे हुआ। यही तो रागादिक भाव मेरे स्नेही सदा रहे हैं और रत्नत्रयका लाभ नहीं होता है। रत्नत्रयका लाभ एक अपूर्वलाभ है, इसमें तेरी प्रीति नहीं होती है। बड़े आश्चर्यकी बात है कि तू बड़े लोकविधानोंको भी हल्का कर देनेमें तत्पर हो रहा है।

रागादिकोंकी मायारूपतापर एक दृष्टान्त— ये रागादिकभाव पर-मार्थभूत नहीं हैं, ये किसीके बनकर नहीं रह सकते, इनका कोई निश्चित स्थान नहीं है। जैसे हाथ आदिक किसी वस्तुकी यहीं छाया पड़ती हो तो वह छाया न तो हाथकी है और न किसी वस्तुकी है, क्योंकि यदि वस्तुकी छाया होती तो सदा उसमें बनकर रहती। हाथकी छाया होती तो हाथमें ही

रहती, हाथसे बाहर न होती। तो परमार्थसे छाया किसीको नहीं कह सकते हैं। धूपमें हम किसी मार्गमें चलते हैं तो इस शरीरकी छाया पड़ती है। तो अब आप बताओ कि वह छाया किसकी है? वह छाया इस शरीरकी नहीं है। क्या वह छाया इस पृथ्वीकी है? यदि पृथ्वीकी छाया होती तो जब चाहे पृथ्वीमें रहती। आप पृथ्वी पर खडे हों या न खडे हों, छाया सदा पृथ्वी पर रहनी चाहिए। जैसे आपके खडे रहनेसे या न खडे रहनेसे पृथ्वीका जैसा रूप है, वैसा ही रहेगा अर्थात् आपके खड़े रहनेसे पृथ्वीके रूपमें कोई भी अन्तर न आएगा। और भी जो विशेषताएं पृथ्वीमें हैं, आपके रहने या न रहनेसे सदा रहेंगी।

क्या इस तरह छाया पृथ्वीकी बनकर हुई है? वह छाया परमार्थसे पृथ्वीकी नहीं है, तो क्या आपकी है, आपका रूप है, वह आपमें समायी हुई है, आपसे बाहर है क्या? आपका आकार प्रकार जो कुछ है, वह आपमें ही समाया है, आपसे बाहर नहीं है। हाथकी छाया हाथमें ही समायी हो, आप में ही समायी हो, यह भी नहीं है। तब छायाको किसकी बतायी जाए? वह छाया तो मायारूप है। इसी प्रकार ये रागद्वेष और कषाय, जिनके कारण इतने हैरान हो रहे हैं—ये सब मायारूप हैं। वास्तविक परमार्थभूत कुछ नहीं है।

रागादिकोंकी मायारूपता— अच्छा यह बताओ कि ये रागादिक भाव किसके हैं? परमार्थसे इनका कौन अधिकारी है? यदि यह बताओगे कि ये परमार्थसे आत्माके हैं तो फिर रागादिक भाव आत्मामें सदा ही रहने चाहिए। जैसे कि ज्ञान, दर्शन और आनन्द आदिक गुण आत्माके हैं, यों ये रागादिक भाव आत्मामें सदा तो रहते नहीं हैं। प्रथम तो ये रागादिक भाव अदल-बदलकर बने रहते हैं और कभी बिल्कुल भी मिट सकते हैं। अच्छा तो क्या ये रागादिक भाव कर्मोंके हैं? क्योंकि कर्मोंके उदयके निमित्त से मिले हैं ना? तो इन्हें कर्मोंके भी नहीं कह सकते हैं? कर्मोंके होते तो ये रागादिक भाव कर्मोंमें ही समाये रहते, कर्मोंसे बाहर फिर ये क्यों हुए? जीवमें, आत्मामें और इस आधारमें क्यों आ गए? ये रागादिक भाव कर्मों के भी नहीं हैं। ये सब रागादिक भाव मायारूप हैं। हैरानीका कारण माया है, परमार्थस्वरूप नहीं है। मायाके जड़ नहीं, मूल नहीं—ऐसे निराधार माया के कारण हैरानी बड़ी होती है। जो अपना मूल है, वह परमार्थस्वरूप है, उसके कारण हैरानी नहीं होती।

भूलसे हैरानी— भैया! भूलसे हैरानी है। आत्मामें हैरानी बसी हुई नहीं है, किन्तु उस भूलको कोई छोड़ना ही नहीं चाहता है। तो उसकी

कौन चिकित्सा करे ? जिस क्षण भूल त्याग दे, उसी क्षण आत्मामें आनन्द प्रकट हो जाएगा। कोई भूलको ही अपनी होशियारी माने तो भूलको त्याग कैसे देगा ?

एक ग्रामके प्रारम्भमें एक बढईका घर था। वह बड़ा मसखरा था। जो भी मुसाफिर उधरसे निकले, उसके पूछने पर वह गलत रास्ता बता देता था। रास्ना हो किसी दिशाको और बतादे किसी दशाको। साथ ही वह यह विश्वास भी दिला देता था कि गावके सभी लोग मस्खरे हैं, उनके कहनेमे न आना, नहीं तो तुम्हें फिर लौटकर आना पड़ेगा। अब एक मुसाफिर वहासे निकला और उसने उससे किसी गांवका रास्ता पूछा। उसने गांवको दक्षिणमें बता दिया, किन्तु था वह पूरबमें। वह दक्षिणकी ओर चला। गाव के भीतर किसी दूसरेसे उस गांवका रास्ता पूछा तो उसने पूरबको बताया। वह समझ गया कि यह सच है कि यहांके लोग मस्खरे हैं। इसी तरह चार छः लोगोंसे पूछा तो सभीने पूरब मे बताया। उसे पूरा शक हो गया कि वह बढ़ई ठीक कहता था कि यहाके सभी लोग मसखरे हैं। अब तो वह बेचारा दक्षिणमें चलकर खूब भटककर एक गावमें पहुचा, वहांके लोगोंसे पूछा तो वहांके लोगोंने बताया कि तुम रास्ता भूल गए, पहिले यहासे उत्तरको जावो, फिर पूरबको जाना।

गावके लोगोंने कहा कि एक बढईने तुमको यह रास्ता बताया होगा। बेचारा राहगीर उसी गांव लौट आया। फिर पूरबके रास्तेसे चलकर जिस गावको जाना था, वहा पहुचा। ऐसे ही हम भूल करते हैं और उस भूलको हम होशियारी मानते हैं।

भूलको होशियारी माननेका भ्रम— परिजनोंमे हम मोह करते हैं और उस मोहको करते हुए हम अपनेको बड़ा विवेकी समझते हैं। हम बडा अच्छा घर बसाना जानते हैं, व्यवस्था करना जानते हैं और कमाना भी तो जानते है। इसमें आप होशियारी समझते हैं, किन्तु यह भूल करते हैं और उस भूलको ही मानते हैं। तो बताओ कि उस भूलसे निवृत्ति कैसे हो सकती है ? हे आत्मन्! देखो कि जिन वस्तुओंसे अत्यन्त अधिक परिचय हो जाता है, उन वस्तुओंमे अवज्ञा हो जाया करती है। तुझे इन रागादिक भावोंसे व इस शरीरसे परिचय चिरकालसे चला आ रहा है, तुझे इसमे कुचाल भी नहीं मालूम होता है और तेरा अपूर्व कल्याण करने वाले जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र हैं, उनमे तुझे प्रीति, स्नेह और ममता भी पैदा नहीं होती है।

आत्मपरिबोध— सम्यग्दर्शन नाम है सही देखनेका। प्रत्येक पदार्थको

अपने आत्मस्वरूपसे सही देखो, जानो, रुचि करो और विश्वास करो, वही तो सम्यग्दर्शन है। यह मैं आत्मा कैसा हू ? यह मैं आत्मा जो कुछ भी हू, वह कोई एक सत् है। कई वस्तुओंसे मिलकर आत्मा नहीं है। कोई भी जो पदार्थ सत् है, वह अकेले ही सत् हुआ करता है। कई पदार्थ मिलकर सत् नहीं हुआ करते। यह मैं आत्मा एक स्वतंत्र सत् हू। इसमें क्या चीज भरी पडी है ? कुछ देखो तो सही। देखो यह आखोंसे तो दिखनेमे नहीं आता। आखें खोलकर देखो तो बाहरकी माया दिखती है, आखे बन्द करके देखो तो न भीतर और न बाहर कहीं कुछ नहीं दिखता है। कैसे देखें उस अपने ही आत्माको ? अच्छा तो कानों से जरा सुनकर बताओ कि यह मैं आत्मा कैसा हू ? ये कान तो बाहरकी सुना करते हैं, भीतरकी कैसे सुनें ? कभी तो पेट गुडगुड़ करता है तो वह भी भीतरकी चीज नहीं है, वह भी बाहरकी चीज है। मेरी अपने आपके भीतरकी बात तो कुछ सुनाई नहीं देती है। चाहे तो सू घ सू घकर जान जावो कि मेरा आत्मा कैसा है ? आत्मा सूंघनेकी भी वस्तु नहीं है, इसी प्रकार आत्मा रसनासे चखकर जाननेकी वस्तु नहीं है, छूकर भी जाननेकी वस्तु नहीं है कि कैसा गर्म है, कैसा ठण्डा है ? कोई सा स्पर्श भी समझमें नहीं आता। यह आत्मा रूप, रस, गध, स्पर्शसे रहित है। इसका सही दर्शन एक अपूर्व दर्शन है। यह मैं ज्ञानमात्र हू और इसके अनुभवनेका उपाय यह है कि अपना ज्ञान ज्ञानके स्वरूपको जाननेमें लगे, अन्य कुछ तत्त्वको न जाने तो अपने स्वरूपको जानने वाले ज्ञानके द्वारा अपने आपका दर्शन होता है।

मोहसकट-- इस जीव पर संकट केवल मोहका है। कभी-कभी तो जब हैरान अधिक हो जाये तो समझमें आता है, पर वह वास्तविक समझ नहीं है, क्योंकि थोड़ी देरको कुछ न्यारे हुए और फिर उसीमें जा धमकते हैं, वे तो समझते नहीं हैं। परेशानीके कारण कुछ ऐसा मालूम पड़ा है। क्लेश तो केवल मोहका है। अच्छा यह बतावो— घरके लोग पुत्र, स्त्री आपके लिए बडे प्रिय हो रहे हैं, पर बाकी और सब लोगोंने क्या कसूर किया है जो उनमें प्रेम नहीं जग रहा है ? बाकी लोगोंको गैर मान लिया है और घरके दो चार प्राणियोंको अपना मान लिया है, यह व्यर्थका अन्तर है कि नहीं ? अरे सभीको गैर मानों। हम हों, आप हों या घरके स्त्री, पुत्रादिक हों, सबको भिन्न स्वरूप वाला मानों। किसीसे कहना नहीं है स्त्री आदिकसे कि तुम भिन्न हो, असार हो, नरक निगोदके घर हो। अरे भीतरमें इस बातको समझ लो कि ये सब भिन्न पदार्थ हैं, इनमें उपयोग बसानेसे, इनमें आसक्ति रखनेसे आत्माका कल्याण ही है। ये साथ तो

निभायेंगे नहीं, इनकी दृष्टि रखकर केवल आकुलता ही भोगनी पड़ती है। सही बात हो तो मान लो, न सही हो तो न मानो।

जैनदर्शनका मूल लक्ष्य— जैनदर्शन इस बातको समझाने पर जोर देता है कि तुम हो, अन्य पदार्थ हैं, जो कुछ है, उन सबको जैसे हो तैसे मानो। इतनी ही तो बात है, यही हमारा धर्म है। कष्ट नहीं होता धर्म-पालनमें। व्यामोहमें ही बड़ा कष्ट होता है। उस बडे कष्टको मिटानेके लिए छोटे कष्ट करने पड़ते हैं। लोग मानते हैं कि तप, व्रत, सयम आदिमें बडे कष्ट होते हैं, पर यह तो बतावो कि पुत्र, स्त्री आदिके मोहमें, धन सम्पदाके मोहमें अपना नाम चारों ओर फैलानेके परिश्रममें, जनताको राजी रखने मे कम कष्ट है क्या? बड़ा कष्ट है। तप, व्रत, सयम, सत्सग, ज्ञानार्जन इनके करनेमे कष्ट न मानों। जिसकी बुद्धि व्यवस्थित हो गयी है उसके किसी प्रकारके कष्ट नहीं है। सम्यग्दर्शन कष्ट नहीं है, बल्कि कष्टके मिटाने का उपाय है यह मैं आत्मा ज्ञानानन्दघन हू, इस ही रूप अपने आपको माना जाये, यही कष्ट मिटानेका उपाय है। सदाके लिए संकटोंसे छूटने का उपाय मात्र यही एक है, अन्य कोई उपाय ही नहीं हैं। ऐसा यह रत्न-त्रयका लाभ एक अपूर्व लाभ है। उसको तो तू ग्रहण नहीं करना चाहता, प्रीति नहीं करना चाहता और ये सर्व कर्म रागादिक भाव जो चिरकाल से, अनादिकालसे लिपटे चले आये हैं उनमे ही प्रीति जगती है। हे आत्मन्! सकटोंमे बहुत समय गुजर गया, अब तो कुछ विवेक करो। जो हितरूप तत्त्व है उसे ग्रहण करो। जो अहितरूप है उसका परित्याग करो। ये राग-द्वेष मोह अहितरूप हैं, इनका त्याग करो और सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र—ये रत्नत्रयरूप धर्म कल्याणरूप हैं, इनसे प्रीति करो।

> हसैर्न भुक्तमतिकर्कशम्भसाऽपि,
> नो सगत दिनविकाशि सरोजमित्थम्।
> नालोकितं मधुकरेण मत वृथैव,
> प्राय कृतो व्यसनिना स्वहिते विवेक ॥६३॥

व्यसनि पुरुषोंका अविवेक – पूर्व छन्दमे यह बताया था कि जिन वस्तुवोंमे अधिक परिचय हो जाता है, लोककी यह रीति है कि उसमे अवज्ञा हो जाती है, उससे दिल हट जाता है, और कोई जैसे नवीन मिले तो उसमें प्रीति पैदा होती है, लेकिन यह मोही पुरुष इस लोककी रीतिको भी उलट रहा है। कितना गाढ परिचय होता है शरीर और कर्मोका? रागादिक भावोंकी वरूसे तो अवज्ञा नहीं होती और नवीन चीज अपूर्व है रत्नत्रय, उसमें प्रीति नहीं होती। इस वर्णनके बाद यह बता रहे हैं कि

क व्यसनी पुरुषको अपने कल्याणके सम्बन्धमें विवेक नहीं रहता है।

व्यसनी पुरुषोंके अविवेक पर एक दृष्टान्त— एक अन्योक्ति अलंकारसे कह रहे हैं कि देखो— भवरा कमलके गन्धका लोभी बनकर, कमल पुष्पके अन्दर ही रहकर मरण कर जाता है। इस भंवरेसे इतना तक भी नहीं देखा जाता कि जिस कमलमें हम लोभी बनकर मर रहे हैं यह कमल इतना खतरनाक है कि इसको अत्यन्त कठोर जानकर हंसोंने भी नहीं खाया। हंस तालावमें रहता है और तालावमें कमल भी होते हैं। हंस नाना मोतियोंको तो चुन लेता है, मगर कमलको छूना तक भी नहीं है। जिस को हंसोने नहीं भोगा, उसको यह भवरा भोगनेके लिए गया और मरा। और भी देखो— ये कमल जहा पैदा होते हैं वह जल भी इस कमलको छूता नहीं है। याने कमल ऐसी वस्तु है कि जिस जलमें ये कमल पैदा होते हैं उस जलमें रहने वाला हंस पक्षी इस कमलको छूता तक नहीं है। ऐसे इस कमलमें इन भवरोंने अविवेकी बनकर उनके अन्दर बसकर अपना मरण किया है। यह तो एक दृष्टान्त दिया जा रहा है। जैसे भवरा कमल के गंधके लोभमें आकर यह विचार नहीं करता है कि इस कमलको हंसने भी सेवन नहीं किया, यह कमल बड़ा कठोर है, खतरनाक है और देखो जिस जलमें यह उत्पन्न हुआ, वह जल भी इस कमलसे न्यारा रहा करता है। ऐसे कठिन कमलसे प्रीति करके भवरा मर जाता है।

आसक्तिमें कष्टपरिहारका अनुपाय— यह कमल रात्रिमें तो मुद जाता है और जब दिनका समय होता है तो प्रफुल्लित रहता है। तो यह भंवरा अन्तमें इस खतरनाक कमलके बीच आ गया। जैसे ही शाम हुई कि वह कमल बन्द हो गया। अब देखो इस भवरेने जिसमें इतनी शक्ति है है कि मोटी काठकी लकड़ीको भी कुतर-कुतर कर एक ओरसे दूसरी ओर पहुच सकता है वह भवरा भी गंधके लोभमें आकर ऐसे कोमल पत्तों वाले कमल पुष्पोंमें बन्द होकर मरणको प्राप्त हो जाता है। ऐसे ही जानों कि यह सरागी जीव विषयसामग्रीमें इसके सुखका लोभ लगा है, अत उन विषयोंका सेवन करता हुआ यह विचार नहीं करता। यह रागी मोही प्राणी यह विचार नहीं कर रहा है कि इन विषयोंको महान् पुरुषोंने सेवन तक नहीं किया, इनको छोड़कर अपना अलग ही निवास किया। ये विषय ऐसे कठोर हैं, दुःखदायी हैं और फिर ये विषय इस निर्मल आत्मस्वभावसे न्यारे ही रहा करते हैं तथा जैसे कमल अंधेरी आते आते बन्द हो जाते थे, ऐसे ही जब पापोंकी अंधेरी आती है तो ये विषयोंके साधन भी विघट जाया करते हैं, लेकिन यह सरागी वृथा ही पापबन्ध करता है, विषयोंके

पीछे मरता है और नरकादिक गतियोंमें उत्पन्न हुआ करता है। ठीक बात है। जो व्यसनी पुरुष हैं उन्हें अपने हितका विचार नहीं हो सकता है, उन्हें तो आसक्ति ही है, अतः हित और विवेकके सम्बधमें कुछ दृष्टि ही नहीं है, लेकिन यह निर्णय है कि इन विषयसाधनोंके भोगनेका फल इसे खुद दुःख भोगना पड़ता है।

विषयनिर्विण्णता— इस छदमें विषयोंके भोगनेसे अपने आपको न्यारा कर लेनेके लिए कहा गया है। यदि अपने आपके आत्मामें शान्ति की भावना हो तो कुछ विवेक लायें, मनको सही बनाएँ, इन विषयोंमें आसक्त न हों, ऐसा होना भी है। यदि किसीमें सम्यग्ज्ञान बन जाय तो फिर इन विषयोंकी ओर दृष्टि नहीं रहती, किन्तु जिसे अपने आत्मस्वरूपकी नहीं जगी उसे ये विषय ही सर्वप्रकारसे सुखदायी मालूम पड़ते हैं। अनुभवसे भी देख लो— इतना जीवन गुजर गया विषयोंको भोगते-भोगते, पर उन विषयोंको भोगनेके फलमें आज कोई कल्याणकी बात हाथ है क्या ? इस जैनदर्शनके पानेका ऐसा सदुपयोग प्राप्त करें कि धर्मदृष्टि रहे, निर्विकार परिणाम रहे, परिग्रहमें आसक्ति न जगे, अपने न्यायको खो न दें। आत्मदृष्टिके हम पात्र रह सकें—ऐसा अपना कोई पुरुषार्थ करना चाहिए। जहां शान्ति और आनन्दकी समस्या खड़ी की जाय, वहां कुछ भी विवेकसे सोचा जाय तो यह निर्णय होगा कि विषयोंके भोगनेमें जो सुख मिलता है वह पराधीन है, मलिन है और दुःखोंको उत्पन्न करने वाला है, किन्तु अपने आपके आत्माको स्वभावतः जो एक झलक होगी, अपने स्वरूपका भान होगा, उसमें जो आनन्द प्राप्त होता है वह शुद्ध आनन्द है।

आत्मभासनाकी अत्यावश्यकता— यद्यपि गृहस्थावस्थामें इतनी पात्रता नहीं है कि हम आत्मकल्याणकी बातको अधिकाधिक कर सकें, क्यों कि चिन्ताएँ बहुत हैं, अनेक आरम्भ परिग्रह कामकाजकी सभाल रखना है। इस कारण गृहस्थावस्थामें आत्मदृष्टि अधिक समय तक बनाये रखना कठिन है। रात दिनमें किसी भी क्षण थोड़ी भी झलक आ जाय तो इस आत्मानुभवके स्मरणके प्रतापसे बहुतसी आकुलताएँ दूर हो जाती हैं। देखो सुख शान्तिके लिए लोग अनेक प्रकारके पुरुषार्थ किया करते हैं। जहां इतना श्रम अन्य-अन्य कार्योंमें किया करते हैं वहां एक यह भी काम करके देखा जाय आत्मानुभवका जो कि ऋषीसंतोंने बताया है। किसी भी क्षण समस्त बाह्यपदार्थोंका विकल्प छोड़कर, उन्हें भिन्न समझकर एक अपने आपमें परम विश्राम पायें, यह भी तो एक रोजगार करके देख लिया जाय। देखो कुछ अपने आपको मिलता है अथवा नहीं। अन्य सर्व समागम

कल्याणके साधक नहीं हैं बल्कि एक आकुलताके ही कारण हैं। किसी क्षण तो इतनी हिम्मत बनायें कि सर्वविकल्पोंको त्याग दें, घर द्वार, कुटुम्ब परिजन किसीकी भी चिन्ता न रक्खें. यही एक काम करनेको पड़ा है, अन्य कुछ नहीं। यह मैं अच्छे देह वाला हू, मेरा कुल अच्छा है, मेरी जाति शुद्ध है ऐसा किसी भी तरहका ध्यान न आये और केवल एक विश्राम ही रहे उस मे जो आनन्द प्रकट होगा वह आनन्द दूसरे स्थानमे नहीं है।

धर्मका प्रयोजन-- भैया! हम धर्म करनेका यत्न करते हैं। वह धर्म किस लिए किया जाता है? सासारिक सुखोंके लिए धर्म नहीं किया जाता है क्योंकि सांसारिक सुखका तो जो दुष्परिणाम निकलता है वह सब हम आपके सामने है। थोड़ी देर को कल्पनाजन्य सुख मिला, लेकिन चिता उस सुखके लिए कितनी करनी पडती है और पराधीनता कितनी भोगनी पडती है, इसका क्लेश विचित्र है। ऐसा कौन मूर्ख है जो जरासी अपनी महत्ता के लिए अपना सारा जीवन सकटमें डाले? जो विवेकी पुरुष होते हैं वे अपनी पायी हुई शक्तिका ऐसा सदुपयोग करते हैं कि उन्हें चिरकाल तक शान्ति मिले।

अनुपायकी मुसीवत— एक कोई नगर था, जिसमे किसी कुटुम्बका राजा न हुआ करता था। प्रजाके लोग मिलकर किसी एक को चुन लिया करते थे कि यह हमारा राजा है। प्रतिवर्ष वहा राजाका चुनाव होता था। और एक वर्ष वाद राज्यपदसे हटानेके वाद चूँकि उसे पेन्शन न देना पडे इस कारण उसे वीहड़ जगलमें छोड़ दिया जाता था। यह नियम वना रक्खा था। प्रयोजन क्या था कि यह नगरमें रहेगा तो नगरमें अपमान होगा कि यह वही पुरुष है जो पहिले राजा था, आज नगरमे गली-गली भीख माग कर खा रहा है। इस कारण वह जगलमें छोड़ दिया जाता था।

जैनशासनमें प्रतिरूप परम्परा— देखो जैनशासनमें जो परम्परा है नाटक करनेकी अथवा ड्रामा या रूपक दिखाने की, उसमें कोई वालक भगवान्का रूप बनाकर नहीं आ सकता। कोई वालक ऋषभदेवका पार्ट करे तो कैसे वह मुनि हुए, कैसे तपस्याकी, कैसे ज्ञान हुआ, कैसे मोक्ष पधारे, ये सब रूपक रखनेकी जैनशासनमे आज्ञा नहीं दी गयी है, क्योंकि उससे जैन देवताका अपमान है। आज किसी लड़के को ऋषभदेवका या महावीरका रूपक किसी नाटकमें बना दिया गया, ऐसा करे कोई तो उसमें तो प्रभुका अपमान है। मान लो किसी बच्चेमें महावीर स्वामीकी कल्पना कर ली गई और थोड़ी देरमें वह बच्चा रोकर दाल रोटी मागे अथवा कोई रागभरी चेष्टा करे, अपने शरीरको सभाले, कुछ लोगों के बीचमें अपनेको देखकर,

अपना आदर होते देखकर अपने मनमें खुश हो तो यह तो प्रकट भगवान्का अपमान है। एक पाषाणकी मूर्तिमें भगवान्की स्थापना करते हैं उसकी तो भक्तिमें मन लग जायेगा, क्योंकि उस मूर्तिकी ओरसे कोई राग भरी चेष्टा नहीं होती है। किसी बालकको थोड़ी देरके लिए भगवान् बना दिया तो उसके चलने, उठने, बैठनेमें राग साफ नजर आयेगा, फिर वहां कैसे मन लगेगा ?

अधिकारका प्रयोग— उस नगरका राजा एक साल बाद बीहड़ जंगल में छोड़ दिया जाता था ताकि उसके बादमें फिर उसका अपमान नगरमें न हो। यों बहुतसे राजा उस नगरमें बने, अन्तमें वे जंगलमें छोड़ दिये जाते थे और बादमें मर जाते थे। एक बार कोई विवेकशील पुरुष राजा बनाया गया। उसने सोचा कि हमें भी एक वर्ष बाद किसी बीहड़ जंगलमें छोड दिया जायेगा और बुरी तरहसे कष्ट उठाकर प्राणघात सहना पडेगा। कुछ विवेक जगाया। सोचा कि हम एक वर्षको राजा बने हैं, एक वर्षको तो हमारा सारा अधिकार है। हम जो चाहें सो एक वर्ष तक कर सकते हैं। उसने क्या किया कि उस बीहड जंगलमें उसने एक फार्म खुलवा दिया। नौकर भेज दिया, बैल वगैरह जो कुछ भेजना था भेज दिया, बाग बगीचा कुवा आदि बनवा दिया। अब एक वर्ष बाद जब राज्यकाल समाप्त होता है तो उसे जंगलमें छोड़ दिया गया। अब उस जंगलमें तो उसे कुछ भी नुक्सान नहीं है। वह तो ठाठसे रहने लगा।

सुअवसरका सदुपयोग— ऐसे ही हम आप कुछ वर्षके लिए मनुष्य हुए हैं, यों समझिये कि संसारके जितने प्राणी हैं उन सबके हम राजा हुए हैं। अन्दाज करलो, अन्तरमें देख लो। मनुष्य कितनी कलावोंका धनी है ? कैसे संगीत जानता, कैसे अनेक आविष्कार कर लेना, कैसे बडे-बडे महल चुनता, कैसे-कैसे कपडे पहिनना बुनता, कैसे-कैसे भोजन बनाता खाता ? कैसे-कैसे ढंगसे भाषण देता, बड़ी-बड़ी बातें सोचना, ये सब कलाएँ कहा पशुपक्षियोंमें होती हैं ? कहीं कीड़ा मकौड़ोंमें होती हैं ? तो मनुष्य सबका राजा ही तो हुआ। संसारके सारे प्राणियोंका अब यह राजा बन गया कुछ वर्षोंके लिए, पर यहां यह रीति है कि कुछ वर्षोंके लिए राजा बना दो, मनुष्य बना दो और बादमें फिर इस मनुष्य को नरक निगोदके बीहड़ जंगल में पटक दिया जायेगा, ऐसा रिवाज है और इस ही रिवाजके माफिक अनेक जीव मनुष्य हुए और यहांसे चलकर नरक निगोदकी योनियोंमें, पशु पक्षियों की योनियों में चले गये। कोई विवेकशील मनुष्य बन जाय तो वह यह सोचेगा कि जब तक हम मनुष्य हैं, राजा हैं तब तक तो हमारा इतना

श्रेष्ठ मन है कि हम इस मनसे बहुत बड़ी-बड़ी बातें जो निष्पन्न करना चाहें कर सकते हैं। अब इसने क्या काम शुरू किया ? अपना परिणाम निर्मल बनाना, अपने एकत्वस्वरूपको निरखकर उसही स्वरूपमें रमण करना यह काम करना इसने शुरू किया। तो इस मनुष्य भवके छूटनेके बाद उसे मोक्षमार्गमें वृद्धिका मौका मिलेगा और कभी बहुत ही निकट शीघ्र अपने आपके सयमके बलसे शीघ्र ससारके संकटोंसे सदाके लिए मुक्त होगा और परम उत्कृष्ट आनन्दका धाम जो मोक्षस्वरूप है, उसको प्राप्त करेगा।

ज्ञानयुक्तका यत्न हम आपको ये तन, मन, धन, वचन, अपूर्व समय आदिको विषयोंमें बरबाद न कर देना चाहिए। कदाचित् चिग जाय और विषय साधन भी सेने भोगने पडे तो भी सही सही ज्ञान बनाये रहें। ज्ञान सही बनानेमें तो कोई आपत्ति नहीं है। हा, रागद्वेष भरे पडे हैं इस लिए हम आप धर्मसे विचलित हो जाते हैं, चारित्र नहीं बन पाता, पर ज्ञान सही बनानेमें तो कोई बाधा ही नहीं है। घरमें रहता हुआ, बालकको खिलाता हुआ कोई सही ज्ञान बना ले तो उसको कौन रोकेगा ? ये एक मायारूप पर्यायें हैं, यह न केवल आत्मा है, न पुद्गल है, यह तो कर्म शरीर और आत्माको मिलाकर एक मायारूप बना है। बच्चा गोदमें रहे और बच्चेके प्रति यह ज्ञान बनाया जा रहा है कि यह भिन्न जीव है, इस के भी विषय कषाय लगे हैं, यह भी कर्मोंका प्रेरा है, अन्य जीवोंकी भाति यह भी न्यारा है। क्या बच्चेको गोदमें लेकर भी ऐसा ज्ञान किया नहीं जा सकता ? सही बात पुरुषको नियमसे जाननेमें आया ही करती है।

यथार्थज्ञानमें आकुलताकी समाप्ति— कोई सामने टेढ़ी मेढी रस्सी पड़ी हो और उसमें सापका भ्रम हो जाय तो जब तक भ्रमकी अवस्था बनी है तब तक आकुलता है, और कुछ हिम्मत बनाकर उसे देखनेके लिए बढे और समझमें आया कि यह तो कोरी रस्सी है और पासमें जाकर उसको छूकर उठाकर हिलाकर अच्छी तरहसे देख लिया, सही ज्ञान हो गया तो फिर उससे कोई कहे कि तुम वैसा ही भय सापका फिर बना लो तो वह कैसे बना सकता है ? एक बार सही ज्ञान होने पर फिर उल्टा ज्ञान कैसे किया जा सकता है ? ऐसे ही परिस्थितिवश राग भी जगता है, लेकिन इस सम्यग्ज्ञानका सही प्रयोग रक्खे तो इसमें कौन बाधा डालता है ? यथार्थ को जानते जावो। जाननेमें जो विपरीतता है, वही इस जीवको रुलाने वाली चीज है। सम्यक्त्व जगे, अपने शुद्धस्वरूपका मान रहे तो इसमें आकुलता न उत्पन्न होगी। हम सबका कर्तव्य है कि इन कठोर दुःखदायी विषयोंका लोभ न करें। आसक्ति न हो और सुगम स्वाधीन ज्ञानानुभव-

मात्र धर्मपालनकी ओर अपनी दृष्टि जगाये। आत्मदृष्टिमें यह बल है कि वह जन्ममरणकी परम्पराको मिटा देगी और अपने शुद्ध स्वरूपका अनुभव करके संसारके संकटोंसे सदाके लिए मुक्त करा देगी। इससे एक निर्णय रखिये कि विषयोंमे फंसना नहीं है और सच्ची-सच्ची बात जानते रहना है। चाहे कुछ बीते। न छोड़ सके राग, पर यथार्थ जाननेमें हम भूल करें, ऐसा कभी न होने दें। यह यथार्थ ज्ञान ही हम आपका सहाय है, शरण है। सर्वप्रयत्न करके शुद्ध ज्ञानके अर्जनमे अपनेको लगायें।

प्रज्ञैव दुर्लभा सुष्टु दुर्लभा सान्यजन्मने।
ता प्राप्य ये प्रमाद्यन्ति ते शोच्या खलु धीमताम ॥६४॥

जीवका आदिमवास— इस लोकमें आज हम आपने जो स्थिति पायी है वह उत्कृष्ट और दुर्लभ पायी है। इस जीवके आदि अवस्था निगोद दशाकी थी। यह बात आचार्य समझते हैं कि प्रत्येक जीव सर्वप्रथम निगोद अवस्थामे था और वह निगोद दशा इस जीवके अनादिकालसे थी। निगोद क्या चीज है? ऐसे एकेन्द्रिय जीव जिनके केवल शरीरमात्र है, जीभ, नाक, आख, कान नहीं हैं और वे वनस्पतिके सहारे हैं अथवा विना वनस्पतिके हैं ऐसे निगोद जीव कहलाते हैं। इनका एक सेकेण्डमें २३ बार जन्म मरण होता है। कोई विवेक नहीं, बुद्धि नहीं, केवल दुःख भोगना, जन्मना यही उनका काम है। यह दशा सबसे अधिक निकृष्ट दशा है। नारकी जीव बड़े-बड़े दुःख पाया करते हैं पर उनसे भी अधिक निकृष्ट दशा निगोदकी है। नारकियोंके मन तो है, कभी विचार तो कर सकते हैं, पञ्चेन्द्रियका विकास तो है, पर निगोद जीवके तो नाममात्रको स्पर्शन इन्द्रियका विकास है।

स्थावरोंमे— यह बात सुनाई जा रही है अपनी सबकी कहानी की। सर्वप्रथम हम आप निगोद दशामे थे, निगोद दशासे कभी निकलनेका सुयोग मिला तो पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय और प्रत्येक वनस्पति इन स्थावरोंमें उत्पन्न हुए। ये स्थावर निगोदकी दशासे अच्छे हैं। इससे निगोद दशा निकृष्ट होती है। पृथ्वी आदिक भी हो गये तो कुछ लाभ नहीं होता। पृथ्वीको लोग सुरगोंमें खोदते हैं। यो उसका भी हनन लोग किया करते हैं। कौन उस पर दया करता है? जलको भी बिलो करके, बन्द करके उसकी अनेक दशाएँ की जाती हैं। अग्निको भी लोग पानी डालकर बुझा डालते, हवाको भी लोग रबड़के पहियोंमे भरकर बन्द कर देते हैं अथवा पखा चलाकर वायुकायिक जीवोंमे खलबली मचा देते हैं। यह सब वायुकायिक जीवोंका घात है। वनस्पतिकायिक जीवोंके विषय

मे देखो— पत्तियोंको लोग छेद भेद डालते, आगमे गर्म करते, धूपमें सुखाते, ये सारी बातें की जाती हैं ना, वे भी एकेन्द्रिय जीव हैं. ये दशाएँ भी कोई महत्त्वकी दशाएँ नहीं हैं, पर निगोदकी दशायें इनसे भी बुरी दशाएँ हैं।

दोइन्द्रोमें — कभी सुयोग मिला तो स्थावरोंसे निकलना होता है। दोइन्द्रिय जीव हो गया। इन दो इन्द्रिय जीवोंके उससे अधिक विकास है। रसनान्द्रिय हो गयी, अगोपांग उसके होने लगे। एकेन्द्रिय जीवके तो अगो-पांग ही न थे, हाथ पैर मु ह कुछ भी तो न था। दो इन्द्रिय जीवोंको तो रसना इन्द्रियसे रसोंका स्वाद मिलता है। दो इन्द्रिय जीवके अब कुछ विकास हुआ, पर दो इन्द्रिय जीवोंकी भी क्या दशाएँ हैं, अनाजमे लट पड़ जायें उनको निकालकर यों ही फेंक दिया जाता है व्यर्थ जानकर। नीचे लट वगैरह चल रही हो तो लोग उनपर कूदते फादते चले जाते हैं। मछली पकड़ने वाले लोग केचुवोंको पकड़कर अपनी वल्लीमें लगाकर पानीमें डाल देते हैं ताकि मछली उसे खाये और उसमें फस जाय। दो इन्द्रिय जीवोंको ऐसी-ऐसी दशाएँ हुआ करती हैं। कुछ डाक्टर लोग तो जोंक पालते हैं, किसीका खून खराब हो तो वे जोंक लगा देते हैं, जोंकने खून खींच लिया और बादमें उस जोंकको मसलकर खून भी निकाल देते हैं। कोई एक जीवकी ही बुरी कहानी हो तो भी गनीमत, प्रत्येक दो इन्द्रिय जीवोंकी ऐसी-ऐसी स्थितिया चलती हैं।

तीन इन्द्रियोंमें— यह जीव कुछ विकासमे बढ़ा। तीन इन्द्रिय बन गया। अब देख लो तीन इन्द्रियका विकास। यह विकास दो इन्द्रियसे अधिक है। दो इन्द्रियके पैर नहीं होते हैं। अब तीन इन्द्रियमें पैर बनने शुरू हो गए। कुछ लोग आधुनिक जन कहते हैं कि यह मनुष्य कैसे बना ? तो कुछ ऐसा बताया करते हैं कि पहिले मछली था, फिर मेढ़क बना, फिर और कुछ बना, फिर बन्दर बना, फिर पूंछ घिस गयी सो आदमी बन गया, ऐसी बात यहा नहीं कही जा रही है। यहा तो कोई जीव नये जन्म विकासको धारण करता है और इस तरह उत्तरोत्तर विकासको पाकर मनुष्य बन गया है। तीन इन्द्रिय जीवोंके पैर होते हैं, नासिका होती है। अब इसके तीन इन्द्रिया हो गयीं। स्पर्शन, रसना और घ्राण।

स्पर्शन, रसना व घ्राणका निर्देशन— स्पर्शन इन्द्रियका काम है स्पर्शका ज्ञान करा देना। रूखा, चिकना, ठडा, गर्म आदिक स्पर्शका ज्ञान करा देना स्पर्शन इन्द्रियका काम है। रसना इन्द्रियका काम खट्टा, मीठा, कडुवा, कषायला, चरपरा आदि रसोंका ज्ञान कराना है। यह रसना

इन्द्रिय है कहां ? लोग जीभ निकालकर बता देते कि यह है देखो रसना। जो बनाया है आपने जीभ निकालकर उससे कोई चीज छुवा दे तो उससे ठडा गरमका भी ज्ञान हो जाता है और ठंडा गरमका ज्ञान कराने वाली स्पर्शन इन्द्रिय है। जब गर्म भोजन किया जाता है तो जब उसे जीभ में छुवाया जाता है तो झट ठडा गरम मालूम हो जाता है। तो यह रसना इन्द्रिय कहां छिपी हुई है, क्या बनाया जाय ? लोग बताते हैं जीभ निकाल कर उसके ठीक बीचमें चीजधर दो तो स्वाद न आयेगा। वह जीभकी नोक जब छू ले तो झट स्वाद आ गया। कहां छिपी है वह रसना ? जिसने दुनियाको परेशान कर डाला है ? कहीं नहीं मिल रही है वह। घ्राणइन्द्रिय हो गयी नासिका।

अविकासवत् विकास— चींटी चींटा, बिच्छू ये सब तीन इन्द्रिय जीव कहलाते हैं। जिनके जो आखिरी इन्द्रिय होती है उसका विषय उस जीवके बड़ा तेज होता है। तीन इन्द्रिय जीवके नाकका विषय बहुत तेज होता है। जिसे मिठाईका लोभ लगा हो, उस जीवको कहीं मिठाई रक्खी हो तो झट चलकर वह जीव वहा पहुंच जाता है। तीन इन्द्रिय तकका भी विकास हो गया, मगर यह कोई खास विकास नहीं है। वे सब मनरहित जीव हैं, चींटिया जमीनमें से एक-एक कण लाकर बाहर फेकती हैं और भीतर भी अपना घर बना लेती हैं और कितना सिलसिले से जमीनसे दाने निकाल कर उसही जगह फेकती हैं और इधर उधर भी उठा उठाकर कुछ चीजे फेंकती हैं, इतना तक भी चींटिया कर डालती हैं, लेकिन मन नही हैं। यह सब संज्ञावोंके बलपर किया जा रहा है। मन उसे कहते हैं जिसके निमित्तसे हित और अहितका विवेक किया जा सके। तीन इन्द्रिय जीव तक हो गया, परन्तु कोई लाभकी बात अभी तक नहीं मिली है। यह दो इन्द्रियसे अधिक विकास है। अब गंधका भी ज्ञान करने लगा।

चतुरिन्द्रियोंमें— कुछ और विशेष सुयोग मिला तो चारइन्द्रिय जीव बन गया। अब आखोंसे देखनेका भी काम होने लगा, यह कम बात नहीं हुई। मक्खी भवरा ततैया, मच्छर, टिड्डी—ये सब चार इन्द्रियजीव कहलाते हैं। चारइन्द्रिय जीव स्पर्शनसे स्पर्शका ज्ञान करले, रसनासे रसका ज्ञान करलें, घ्राणसे सूंघनेका काम करले और आखोंसे सब दिखता भी जाता है। इन चारइन्द्रिय जीवोंके इतना विकास हो चुका है, फिर भी कुछ लाभकी चीज तो मिली नहीं। अभी मन तो मिला ही नहीं, हित अहितका विवेक कर ही नहीं सकते।

पञ्चेन्द्रियोंमें— कुछ और विकास हुआ तो यह जीव मरकर पञ्चे-

न्द्रिय जीव हुआ। अब इसे कान भी मिल गए। चेत भी सकते हैं, किन्तु पञ्चेन्द्रियमें पशु पक्षी बन गए तो उनकी स्थिति भी कोई ऊँची नहीं है। अपने मनकी बात दूसरोंको बता नहीं सकते। दूसरोंके मनकी बात शब्दोंसे जान नहीं सकते। क्या है? बस खाना पीना आहार निद्रा, भय, मैथुन ये ही सब लगे हैं। उन पञ्चन्द्रियोंमे मन वाले पञ्चेन्द्रिय होकर जहा कोई कला नहीं है, ऐसे पञ्चेन्द्रियोंका जन्म यद्यपि चौइन्द्रियकी अपेक्षा कई गुणा उत्कृष्ट है, लेकिन उससे विशेष कला और व्यवहार न होने के कारण अब भी न कुछ की तरह है। पञ्चेन्द्रियमें नारकी हो गए तो भी कोई खास बात लाभकी नहीं आयी।

मनुष्योंमे — मनुष्य हुआ, यह तो अब देख लीजिए मनुष्योंकी कला कितने तो ये सगीत जाने, गीत जानें, कितनी तरहकी राग रागनियां जानें, बैल भैंसा तो एक दोहा भी नहीं बोल सकते। कितनी कला है इन मनुष्योंमें, फिर ऐसे ही श्रृङ्गारकी कितनी कलाएँ हैं, लेनदेन व्यवहार धन कमाना, और और सारे व्यवहार मनुष्य करते हैं। पशु पक्षी कहा ये सब कर पाते हैं? मनुष्यका कितना ऊँचा स्थान है? इतना होने पर भी यदि योग्यसंगति नहीं मिलती, श्रेष्ठ धर्म नहीं मिलता, कुल जाति भी विशिष्ट नहीं मिलती, हो गए यों ही मनुष्य, बड़ी कमजोरी है। पागलसे फिरते हैं। होते हैं ना कोई बच्चे ऐसे जिनके दिमागका इलाज करवाना पड़ता है। वहा भी कुछ लाभ नहीं उठा पाया।

परमार्थके लिये प्रवृत्त बुद्धिकी श्लाघनीयता— कोई उच्चकुलमें उच्च सगतिमें उच्चधर्मके वातावरणमें और बुद्धि तर्कप्रतिभा भी अच्छी मिले, ऐसी जगह उत्पन्न हुआ तो उसने बहुत ऊँची चीज प्राप्त करली है। इतना प्राप्त कर लेने पर भी इस लोकमें विचाररूप बुद्धि होना कठिन है। जिस बुद्धिका उपयोग अच्छे विचारोंके लिए बनायें, वह बुद्धि दुर्लभ है और वह बुद्धि परलोकके अर्थ लग जाय, आत्मकल्याणमें प्रवृत्त हो, अगलाभव श्रेष्ठ मिले, धर्मका सग मिले, इसके लिए बुद्धि चले तो यह दुर्लभसे भी दुर्लभ है। अब इतनी विशिष्ट बुद्धिको प्राप्त करके यदि हम प्रमादी रहे तो यह बड़े खेदकी बात है।

अतीतका मूल्याङ्कन— भैया! समय बड़ी शीघ्रतासे गुजर रहा है। गुजरा हुआ समय पुन वापिस न आयेगा। कोई सोचे कि हमने बचपनको खो दिया है वह वापिस हो जाय तो वापिस नहीं हो सकता। बीता समय पुन वापिस नहीं आता। जो आजकी उमर है, जवानी है, शक्तिकी अवस्था है, वह भी गुजर रही है। कोई वृद्ध सोचे कि मैंने बड़ी भूल की, कि समर्थ

रहते हुए इस देहको तप व्रत संयममें लगाते तो लाभ था, अब वह समय भी निकल गया, लाभ कुछ भी न पाया, उलटा नुक्सानमें रहे, फिरसे वह जवानी आ जाय, ऐसी कितनी भी चिन्तन करे तो वह आ नहीं सकती है। यों ही इस वृद्धावस्थाकी बात सोचिये। यह मनुष्यजीवन बड़ा दुर्लभ है, और जहा ज्ञानशक्ति मनोबल प्रबल बना हुआ है वहा यह देहकी शिथिलता भी नुक्सान न करेगी। बूढ़े हो गये, खाट पर पड़ गए, अंग शिथिल हो गये। हाथ पैर भी उठाये नहीं उठते। अरे नहीं उठते हाथ पैर तो न उठने दो। मनके बल का इस हाथके बलसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। भेदविज्ञान करके, समग्र पर वस्तुवोंसे उपेक्षा करके अपने आपके मनोबलको बढ़ाया जाय तो वृद्धावस्था में भी लाभ लिया जा सकता है। प्रयोजन यह है कि जो श्रेष्ठ बुद्धि इसने पायी है इस बुद्धिका सदुपयोग करले।

विशिष्ट बुद्धिकी व धर्मबुद्धिकी दुर्लभता— देखो एकेन्द्रियसे लेकर असैनी पञ्चेन्द्रिय तकके जीव सभी और सभी प्रकारके अपर्याप्तक जीव कोई सञ्ज्ञी भी हो तो मनका विचार है नहीं, वहा कल्याणका विचार नहीं है। जहां मन भी नहीं मिलता है ऐसी पर्यायोंमें भटकना ज्यादा हुआ करता है। मनुष्यभव या अन्य पशुपक्षी का भव, यह तो बहुत कम मिला करता है। अधिक समय तो एकेन्द्रिय आदिक जीवोंमें जन्मते रहनेमें गुजरा करता है। सो इन सब बातोंसे निकलकर निम्न दशावोंसे हटकर उच्च विकास करता हुआ कदाचित् यह बुद्धि पा ले तो ऐसी बुद्धिका मिलना बहुत कठिन है। कदाचित् किसी के बुद्धि भी मिल जाय, बुद्धि तो मिली हुई है। रेलवेका हिसाब देख लीजिए अलग-अलग है, उसमें भी कितनी बुद्धिके काम हैं, आविष्कारके कामोंमें देखो कितनी बुद्धिकी महिमा है? बुद्धि भी विशेष पा ली, पर धर्मरूप विचार होना, बुद्धिका सदुपयोग होना यह बड़ा कठिन है। अनन्तबार मनसहित भी हुआ, बड़ी विशिष्ट बुद्धि मिली है, पर धर्मबुद्धि तो किसी ही जीवके होती है।

सुअवसरके व्यर्थ खोनेका विषाद— किसी के धर्मबुद्धि भी हो जाय, धर्मधारण करने लगें तो अधिकाश लोग तो यह सोचा करते हैं कि इसका दिमाग किस ओर है? इसके दिमागमें कुछ कभी है क्या? साधु सेवा करता, तीन बार मंदिर जाता, पूजा करता। क्या है इसके दिमागमें? लोग आश्चर्यसे देखते हैं क्योंकि मोही जीव मोहकी बात ही [illegible] री समझते हैं। जैसे आजकल लोग झूठ बोलकर किसी [illegible] से कुछ बात बना लें, विषयसाधन बना लें तो उसमे बड़ी [illegible] और कोई सीधा सरल पुरुष अपने कामका ही [illegible] से

अनेक साधन तो उसे लोग यों ही देखा करते हैं, पर धार्मिक बुद्धिका होना यह बड़े सौभाग्यकी बात है। यह किसी ही जीवके होता है, और भाग्यसे ऐसी धर्मबुद्धि भी कोई पा ले और पाकर भी सावधान न रह सके, धर्मपालन मे शिथिल हो जायें तो ज्ञानीपुरुष उस बात पर खेद प्रकट करता है कि इतनी दुर्लभ बात प्राप्त कर लेने पर भी प्रमादवश इस अवसरको खो दिया गया है, ऐसा उत्कृष्ट अवसर पाकर भी जो कोई चूक जाय तो हाय इसका कैसा होनहार है ? ज्ञानी पुरुष उस पर विषाद प्रकट करता है।

संयमसावधानीका कर्तव्य— हम आपका इस प्रसगमे कर्तव्य है कि ऐसी धर्मबुद्धि पाकर प्रमादी न हों। इस बुद्धिको और प्रगतिशील बनायें। तत्त्वचिन्तना में, ज्ञानार्जनमें सत्सगमें, परोपकारमें व्रत तप सयम आदिकमे अपने आपको सावधान बनायें। जैसे मान लो आजके दिन कोई खूब दिन भर सोया हो बंद कमरे में, खूब कमरेको ठढा करके, खूब विश्राम किया हो, दूसरोंके लिए इस देहसे कोई कष्ट भी न करना चाहता हो और यों दिन व्यतीत हो गया और किसीने परिश्रम करके, परोपकार करके दिन व्यतीत किया हो, इन दोनोंमें आलसी ने कौनसा लाभ पा लिया ? अन्तमें कुछ हिसाब लगाकर तो देखो और एक श्रम करने वाले ने अथवा व्रत तप सयम करने वाले ने कौनसा घाटा कर लिया ? बल्कि उसके चित्तमे प्रसन्नता है, उसे सन्मार्ग सूझता है, ऐसे ही आप जीवन भरकी बात ले लो, जिसने अपना सारा जीवन प्रमाद मे व्यतीत किया हो तो अन्तमें मरणके समय बतावो उसने कौनसा लाभ उठा लिया ? और एकने तप व्रत सयममें जिसने अपना देह लगाया तो अन्तमें बतावो उसने कौनसा नुक्सान पाया है ?

आन्तरिक प्रयोग— अरे भैया ! यह शरीर तो विनश्वर है। इसको तो व्रत तप सयममें लगावो और अपने आत्माको सुरक्षित बनावो। ऐसी बुद्धि बहुत कठिनाई से प्राप्त की जाती है। अब परलोकके सुधारके अर्थ इस बुद्धिको जप, तप सयम, ज्ञानार्जन, ध्यान, चिन्तन, सत्सग और सभी आवश्यक धर्मकार्योंको करके पाये हुए इस दुर्लभ समागमका सदुपयोग बना लें। एक घड़ी भी सम्यग्ज्ञान और बिना सयमदृष्टिके व्यतीत मत होने दो, ऐसी अपने अन्तरगमे भावना रखें और ऐसा ही अन्त प्रयोग करें। इस प्रयोगसे तो हम निकट भविष्यमें अपना उद्धार कर सकेंगे।

लोकाधिपा· क्षितिभुजो भुवि येन जाता—
स्तस्मिन् विधौ सति हि सर्वजनप्रसिद्धे।
शोच्य तदेव यदमी स्पृहणीयवीर्या—
स्तेषा बुधाश्च बत किंकरता प्रयान्ति ॥६५॥

धर्मका प्रसाद— पूर्व छंदमें यह बताया गया था कि इस लोकमें दुर्लभसे दुर्लभ वस्तु है ऐसी बुद्धिका पाना जो बुद्धि आत्मकल्याणमें लगाती हो। धन, कन, कचन, राजसुख सभी वैभव सुलभ है, पर एक पदार्थका यथार्थ ज्ञान होना बहुत दुर्लभ तत्त्व है। अब इस छंदमें यह कह रहे हैं कि ऐसी दुलभ बुद्धि पाकर भी ज्ञानी पुरुष इस बुद्धिका दुरुपयोग करें तो यह खेदकी बात है। बडे-बडे राजा, सम्राट, लोकाधिपति एक इस धर्मके फलसे हुआ करते हैं। समस्तजन जानते हैं और ज्ञानी पुरुष तो इसे विशदरूपसे जानते हैं। जो कुछ यहा ठाठ-बाट, समागम संगति पाया है वह धर्मका प्रसाद है। धर्मका प्रसाद तो इससे भी उत्तम होता है।

धर्मप्रसादका विवरण— धर्मका अर्थ है जो अपना स्वभाव है उस स्वभावकी उपासना करना। अपना स्वभाव है ज्ञान और दर्शन, चैतन्य प्रतिभासका। उसकी उपासना करना, यही है धर्मका पालन करना। इस धर्मके प्रसादसे मुक्ति मिलती है, पर इस धर्मपालनके साथ-साथ अपनी शक्तिके कारण कुछ राग और द्वेष उपजते हों, धर्मानुराग होता हो, ऐसी स्थितिमें पुण्यकर्म बंधता है। धर्मभाव होनेके साथ-साथ दया, परोकार, भक्ति, सत्संग ऐसा अनुराग जगता हो तो वहां विशेष पुण्यका बंध होता है और पुण्यके फलसे साम्राज्य वैभव परिजन सब इष्टपदार्थ, इष्टसमागम मिलते हैं। धर्मका प्रसाद तो इस पुण्य प्रसादसे बहुत ऊँचा है, किन्तु विशेष पुण्य धर्मके साथ-साथ हुआ करता है। इस कारण इसे भी धर्मका प्रसाद कहा गया है। धर्मके प्रसादसे ही ये बड़े राजा और धनिक पुरुष हुए हैं। ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष भी राजावोंके दास बनें तो यह बडे सोचकी बात है।

धर्मप्रसंग— एक सन्यासी राजभवनमें रहने लगा और राजा उसके सत्सगमें रहकर अपना तीन चार घटेका समय धर्मध्यानमें व्यतीत करता था। बहुत दिन हो गये, उसकी चर्चा सब जगह फैल गयी कि राजा बडा धर्मात्मा है। एक सन्यासी जो कि राजभवनमें रहता है उसके सगमें राजा तीन चार घन्टे रोज रहता है। विद्वानोंकी गोष्ठीमें यह चर्चा चली कि राजा तो धर्मका काम करता है, उत्तरोत्तर पुण्यवृद्धिका काम करता है और संन्यासी उत्तरोत्तर पुण्यक्षयका काम करता है। ऐसा क्यों? राजा को तो संन्यासीके सत्सगसे धर्मकी प्रेरणा मिलती है और यह सन्यासी जगलका निवास तजकर राजभवनमें ठहरा है। राजाके प्रति कुछ अपनी आशा या अन्य कुछ कायरताका भाव रखता है। वह उसके पुण्यक्षयका कारण है। लोग सम्पदाकी प्राप्तिके लिए अनेक यत्न करते हैं, किन्तु सद्-

भावना रहे, सदाचार रहे, सद्‌विचार रहे इसकी ओर दृष्टि नहीं देते। धन कमानेके लिए देख लीजिए जो कुछ करना पड़े कर डालते हैं, पर यह विचार नहीं होता कि परिश्रमसे व्यायामसे अर्थका उपार्जन नहीं होता, किन्तु जैसा पूर्व जन्ममें, पूर्वकालमें सुकृत किया हो, पुण्य बँध गया हो, उस के अनुकूल आज यह समागम मिला है।

परमार्थमें पुरुषार्थकी प्रधानता— भैया! सांसारिक बातोंमें तो कर्मों की प्रधानता है। जैसे कि लोग कभी विवाद करते हैं कि पुरुषार्थ बड़ा है या भाग्य बड़ा है। सांसारिक लाभके प्रसंगमें तो भाग्य बड़ा है और आत्मशान्ति, कल्याण, मोक्षके प्रकरणमें पुरुषार्थ बड़ा है और ऐसा भी कह सकते हैं कि भाग्यके उदयसे समागम मिलता तो है, पर वह पुण्य बंध हुवा कब था, कैसे-कैसे वह पुण्य बंध आत्माके सद्‌भाव, सद्‌विचार, सदाचारके परिणामोंके कारण हुआ था और वह सद्‌विचार सद्‌भाव पुरुषार्थ ही तो है। इस दृष्टिसे पुरुषार्थ ही बड़ा कहलाया। जो पुण्यबंध हुआ वह किसी न किसी पुरुषार्थके निमित्तसे हुआ था, तो परम्पराका पूर्वकालका पुरुषार्थ इस सम्पदाके मिलनेमें कारण है, किन्तु मोक्षमार्ग कल्याण साधना आत्म-हित उस आत्माका पुरुषार्थ प्रधान है। यद्यपि वहां भी ऐसा है कि भाग्यका ठीक उदय हो, पुण्यका उदय हो तो ऐसी स्थितिमें मुझे अच्छा भव मिले, अच्छा वातावरण मिले और वहां यह आत्मा अपने ज्ञान पुरुषार्थको भी कर सकता है। यों पुण्य भी निमित्त बन रहा है मोक्षमार्गके चलनेमें, किन्तु प्रधान तो पुरुषार्थ ही है।

भाग्य और पुरुषार्थका विवाद— दो मनुष्योंमें झगड़ा हुआ। एक कह रहा था कि भाग्य बड़ा है और एक कह रहा था कि पुरुषार्थ बड़ा है। दोनों राजाके पास पहुंचे। राजाने बहुत कहा कि तुम लोग आपसमें सुलह कर लो। वे न माने, अपनी-अपनी हठ पर अड़े रहे तो राजाने एक बड़े कमरेमें कच्ची हवालात कर दी और कह दिया कि परसों तुम्हें निकाला जायेगा। पहिलेसे ही कमरेमें अच्छी जगह बड़े ताखमें आधा-आधा सेरके २ लड्डू धर दिये थे। वे दोनों उस कमरेमें नजर बन्द पड़े थे। एक दिन गुजरा, अब तो भूखके मारे दोनों बेचैन पड़े हैं, भूखे पड़े हैं। जो पुरुषार्थ को प्रधान कह रहा था, उससे न रहा न गया तो सारे कमरेमें छान बीन करने लगा। यहां वहां कुछ देर तक देखनेके बाद एक ताखमें रक्खे हुए दो लड्डू मिले। उसने तो एक लड्डू खूब खाया, पेट भर गया। अब वह सोचता है कि अपना पेट तो भर ही गया, यह भी भूखा क्यों मरे ? इसे भी दे दे। उसे भी एक लड्डू दे दिया, उसने भी खाकर अपना पेट भर लिया।

जानते हैं, किसी दिन जला दिया जाएगा, राख बन जाएगा। कुछ जरा आगे की बात सोचो जो जलकर राख बन जाएगी। ऐसे इस देहमें यह मैं हूँ—ऐसी वासना बनाकर कितने पाप किए जा रहे हैं ? मिथ्यात्वके समान और कोई पाप नहीं है।

धर्म परीक्षक— एक अष्टावक्र नामके ऋषि थे। इनके आठों अंग हाथ, पैर, मुख और पीठ आदि सभी टेढ़े-मेढ़े थे। शकल सूरत भी कुरूप थी, पर वे एक ऋद्धिधारी ऋषि थे। वे किसी बड़ी सभामें बड़े बड़े विद्वान भाषण देनेके लिए खड़े हुए। अष्टावक्र भी खड़े हुए। कोई ऐसे टेढ़े मेढ़े अंगका हो और अचानक भरी सभामें व्याख्यान देनेको खड़ा हो जाए तो लोग हँसे बिना नहीं रह सकते हैं। इसलिए सभामें जो पण्डित और विद्वान लोग थे, वे हसने लगे। अष्टावक्र ऋषि जब व्याख्यान देने लगे तो जैसे लोग हे महानुभावों ! हे सज्जनों !! हे बन्धुओं !!! आदि संबोधनके शब्द बोलते हैं इसी प्रकार उन्होंने संबोधनमें कहा— हे चमारों ! (यह शब्द हम किसीके भी लिए नहीं कह रहे हैं, इसका कोई बुरा न मानना) इतनी बात सुनकर सभी लोग हैरान रह गए। सोचा कि इतने महान ऋषि और इस प्रकार बोलते हैं, मुखसे इस प्रकारकी अशोभनीय बात निकल रही है। लेकिन अष्टावक्र भी खुद ही इसका उत्तर देते हैं—

भला यह तो बताओ कि जो चमड़ेका परखना जानते हैं उन्हें क्या कहते हैं ? तो सभासद बोले कि चमार कहते हैं। अष्टवक्र ऋषिने कहा कि मैं खड़ा हुआ तो आप लोगोंने मेरे चमड़ेकी खूब परख की, परीक्षा की। मेरे टेढ़े मेढ़े अंग और काले रूपको देखकर, रद्दी शकल सूरतको देखकर आप लोग हंसने लगे तो क्या आप लोगोंको चमार नहीं कहा जा सकता ? इसलिए यदि मैंने हे चमारो ! कह दिया तो तुम इस शब्दसे रोष क्यों करते हो ?

यह तो एक ऋषिकी घटनाका अंश बताया है। यहा इसका यह अर्थ है कि अपने आपके इस चामको ही निरखकर इस देहको ही देखकर यह मैं हू, बड़ा सुभग हू, बहुत होशियार हू, दुनियामें कुल डेढ़ अकल है, आधी अकल तो सारी दुनियामें है और एक अक्ल मेरे पास है, हम इन सबमें होशियार हैं—ऐसा इस देहमें कोई अहंकार न करे। देहको आत्मा मानना ही मोह है, मिथ्यात्व है, पर्यायबुद्धि है, अज्ञान है।

अज्ञानका पाप— जो चीज ज्ञानरहित है, उसको ज्ञानमय मानना ही अज्ञान है। जो चीज ज्ञानमय है, उसका ज्ञान न होना ही अज्ञान है। अज्ञान के समान कोई पाप नहीं है। लोग कहने लगते हैं कि जो जान करके पाप

करेगा, उसे तो अधिक पाप लगता है और जो जानता ही नहीं कि इसमें पाप है और पाप करे तो उसे कम पाप लगता है। इस संबन्धमें आपका क्या निर्णय है? कुछ कुछ ऐसा समझमें जरा आता होगा कि ठीक तो है। जो जानते नहीं हैं कि यह पापका काम है, उन्हें काहेका पाप? जो जानते हों कि इसमें पाप है और पाप करें तो उनको पाप लगेगा, किन्तु यह भी तो संभव है कि जानने वालेके कषाय हो पाप करने की तो संभला हुआ रहता है और जो जानता ही नहीं है, वह जो पाप करेगा, खूब डटकर करेगा। इसे अभी उदाहरण द्वारा समझाते हैं।

पापोंको जानकर कभी कर्मप्रेरणावश पाप करनेकी नौबत आये तो वह स्वच्छन्द होकर पाप न कर सकेगा। पाप करते हुए भी चूंकि जानकार है तो पापसे कुछ उपेक्षा रखकर, कुछ निवृत्तिका अंश रखकर पापकार्यमें भी लगता है और जिसे मालूम ही नहीं है, वह तो अपने पूरे बलके साथ पाप-कार्यमें प्रवृत्त होता है। एक यही कारण हैं कि अज्ञानीको पापका बंध विशेष होता है।

अज्ञानीकी पापमयता— दूसरी बात यह सुनिये कि अज्ञान खुद एक बड़ा पाप है। जो उसने तन, मन और वचनकी चेष्टासे पाप किया है, वह पाप तो अलग है, किन्तु उससे कई गुणा पाप अज्ञान है। अपने आत्माकी जानकारी न रहना, परवस्तुओंके स्वरूपकी जानकारी न रहना आदि जो भी अज्ञान दशा है, वह स्वयं पाप है।

अज्ञानके सकटपर एक दृष्टान्त— तीसरी बात सुनिये। इसे समझानेके लिए एक दृष्टान्त देते हैं कि एक आगका जलता हुआ कोयला पड़ा हुआ है। किसी पुरुषके आगे आग पड़ी है वह यह जान रहा है। कोई पुरुष पीछेसे धक्का दे तो वह शीघ्रतासे आग पर पैर रखकर ही निकल जाएगा, वह आगमें अधिक न जलने पाएगा। और एक पुरुष जिसे यह पता नहीं है कि हमारे आगे आगका कोयला पड़ा हुआ है, वह तो निःशंक होकर बड़ी मजबूतीसे अपने पैर उस आग पर रख देगा। जब वह बहुत कुछ जल जाएगा, तब वह अपने पैर उठाएगा। तो इसी प्रकार समझलो कि ज्ञान होने पर कदाचित् पापबंध हो तो उसमें तीव्र बंधनकी सामर्थ्य नहीं है, पर वास्तविक मायनेमें ज्ञान हो, उसकी यह कथा है।

शान्तिका उपाय धर्मपालन— ज्ञानी पुरुष जानता है कि यह सर्वसाम्राज्य और समागम धर्मका फल हैं। फिर भी वह धर्म की ओर तो झुके नहीं और उस समागमकी ओर, उस सम्पदा वैभवकी ओर झुके तो ज्ञानी व संत पुरुषके लिए यह अशोभनीय बात है। इस छंदमें यह शिक्षा दी गई है

कि धर्मसे सदैव सुख होता है। कुछ लोग ऐसा कहा करते हैं कि आजके इस समयमें जितना अन्याय किया जाय, चोरबाजारी की जाए, झूठे लेख लिखे जायें और भी जितनी चालाकियां हो सकती हों, उन चालोंसे चला जाए, दुनियाको धोखा दिया जाए और इन उपायोंसे अपना वैभव बढ़ा लिया जाय, यश बढ़ा लिया जाय, उसमें बुद्धिमानी है, और ऐसा करने वाले सुखी हैं। लेकिन जो पुरुष अनर्थ करते हैं, उनको तो स्वयं ज्ञात है ना कि मैंने यह अनर्थ किया है। उस प्रभुको स्वयं यह मालूम है और जिसे अपने अनर्थकी बात मालूम है उसमें यह बल नहीं जग सकता कि वह शान्ति प्राप्त करले, पहिली बात तो यह है। दूसरी बात यह है कि अन्याय चालाकियों से जो कोई धन या यश पा ले, उसके लिए अनेक उपद्रव लगे रहा करते हैं। जिसने बड़ा राष्ट्रनेता होकर भी भ्रष्टाचार किया है उनकी दशा आप लोग पेपरोंमें पढ़ते ही हैं। वे अन्तमें बुरी तरह मारे जाते हैं, धन भी छीन लिया जाता है। कहां उनको शान्ति मिलती है?

धर्मपालनका अनुरोध— भैया! शान्ति तो धर्मसाधनामें ही है। चाहे वहां वैभव न बढ़े, किन्तु जिनका ज्ञान अपने आपमें साध्य है, विवेक जिनका जागरूक है उन्हें शान्ति और सतोष मिलता है। धन वैभवसे शान्ति नहीं आती, किन्तु अपने ज्ञानसे यथार्थ अवगमसे शान्ति उत्पन्न होती है। इस कारण आनन्दके लिए अन्य उपाय और चिन्ताओंमें व्यग्र न होकर एक शुद्ध सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् आचरणके पथमें हमें चलना चाहिए और इस धर्मका लक्ष्य रखना चाहिए। सर्वसिद्धि धर्मके प्रसादसे ही हुआ करती हैं। पुण्यके फलमें हमें न झुकना चाहिए, किन्तु एक उस सम्यक् अवबोध आत्मदर्शन आत्मरमण रूपधर्मके पालनमें अपने आपको लगाना चाहिए। सर्वसिद्धियां धर्मके प्रसादसे ही हुआ करती हैं।

यस्मिन्नस्ति स भूभृतो धृतमहावंशा प्रदेश पर,
प्रज्ञापारमिता धृतोन्नतिधना मूर्ध्ना ध्रियन्ते श्रिये।
भूयास्तस्य भुजङ्गदुर्गमतमो मार्गो निरासस्ततो,
व्यक्तं वक्तुमयुक्तमार्य महता सर्वार्थसाक्षात्कृत ॥९६॥

धर्मकी आदेयता— यह आत्मकल्याणी धर्म जिस धर्मके प्रसादसे, बड़े-बड़े राज्यपद प्राप्त होते हों और लोग भी लक्ष्मी वैभव सम्पदाके लिए जिस धर्मके प्रसादको अपने मस्तक पर धारण करते हों अथवा जिस लक्ष्मी के अर्थ लोग उन राजाओंको नमस्कार किया करते हों, जो धर्मके प्रसादसे बड़े हुए हैं, यह सब उस धर्मका ही तो माहात्म्य है। कैसे हुए ये राजा, जो बड़े इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए, जिनकी बुद्धि अपरिमित थी, जिनका धन

भंडार बड़ा विपुल था, ऐसे राजा जिस धर्मके प्रसादसे हुआ करते हैं वह धर्मका मार्ग सबको प्रतीति करनेके योग्य है।

धर्मफल— धर्मका फल आत्मीय आनन्द है। समस्त संकटोंसे मुक्त होना, सर्वकर्मोंसे छूट जाना यह सब धर्मका फल है, लेकिन इस धर्मके होते हुए जो कुछ शुभोपयोग रहता है, शुभ राग रहता है उसके कारण ऐसे पुण्य का बंध होता है जिसके उदयमे ये वैभव सम्पदा स्वयंमेव प्राप्त होते हैं। तप करना, व्रत पालना, दया संयमसे रहना, क्षमा, नम्रता, सरलता, निर्लोभता आदिक जो परिणाम हैं ये ही तो धर्मप्राप्तिके मार्ग हैं। यह धर्म कामी पुरुषोंके लिए दुर्गम है। जिनका चित्त कामवासनामे रहा है अथवा परवस्तुके प्रति जिनके व्यामोह रहा करता है उन पुरुषोंको यह धर्म अगोचर है।

धर्मकी सर्वप्रियता— धर्म शब्द सभीको प्रिय है और सभी लोग अपनी-अपनी कल्पनामे किसी न किसी क्रिया अथवा तत्त्वको धर्ममार्ग कह कर उसके विलासको उत्सुक रहा करते हैं। जिन्होंने जो भी धर्म माना उस धर्मपर न्यौछावर हो जाते हैं। वह धर्म आज नाना भेदोंमें दिख रहा है। जिसके नाना मजहब नजर आते हैं। वास्तवमें जैसे आत्मा एक समान हैं, एक स्वरूप है, ऐसे ही धर्म एक स्वरूप है। ससारमे रुलनेका उपाय भी एक है और संसारसे मुक्त होनेका उपाय भी एक है, लेकिन कोई निष्पक्ष भाव से विचारें तब धर्मकी झलक हो, और निष्पक्षता तब ही आ सकती है जब अपनेमें एक आत्माका ही नाता माने। जहा इसने अपने देह पर दृष्टि दी और इस देहदृष्टिके कारण अन्य वस्तुवोंको अपनानेकी बुद्धिके कारण धर्म का पात्र नहीं रहा। समतामे धर्म है। जहां रागद्वेष है वहा धर्म नही है। धर्मके विना यह जीवन यों ही खोया जा रहा है।

भविष्यकी हैरानी— भैया! यहा जितने समागम हैं ये सब विनश्वर हैं, चंद दिनोंके हैं, मिट जायेंगे। अपना यहां कुछ नहीं है, पर इन भिन्न पदार्थोंका आश्रय करके उनको उपयोगमे लेकर जो रागद्वेषकी वृत्ति बनाई जाती है यह भविष्यमें हैरान करेगी। चीज तो निपट जायेगी। जिस वस्तु के बीच राग किया जा रहा है वह वस्तु तो विघट जायेगी। वह तो विनश्वर है, पर उस वस्तुका आश्रय करके ख्यालमे लेकर जो राग बनाया गया है यह राग भव-भवमें हैरान करेगा। यह जीव इस पुद्गलका आश्रय तो इसलिए करता है कि मुझे सुख हो, मुझे सहारा मिले, पर यह पुद्गल मिट जायेगा, दूर हो जायेगा और इसके प्रति किया हुआ जो मोह है यह मोहपरिणाम भव-भवमे दुःखका साधन बनेगा।

क्षणिक गल्तीका चिर दुष्परिणाम-- किसी क्षण तीव्र मोह करनेके कारण इस जीवको ७० कोड़ाकोड़ी सागर तक का मोह ममताका बन्धन हो सकता है। देखिये--गल्ती तो एक सेकेन्ड को की, पर एक सेकेण्डकी गल्तीमें इतने कर्मबंध किये कि इस जीवको अब ७० कोड़ाकोड़ी सागर तक दु खी होना पडेगा। एक सेकेण्डकी गल्तीमें कितने समय तकके लिए कर्मबंध जाते हैं और इस संसारमें रुलना पडता है। इसके लिए एक कल्पना करो कि दो हजार कोसका लम्बा चौडा गहरा गड्ढा हो और उसमें बहुत छोटे छोटे रोमके टुकडे जिनका दूसरा भाग न हो सके, भर दिये जायें और ठास दिये जायें चाहे हाथी फिरा दिया जाय जिससे वह खूब ठस जायें। अब १००-१०० वर्षमें एक-एक रोमका टुकडा निकाल-निकाल कर बाहर करें तो कितने वर्षोंमें वे सारे रोम खाली होंगे? इसकी कुछ गिनती नहीं है। इतने समयका नाम है व्यवहारपल्य और उससे असंख्यातगुण समय लगता है उसका नाम है उद्धारपल्य और उससे भी असंख्यात गुणा समय लगे उसका नाम है अद्धापल्य। ऐसे एक करोड़ अद्धापल्यमें एक करोड़ अद्धापल्यका गुणा करें तो वह हुआ एक कोड़ा कोड़ी अद्धापल्य। ऐसे १० कोडा-कोडी अद्धापल्यका नाम एक सागर है। एक करोड़ सागरमें एक करोड़ सागरका गुणा करे उसका नाम है एक कोड़ा-कोड़ी सागर। ऐसे ७० कोड़ा कोड़ी सागर तकके लिए बंध जाना पड़ता है एक सेकेण्डकी गल्तीमें।

कायमें पवित्रता व अपवित्रताकी दृष्टि-- अब सोच लो, कल्याणकी दृष्टिसे तो यह पवित्रकाय है, शरीर है, अन्य शरीरोंसे आत्मकल्याणका साधन नहीं मिलता और इस नरदेहसे आत्मकल्याणका साधन मिलता है और इसमें जो भरा है उस दृष्टिसे देखो तो यह महा अपवित्र शरीर है। इस सारे शरीरमें जिसका वजन करीब डेढ सवा मन है इतने वजनदार शरीरमें कोई तिलके दाने बराबर भी सारभूत मैटर है क्या? हड्डी, खून मास मज्जा पीप, चाम, रोम, नाक आदि हैं। कोई भी बात ऐसी नहीं है कि कुछ भी पवित्र हो। पशुवोंके तो दात भी काम आते हैं, हड्डी भी काम आती है, खाल भी काम आती है। यद्यपि वे भी ऐसे ही अपवित्र हैं, पर कुछ काम भी आते हैं। मनुष्यका शरीर तो मरने के बाद कुछ भी काम नहीं आता। सारा शरीर इसीलिए जला देना पड़ता है। काम आनेकी बात तो जाने दो। यदि यह शरीर ऐसे ही पड़ा रहे तो उल्टा जनताको क्लेश हो जाता है। दुर्गन्ध फैले, बीमारी फैले। ऐसे इस गंदे शरीरको हम आप लादे फिर रहे हैं, तिस पर भी इस देहको निरखकर अभिमानमें फूले जा रहे हैं।

आत्मकर्तव्य— भैया ! जो देह विघट जायेगा उस देहका ख्याल कर-कर अपनेको मोह रागद्वेषमें फसा लेना और सागरों पर्यन्त कर्मोंको बाध लेना, यह तो कोई विवेकका काम नहीं है, तब क्या करें ? कैसे इन संकटोंसे, दुष्कर्मोंसे छूटें ? उपाय एक ही है, अपना जो सहजस्वरूप है उस का परिज्ञान करायें। मैं अपने आप किस स्वरूप वाला हू, पर-उपाधिके सम्बन्धसे जो बात गुजरती है उसको नहीं कह रहे हैं, वह मेरा स्वरूप नहीं है। जो परनिमित्त पाकर बात आती है वह मेरा स्वरूप नहीं है। मेरा स्वरूप वह है जो मुझमें अनादिसे अनन्तकाल तक स्वयमेव सहज-स्वत बना है। वह स्वरूप है चैतन्यशक्ति, प्रतिभासात्मकता। अपनेको केवल ज्ञानमात्र समझें। मैं केवल ज्ञानमात्र हूं। कुछ कष्ट हो रहा है क्या इतना माननेमें ? मैं केवल ज्ञानमात्र हू, इसका अर्थ यह है कि मै देहरूप भी नही हू। किसी काम काज वाला भी नहीं हू, परिवार वाला, मकान वाला, वैभव वाला, पोजीशन वाला भी मै नही हू, धनी, गरीब, मूर्ख पडित भी मैं नहीं हू, किसी सम्प्रदाय वाला भी मैं नहीं हू। पुण्य आत्मा, धर्म-आत्मा कितने ही विशेषण लगाते जावो, इन विशेषणोंसे जो भेद ज्ञात होता है वह भी मैं नहीं हू। मैं तो एक ज्ञानस्वरूप हू। इतना मान सकते हैं क्या हम ? सही ढगसे, ईमानदारीसे अर्थात् फिर अन्य प्रकारका विकल्प न जगे श्रद्धामें, पूरी तौरसे यदि यह श्रद्धा बन जाये कि मैं तो सब से न्यारा केवल ज्ञानस्वरूप मात्र हूं तो इस श्रद्धासे जीत मिलेगी, वह प्रकाश मिलेगा जिसके अनुभवमें सत्य सहज अनन्त आनन्द बसा हुआ है।

एकमात्र निजोपयोगकी हितकारिता— हे आत्मन् ! यदि शाश्वत आनन्द चाहते हो तो चित्तमें यह श्रद्धा लेनी होगी कि परिजन मेरे कुछ नहीं हैं, अणुमात्र भी मेरा कुछ नहीं है, ऐसी श्रद्धा करनी होगी तब अपने आपका स्वरूप अपनेको नजर आयेगा। जैसे एक म्यानमें दो तलवार नहीं रक्खी जा सकती हैं, कपड़ेमें एक सूई एक साथ दोनों ओर सी नहीं सकती है, एक मुसाफिर एक बार पूरब और पश्चिम दोनों दिशावोंको नहीं जा सकता है, इस ही प्रकार एक उपयोगमें भोग भाव और धर्मभाव— ये दोनों ठहर नहीं सकते हैं। ससारका सुख भी लिया जाय और मुक्तिका उद्यम भी करते जायें — ये दोनों बाते नहीं हो सकतीं। "दोउ काम नहिं होय समाने। भोग विषय और मोक्षमे जाने॥" वह ज्ञानी संत धन्य है जो समागममें घरमे रहते हुए भी अपने आपमें यह श्रद्धा बनाये हुए है कि मैं आत्मा तो ज्ञानमात्र हू, और इसका करतब तो जानना और देखनामात्र है, अन्य कुछ नही है। ऐसे अक्रियस्वभावकी जो प्रतीति रक्खे है और घरमे रहते

हैं वे यद्यपि काम सभी करते जाते हैं तो भी ऐसे पुरुष जलसे भिन्न कमल की नाई शोभा पाते हैं।

जलमें भिन्न कमलवत् ज्ञानीकी रीति— देखो यह कमल जलसे ही पैदा हुआ, जलसे ही निकला और जलसे ही इस कमलका पोषण हो रहा है। मूलमें जल न हो तो कमल न उत्पन्न हो, न हरे-भरे रहें। जैसे जलके प्रतापसे इस कमलका जीवन है। यह कमल जलको छोड़कर जलसे कितना ही ऊपर रहा करते हैं। ऐसे ही गृहस्थभावमें इस गृहस्थकी उत्पत्ति भी इसी गृहस्थीमें होती, इसका पोषण भी इसी गृहस्थीसे चल रहा है, और धर्म-साधनाके लिए जितने जो कुछ साधन और वातावरण पा रहा है, इस गृहस्थ कार्योंकी वजहसे पा रहा है, तिस पर भी यह ज्ञानी गृहस्थ उन समस्त साधनोंसे, गृहस्थीसे, परिजनसे मोह आदिक भावोंसे अलग ही रहता है, विरक्त रहता है। ऐसा कोई अद्भुत ज्ञानापुंज इसने निरख लिया, पा लिया जिसके प्रसादसे इसकी एक ऐसी दुनिया बस गयी कि जिसके आनन्द ही आनन्द बसा है, आकुलताका कोई काम नहीं है।

धर्मका महत्त्व— निज ज्ञानस्वभावका दर्शन करना, निज ज्ञानस्व-भावका आश्रय करना यही धर्म है। इस धर्मकी महत्ताको बड़े-बड़े आचार्य पुरुष भी बतानेमें असमर्थ हैं। इस धर्मको तीर्थंकर, गणधर, ऋषि, संत ऐसे ऊँचे-ऊँचे पुरुषोंने धारण किया है। यह प्रभु द्वारा प्रकट किया गया धर्म सबको प्रतीति करने योग्य है। धर्मपरिणामोंसे उत्पन्न होता है। वाह्य क्रियाएँ तो इतने काममें सहयोग देती हैं कि उल्टी क्रियाएँ जो की थीं अधिक विषयसाधन आरम्भ परिग्रह और अनेक-अनेक, उन खोटी क्रियावों उन खोटे आशयोंसे विराम मिले, इसके लिए ये व्यावहारिक धार्मिक क्रियाएँ हैं, किन्तु धर्म मिलता है एक शुद्ध जानन विकासमात्र स्वभावके आश्रयसे। जिसने लक्ष्यको जान लिया है वह पुरुष तो मार्गमें सफल हो जाता है और जिसने लक्ष्यको नहीं जाना है, मूलतत्त्वको नहीं पहिचाना है, वह सफल नहीं पाता।

अज्ञानचेष्टासे कार्यकी असिद्धि— एक बार किसी गावसे तीन बजाज दूसरे गावके लिए चले, अपना अपना घोड़ा लेकर कपड़ा खरीदनेके लिए। रास्तेमें रात होने लगी तो एक पेड़के नीचे वे बजाज ठहर गए। उस पेड़ पर बन्दर रहा करते थे। जाड़ेके दिन थे, सो जाड़ेसे बचनेके लिए उन्होंने एक उपाय बनाया कि आस-पासके खेतोंसे जो बाड़ लगी थी उसको उठा-उठाकर उसी पेड़के नीचे इकट्ठा किया, इसके बाद चकमकसे आग सुलगा-कर मुखसे फूँककर उसको जला दिया, फिर जैसे तापने वाले लोग तापा

करते हैं कुक्करू आसन लगाकर और हाथ फैलाकर इस तरह बैठकर वे तापने लगे। ये सब काम ऊपर चढ़े हुए बन्दर देख रहे थे। व्यापारी लोग तो सुबह चले गए। बन्दरोंने दूसरे दिन सोचा कि वे लोग भी हम जैसे ही थे। हमारे जैसे ही हाथ पैर उनके थे। उन्होंने तो अपना जाड़ा मिटा लिया था। क्या हम लोग नहीं मिटा सकते हैं? उन सब बन्दरोंने भी अपना जाडा मिटानेके लिए उद्यम किया। आस-पासके खेतोंसे बाड उठा-उठाकर ले आए और उसी पेडके नीचे इकट्ठा कर दिया। अब बंदर कहते हैं कि इतना काम तो कर लिया, पर अभी जाडा नहीं मिटा। तो उन मे से एक बन्दर बोला कि अभी जाड़ा कैसे मिटे, अभी इसमें लाल-लाल चीज तो पडी ही नहीं है। सो वे बन्दर आस-पास जो बहुतसी पटबीजना (जुगुनू) उड रही थीं, सो उन्हें ले आये और बाड़में डाल दिया। ये लाल-लाल होती हैं ना। अब बन्दर कहते है कि अभी जाड़ा नहीं मिटा, तो एक बन्दर बोला कि अभी जाड़ा कैसे मिटे, उन्होंने लाल लाल चीज डाली थी, फिर मुखसे फूका भी था। वे सब मुखसे फूँकने लगे। अभी जाडा न मिटा तो एक बन्दर कहता है कि वे लोग यों कुक्करू आसन लगाकर, हाथ फैलाकर बैठे थे। वे सारे बंदर भी उसी तरहसे कुक्करू आसन लगाकर हाथ फैलाकर बैठ जाते हैं, फिर भी जाड़ा नहीं मिटता। अरे जाड़ा कैसे मिटे? मूलतत्त्व जो आग है उसका तो पता ही न था।

मूलके परिचयका प्रभाव— भैया! सच जानो कि मूलतत्त्वका पता न होनेसे कितनी भी क्रियाएँ, आचरण किए जाये, पर उनसे सिद्धि नहीं होती है। अपना मूललक्ष्य यह होना चाहिए कि मै ज्ञानप्रकाशमात्र हू, जानना मेरा कार्य है, स्वभाव है, यही मात्र मेरा वैभव है, यह शुद्ध आनन्द-मय है, मुझे तो केवल ज्ञाता द्रष्टा रहना है। किसी भी परिस्थितिमें मेरेमें भीतर यह श्रद्धा बन जावे कि राग द्वेषके लिए कोई मुझे प्रेरणा न करे, मेरेमें मोह ममताका परिणाम न जगे। मै तो ज्ञाताद्रष्टा ही रहना चाहता हू। यह जीवनका लक्ष्य बन जाय तो आत्माका उद्धार सुगम है। इससे बड़ा बलिदान है, त्याग है। यह सब आन्तरिक तपश्चरण है, इसे चैतन्य प्रतपन कहते हैं। यह तपस्या करते बने जिस ज्ञानीपुरुषसे उस ज्ञानीने अपना मानवजीवन सफल किया समझिये, और जो कायर होकर अपने या दूसरेके शरीरमे रागभाव करे, उसने तो अपना यह अमूल्य जीवन खो दिया। जैसे कोई पुरुष समुद्रके किनारे उड़ते हुए कौवेको और उड़ाने के लिए अपने हाथमें रक्खा हुआ रत्न फेंक दे, यों ही समझो कि यह दुर्लभ मानवजीवन व्यर्थ खो दिया। एक निर्णय अपना बनावो निःशंक होकर,

साहसी बनकर मैं तो केवलज्ञानस्वभावमात्र हूं और मेरेको एक काम यही रह गया है कि मैं उस ज्ञानस्वभावका ज्ञान करता हुआ निर्विकल्प होऊँ। यही धर्मपालन है। जिनकी मुक्ति निकट है, धर्म उनको ही प्राप्त होता है, हमें इस का अन्तरङ्गसे यत्न करना चाहिए।

शरीरेऽस्मिन् सर्वाशुचिनि बहुदु खेऽपि निवसन्,
व्यरंसीन्नो नैव प्रथयति जन प्रीतिमधिकाम्।
इमां दृष्ट्वाप्यस्माद्विरमयितुमेनं च यतते,
यतिर्याताख्यानैः परहितरतिं पश्य महत ॥६७॥

शरीरकी अशुचि और आसक्ति— यह शरीर सर्व ओरसे अशुचि है तथा शारीरिक और मानसिक अनेक दु खोंका यह साधन है। लोगोंकी सर्वाधिक प्रीति इस शरीरसे है। मोहीजन सब कुछ त्याग सकते हैं, पर इस शरीरकी प्रीति और शरीरके त्यागनेमें उनके भाव नहीं होता। कदाचित् भी कोई धनहानि करने आ जाए तो वह परिजनोंको बचानेका यत्न करेगा। परिजनो पर कोई आक्रमण करने आये या कोई उनकी हत्या करने आए तो सबसे पहिली बात अपने प्राण बचानेकी पडेगी। सर्वाधिक प्रीति पुरुषोंकी इस शरीरसे है। इस बातका कोई निर्णय नहीं करना है। परीक्षा लेनी हो तो अभी ले लो।

किसीकी चुटकी भरलो, चोटी पकड़कर खींच लो अथवा किसीके भी पास यदि आलपिन हो तो चुभो दो या खुद अपने चुभो लो या अन्य किसी के चुभो दो तो पता पड़ जाएगा कि कितनी ममता है इस शरीरसे? कितना खोटा मोहजाल है और एक ओर देखो उन मुनिराजको, जिनको शेर और स्यालिनी खाए, शत्रु परेशान करे, और तो क्या एक मुनिराजके शत्रुने उन की खालको चाकूसे छीला था और उस पर नमक छिड़कता जाता था— ऐसी ऐसी कठिन बाधाओंके अवसरमें भी वह कौनसा तन्त्र मन्त्र है, वह कौनसा जादू है, जिसके कारण उन्हें रच वेदना भी नहीं हुई और वे अपने सत्य व परम आनन्दरसमें तृप्त रहे। वह तन्त्र मन्त्र है अपने आपका जितना स्वरूप है, उतना ही माननेका।

कोई पुरुष टूटी हुई झौंपड़ीमें रहता है। उसे उस झोपड़ीमें बहुत ही अनुराग है। झौंपड़ीकी जरासी ईंट खिसक जाए तो वह उसमें ही चिन्ता करता है, शोक मानता है। यदि किसीकी हवेलीकी छत भी गिर जाए तो इस झौंपड़ी वालेको कोई शोक नहीं होता। इसका कारण यह है कि उस झौंपड़ी वालेको अपनी झौंपड़ीमें आत्मीयता है और उस हवेलीमें आत्मीयता नहीं है।

सकल क्लेशोंका निमित्त शरीर— अहो ! इस देहके साथ इस जीवका कितना विकट बंधन है ? यह बंधन ही समस्त दुखोंका मूल है। हम देहमें बंधे हैं हमारी मूर्तदृष्टि बन गयी है, हम पैनी ज्ञानछेनीसे अपने आपका भेद नहीं कर पाते हैं और अपने सहज प्रकाशमें मग्न नहीं हो पाते, इस ही अपराधके कारण विकल्पजाल चल रहा है। अनेक दुखोंका निधान ही यह शरीर है। अनेक क्या, जितने भी जगमें क्लेश हैं, उन सब क्लेशोंका मूल कारण यह शरीर है। रोग भूख आदिका कारण शरीरका संबंध है। कोई भी गाली सुनकर, अपयशकी बात सुनकर जो अपमान अनुभव किया जाता है, उसका कारण यह है कि इस शरीरपिंडको माना कि यह मैं हू। बस इस देह की ममताके कारण इसने अपमान महसूस किया। यदि यह भान होता कि मैं तो नामरहित, ज्ञानमात्र, आकाशवत्, निर्लेप केवल ज्योतिस्वरूप हूं तो वह अपमान क्यों महसूस करता ? सुखका मार्ग बहुत सुगम है, स्वाधीन है और अपनेमें है, पर उस मार्ग पर आनेकी कला मिले, तब ही ना। कला न मिले तो यह दुर्गम है।

स्वनिधिके अपरिचयकी दरिद्रता— अपने ही घरमें गड़ा हुआ धन यदि विदित नहीं है तो वह तो गरीबी ही अनुभव करेगा और कदाचित यह विदित हो जाए कि मेरे घरमें इस जगह बहुत बड़ी निधि गड़ी है तो अभी मिलने में देर है, लेकिन उस निधिका परिचय होते ही अन्तरमें एक ठसक सी आ जाती है, एक बड़प्पनसा अनुभव होने लगता है। जब तक इस जीवको अपने आपमें बसी हुई ज्ञान और आनन्दकी निधिका परिचय नहीं होता है, तब तक यह गरीब है। यह बाह्यपदार्थोंमें आशा कर करके दुखी होता रहता है।

आश्चर्य इस बातका है कि दुखी भी होते जाते और उसी दुखको पसन्द भी करते जाते हैं। यह सब मोहकी लीला है। जैसे घरमें कभी बड़ी कलह हो जाए और अनेक प्रतिकूलताएं हो जाए तो यह पुरुष चाहता है, ऊब करके कहता है कि इस घरसे तो जंगलमें रहना भला है। अब इस घर में मैं न रहूंगा और फिर रहता वह घरमें ही है। चाहे कितनी ही विपदा आ जाए, यह सब क्या है ? एक व्यामोह है। अच्छा तो घर छोड़कर कहां जाए ? सुख शांति ज्ञान पर आधारित है। वह ज्ञान तो बसाया नहीं, उस वस्तुकी स्वतंत्रताका तो दृढ निर्णय किया नहीं—ऐसे ही धर्म व्यवहार क्रियाओंको करके यह मन कहां तक स्थिर रह सकेगा, कहां जाएगा ? इस जीवकी बड़ी विचित्र दशाएं हैं।

संसारमें अशरणता— एक बार राजा भोजकी सभामें बहुतसे

पण्डित बैठे थे। एक पण्डितके पिता भी बैठे हुए थे। राजाने पण्डितके पितासे एक समस्या पूछी, किन्तु वह तो मूर्ख था, पढ़ा लिखा न था। कोई यह नियम तो नहीं है कि पण्डितका बाप भी पण्डित हो, वकीलका बाप भी वकील हो, डाक्टरका बाप भी डाक्टर हो—ऐसा कुछ नियम तो नहीं है। वह तो मूर्ख था। तो पिता अपने लड़केसे कहता है— 'पुरा रे बापा।' बापा पुत्रको किसी देशमें कहते हैं। इसकी पूर्ति करदे रे। लड़का होशियार था। उसने पिताकी मूर्खता छिपानेके लिए पुरा रे बापा कहकर ही श्लोक बना दिया—

> पुरा रेवापारे गिरिरतिदुरारोह शिखरे,
> गिरौ सव्येऽसव्ये दवदहनज्वालाव्यतिकर।
> धनु पाणि पश्चान्मृगयुशतक धावति भृश,
> क्व याम किं कुर्म हरिणशिशुरेवं विलपति॥

उसने तो पुरा रे बापा कहा था, इसके आगे रे और लगाकर उसने पुरा रेवा पारे बना दिया, इसका अर्थ है कि रेवा नदीके तट पर हिरणका का बच्चा खड़ा है और जगल व पर्वतामें आग लगी हुई है और पीछेसे १०० शिकारी धनुष बाण लिए हुए उस हिरणके बच्चेका पीछा कर रहे हैं मारने के लिए। उस समय वह हिरणका बच्चा अपने मनमें यह सोचता है कि "क्व याम कि कुर्म।" अर्थात् मैं कहा पर जाऊ और क्या करू ? बड़ा ही विलाप करता है। उससे अधिक विपत्ति हमें ही है, जो तनिकसी विभूति से सुखरसमें मग्न हो रहे हैं, विषयसाधनोंको पाकर अपनेको प्रभुसे कम नहीं समझते हैं।

संसारीजीवपर विपदाका बोझ— संसारी जीवों पर बहुत बड़ी विपदाओंका बोझ है। भला बताओ आज यह मनुष्य है, अच्छा शरीर है, श्रेष्ठ मन है और मरकर हो गए कानखजूरा तो कितना अन्तर हो गया ? कहा तो मनुष्य और कहा यह कानखजूरा। मरकर हो गए पेड़ पौधे, अब तो अंगोपाग भी नहीं रहे, जिह्वा भी नहीं रही, यह क्या जीव पर कम विपदा है ? यह जीव विलाप करता रहता है कि मैं कहा पर जाऊ और मैं क्या करूँ ? सारे दु खोंका निधान यह शरीर है। जितने भी कष्ट हैं, सब इस ही शरीरके कारण होते हैं और जिसके कारण कष्ट होते हैं, उसमें ही हम प्रीति रखते हैं।

शरीरसे छुटकारेके उपायकी जिज्ञासा— अभी कोई पूछ तो दे कि मैं क्या करूँ महाराज ? यह अपना गला घोट दे क्या ? इस शरीसे अलग हो जाए क्या ? मरण करले क्या ? शरीर जब क्लेशोंका कारण है तो क्या

करे ? देखिए जब कभी दुष्टोंके संगमें फस जाते हैं तो वहां अपनी ऐंठको बतानेसे काम नहीं निकलता। वहां जो मधुराईसे और धीरेसे यत्न द्वारा वहांसे छूटे तो निकल सकते हैं। ऐसे ही कोई सोचे कि यह शरीर दुःखोंका कारण है, इसलिए शरीरका घात करदें, प्राण तज दें तो यों तो शरीरका पिंड न छूटेगा। यह शरीर छूट जायगा, किन्तु फिर दूसरा लेना पड़ेगा और वह इससे भी गया बीता होगा और कष्ट कई गुणित सामने आ ही जायेंगे। इसका छुटकारा पानेका प्रथम उपाय ज्ञानभावना भाना है। मैं शरीरसे न्यारा केवलज्ञानस्वरूप हूं।

प्रभुस्वरूपके ध्यानसे अध्यात्म साहस— हे प्रभो ! तुम शरीरसे न्यारे ज्ञानमात्र हो, कोई मुझमें तुम्हारी अतिशय भक्ति बने, हमारे गुणोंका तीव्र अनुराग जगे तो मुझमें ज्ञान भावनाका बल बढ़ेगा। अहो ! यह शरीर सर्व-प्रकार अशुचि है, बहुत दुःखोंसे व्याप्त है। इसमें रहते हुए यह मनुष्य विरक्त तो होता नहीं, उल्टा अधिकाधिक प्रीति ही करता है। जिसने न जाना अपने आत्माके सहजस्वभावके अनुभवका आनन्द, वह तो बाहरी पदार्थोंकी आशा प्रतीक्षा भोग आदि करके ही अपनेको सुखी माननेका यत्न करेगा। क्योंकि इसने खाया हुआ है अपने उपयोगमें परद्रव्योंकी प्रीतिका भोजन। इसे कैसे रुचेगा बढ़िया आनन्दका भोजन ?

विषयआस्वसनपूर्वक आत्ममाधुर्यानुभव— दो चींटियां थीं। एक चींटी तो नमक वालेकी दुकानमें रहती थी और एक शक्कर वालेकी दुकानमें रहती थी। एक तो रोज शक्कर खाये और एक रोज नमक खाये। एक बार नमककी दुकानमें रहने वाली चींटीके पास शक्कर वाली चींटी गई और बोली बहिन ! तुम यहां रोज खारी क्यों खाती हो, हमारे साथ चलो हम सदा मीठा ही तुम्हें खिलावेंगी। उसे विश्वास न हुआ। उसके बहुत-बहुत समझानेपर वह चली तो सही, पर मुखमें एक नमककी डली लेकर चली, ताकि वहां भूखां न मरना पड़े। जब वहां दोनों चींटियोंने जाकर शक्करका स्वाद लिया तो शक्करमें रहने वाली चींटी पूछती है-कहो बहिन, कुछ मीठा स्वाद आया ? तो वह बोली नहीं आया। फिर पूछा कि तुम्हारे चोंचमें कुछ रक्खा तो नहीं है। बोली, हां एक नमककी डली रक्खी है। वह इसलिए ले आयी हूं कि मुझे कहीं उपवास न करना पड़े। तो शक्करमें रहने वाली चींटी बोली— अरे नमककी डलीको मुखसे निकाल दे तब स्वाद ले। उसने नमककी डलीको मुखसे निकाल दिया, तब स्वाद लिया तो स्वाद आया। अब शक्करमें रहने वाली चींटी पूछती है -कहो बहिन अब कुछ स्वाद आया ? तो वह बोली, हां बहिन बड़ा स्वाद आया। नमकमें रहने वाली

चींटी पूछती है—कहो बहिन ऐसा मधुर स्वाद तुम कबसे ले रही हो ? तो वह बोली कि हम तो रोज रोज ऐसा मधुर स्वाद लिया करती हैं। ऐसे ही जानों कि ये विषय विष जब तक रुचते रहेंगे तब तक आत्मीय सहज आनन्दरसमें प्रीति नहीं जग सकती। जिसे आत्मीय आनन्दरसमें प्रीति नहीं जग सकती, उसको प्रभुमें भक्ति भी नहीं हो सकती। वह प्रभुकी महत्ता जानेगा ही क्या ?

अशुचि शरीरका दुरुपयोग— ये जगत्के प्राणी इस अशुचि शरीर से विरक्त नहीं होते। इन कर्मोंने तो इसे मानों इसलिए यह अशुचि शरीर दिया कि इस शरीरसे शीघ्र विरक्त हो जाय, किन्तु यह ससारी ऐसा सुभट निकला कि ऐसे गदे शरीरमें रहते हुए भी विरक्ति नहीं कर सकता। मुनिजन इसे समझाते हैं—मानो बड़ी करुणा करके समझा रहे हैं, जैसे कोई बालक आगको ही बारबार हाथोंसे पकड़ना चाहे या मिट्टी ही बार बार खाते रहने की आदत बनाये तो उसकी मा उसे थप्पड़ मारकर डाटकर उसकी आदतको छुटाती है। ऐसे ही यद्यपि गृहस्थजनोंको साधुजनोंका उपदेश नहीं रुचता, लेकिन ये साधुजन फिर भी करुणाके कारण बारबार बताते ही तो चले जा रहे हैं। यह जीव कभी तो सुलझेगा ही। वे मुनिजन इस व्यामोही जीवको शरीरसे विरक्त करनेका यत्न कर रहे हैं। जैसे अपना स्वार्थ सधे तैसे तो सुख देने वाले बहुत हैं, किन्तु मुनिजनोंका क्या स्वार्थ सध रहा है ? उपदेश देकर, यथार्थज्ञान कराकर, ससार शरीर और भोगोंसे विरक्ति उत्पन्न कराकर इनका कौनसा स्वार्थ सध रहा है ? ये साधुजन नि स्वार्थ हैं। इस जगत्के जीवों पर करुणा करके भगवान्की परम्परासे चली आयी हुई पद्धतिके अनुसार उपदेश दिया करते हैं। इस शरीरमे आसक्त मत हो।

शरीरशृङ्गारकी व्यर्थता— कोई लोग तो इस शरीरको गहनों से सजाकर, सफेद राख आदि कोई चीज लपेटकर अनेक तरहसे इस शरीरको सजाते हैं। न जाने क्या दृष्टि है उनकी ? अरे किसको प्रसन्न करने के लिए शरीरको सजा रहे हैं ? जगतमें दो तरह के लोग हैं— कुछ तो दुष्ट और कुछ सज्जन। ऐसे बनावटी सजे हुए शरीरको देखकर कोई दुष्ट अज्ञानी अभिलाषी कामी भले ही कुछ अच्छा कह दे, किन्तु सज्जन, ज्ञानी विरक्त तो उसे मूर्ख ही कहेंगे। कैसी बाह्यदृष्टि बनी है, कितना मोह ममत्वमें ध्यान बढ़ाया है कि ऐसी कृत्रिमता, ऐसी बनावट करते हैं जिससे दुनियाको यह दिखाना चाहते हैं कि मेरा शरीर कितना सुन्दर है।

सुन्दरतामें क्लेशकारणता— सुन्दर किसे कहते हैं ? इसमें तीन शब्द हैं—सु उन्द् और अर। सु का अर्थ है भली प्रकार, उन्दी क्लेदने धातु

है। जो अच्छी प्रकार कष्ट दे उसे सुन्दर कहते हैं। मगर दुनियाने यह जाना कि सुन्दर के मायने हैं कोई उत्कृष्ट चीज। इसीसे लोग अपने प्यारों का भी नाम सुन्दर रखने लगे। किसीको विदित नहीं है कि सुन्दर शब्दका भीतरमें अर्थ क्या है? और यह बात ठीक भी है। जो जितना मन प्रिय हो, इष्ट हो, अभीष्ट हो वह पदार्थ इस जीव को धीरे-धीरे तड़फाकर दु:खी करने का ही कारण बनता है। इस कारण उन अभीष्ट पदार्थोंका सुन्दर नाम लेना यथावत् ठीक है। अहो, कितनी भूल लदी हुई है इस उपयोगमें? कितनी बातें बसी हुई हैं? सब लोग अपनी-अपनी जानें। किसीकी चिन्ता पुत्र स्त्री वैभव धन कुछ न कुछ अनेक ऐसी बातें बसी हुई हैं। वे उनसे अपने को हटा नहीं पाते हैं, ऐसा उनका अयोग्य उपादान है।

संकटहारिणी ज्ञानभावना— सब संकटोंको दूर करनेका उपाय ज्ञानभावना है। मैं ज्ञानमात्र हूं, सबसे निराला हूं—ऐसी बारबार भावना बनाएँ और अपने आपमें इस ज्ञानस्वरूपको ही निरखा करें। इससे ही संकट दूर होंगे। बाहरी दिखावे की प्रवृत्तियोंसे क्लेश दूर नहीं होते। एक बुढ़िया थी। वह अपने घरमें पतले गोबरसे लीप रही थी। वह गोबरको जमीन पर डाल दे और उसमें काफी पानी डालकर उसे बिल्कुल पतला बना दे, फिर उसे उसी जमीन पर लीपे। तो वह बुढिया शायद जैनी होगी। सो गोबरसे लीपती जाय और कहती जाय—'चींटी-चींटा चढो पहाड़, तुम पर आइ गोबर की धार। तुम न चढो तो तुम पर पाप, हम न कहें तो हम पर पाप।।' तो ऐसे पापोंके दूर करनेकी क्रियाओंसे तो काम नहीं चलता। आन्तरिक भेदविज्ञानके द्वारा परसे उपेक्षा करके अपनेको ज्ञानमात्र भावनेमें चिरकाल तक बनाएँ तो उससे सिद्धि होती है। इस छंदमें यह शिक्षा दी है कि इस शरीरसे प्रीति छोड़ो और खुद जो ज्ञान शरीरी है उस अन्तस्तत्त्वमें प्रीति करो।

इत्थं तथेति बहुना किमुदीरितेन भूयस्त्वयैव ननु जन्मनि भुक्तमुक्तम्।
एतावदेव कथितं तव सकलय्य सर्वापदां पदमिदं जननं जनानाम् ।।६८।।

साधु संतोंका करुणाप्रेरित उपदेश— संसारी प्राणी इस शरीरसे विमुख नहीं होते हैं। शरीरकृत अनेक उपद्रव उपसर्ग सहते हुए भी शरीर से विरक्त नहीं होते हैं। साधुजन, ज्ञानीपुरुष इस जीवको शरीरके विमुख करनेके लिए नाना प्रकारसे उपदेश देते हैं। साधु संतोंको इतनी अधिक शरीरकी बुराई करनेकी क्या पड़ी है, और जीवोंको शरीरसे विमुख करने की क्या पड़ी है? इसके उत्तरमें यह छन्द कहा जा रहा है, बहुत क्या कहें? इस संसारमें शरीरको बार बार भोगा और छोड़ा। जितना कुछ-

कहा जाय, इस शरीरके कारण होने वाले क्लेशोका और क्लेशोका कारण होनेसे शरीरकी असारताको जितना भी कहा जाय वह सब थोड़ा है। यह शरीर सर्वविपत्तियोंका स्थान है।

नारकशरीरका क्लेश— नरकगतिमे जो क्लेश नारकी भोगते हैं, वह सुननेमें भी बडा असह्य लगता है। वे नारकी जीव एक दूसरेको जब देखते हैं तो देखते ही नारकियों पर ऐसा टूट पड़ते हैं जैसे कोई कुत्ता किसी नवीन कुत्तेको देखे तो वह उस पर टूट पड़ता है। ये नारकी जीव पैदा होते है किस स्थानसे ? जो पृथ्वीका भाग है उसमे तिकोने चौकोने विकराल कुछ स्थान बने हैं। उन स्थानोसे यह जीव नारकी होकर सिरके बल औंधा गिरता है। जमीन पर गिरनेके बाद यह कितनी बार उछलता है और गिरता है। इन नारकियोको जन्मते ही महाक्लेश मिलते हैं। उस दुखसे कुछ विराम पाया, वह नारकी भूमिमें कुछ स्थिर हुआ कि एकदम दूसरे नारकी उस पर टूट पडते हैं। नारकी जीव दूसरेको सतायें वहा उन्हें कोई हथियार लाठी वगैरह नहीं खोजने पड़ते हैं। उनकी इच्छा हुई कि मैं इसे तलवार मार दूँ तो इस इच्छाके साथ ही हाथके उठाते ही हाथ तलवारका रूप रख लेते हैं। जितने भी शस्त्र वे चाहें मारनेके लिए वे शस्त्र उनके हाथ ही बन जाते हैं, ऐसा उनका वैक्रयिक शरीर है।

नरकभूमि— नरकमें रात दिवस बराबर होते हैं। रात दिवसके वहा विभाग तो हैं नहीं। न रात है न दिन, किन्तु जहा जितना अँधेरा है प्रकाश है वहा उतना ही अँधेरा प्रकाश है। पहिली पृथ्वीमें अर्थात् पहिले नरकमे रत्न जितना ही मात्र प्रकाश है। जैसे कोई रत्न इतना ही भर चमकता है कि यह मालूम पड जाय कि यहा रत्न रखा है। कहीं दीपककी तरह उसका प्रकाश नहीं होता है। कुछ थोडासा और प्रकाश हो गया। जैसे कि रातको देखने वाली घड़ी होती है, उसमें जैसा प्रकाश है उतना ही मात्र पहिले नरकमें प्रकाश है। इस नरकका नाम है रत्नप्रभा। दूसरे नरकमें शरीरकी जितनी आभा है। शक्कर सफेद होती है, उसके आभा क्या रहती है ? क्या अधेरेमे दिख जाती है ? हा सम्भव है कि कुछ दिख जाय। इतना ही मात्र जहा प्रकाश है बस यही है दूसरे नरककी स्थिति। तीसरे नरकमे अंधेरा शुरू हो गया। जैसे बालूकी रेत होती है, उसमें कहा उजाला है ? ऐसा ही अधेरा तीसरे नरकमें है। चौथे नरकमें कीचड जैसा अंधेरा है। ५वे नरकमे धुवा जैसा अंधेरा है। ६ठवें नरकमे जितना कृष्णपक्षमे अंधेरा रहता है उतना है, और ७वें नरकमें घोर अंधेरा है।

नरकभूमिका कष्ट— नरकोंकी भूमि इतनी करन्ट वाली है, इतनी

यह बराबर चलता रहता है। एक सेकेण्डमें २३ बार निगोदिया जीवोंका जन्म और मरण होता है।

निगोदशरीरके क्लेशोंका उद्भव--जन्म ही का नाम मरण है, मरण ही का नाम जन्म है। चाहे मरण कह लो चाहे जन्म कह लो, बात एक ही है। जैसे यह अंगुली सीधी है इसे टेढ़ी करदें तो चाहे यह कह लो कि अंगुली टेढ़ी करली और चाहे यह कह लो कि अंगुली की सीध मिट गयी। दोनोंका एक ही अर्थ है। सीधका मिटना, टेढ़का बनना आदि दोनोंका एक ही मतलब है। पूर्वभवकी आयुका अलग होना और नवीन भवकी आयुका प्रारम्भ होना दोनोंका एक समय है। निगोदिया जीव एक सेकेण्डमें २३ बार जन्म मरण कर लेता है। यहां तो लोग यश कीर्ति विषयसाधन आदि अनेक खटपट और कलावोंके लिए अपनी बुद्धि और विवेक लगाते हैं। उन निगोद जीवोंकी कौन सुने ? एक कविने कहा है--

जो लोग किसीके सुखसे सुख मानते हैं, किसीके दुखसे दुख मानते हैं, इतने व्यामोही हैं, वे निगोद जानेकी तैयारीमें इस बातका अभ्यास कर रहे हैं, क्योंकि वहा तो एक जीवकी श्वास जब चले, तब ही वहा बसे हुए अनन्त जीवोंकी श्वास चले। जब एक जीव मरा, उसी समय अनन्त जीव मरे।

एक साथ जन्मना और एक साथ मरनेका अभ्यास मोहीजन यहा कर रहे हैं। कहीं निगोदमें जाना पड़े तो उसके अभ्यासमें कसर नहीं रह जाए। अपने विषयसाधनमें किसीके सुखमें सुख मानना और किसीके दुखमें दुख मानना तथा इतना अधिक तीव्र व्यामोहका होना--यह दुर्गतिका ही तो काम है।

विशिष्ट तिर्यंचोंका क्लेश --कभी सुयोगसे निगोदसे निकला तो अन्य स्थावर, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रियमें उत्पन्न हुआ। अब आप हम सब अपने बारेमें ऐसा चिन्तन करते जायें कि इतना तो निश्चय हो ही गया ना कि हम लोग निगोदसे निकल आये। अनन्त जीव तो ऐसे हैं जो निगोदसे आज तक भी नहीं निकले हैं और इतना तो विश्वास है कि विकल्पजालोंसे भी निकल आए। अब यह जीव पञ्चइन्द्रिय, मनरहित पञ्चेन्द्रिय विकलपोंकी भांति ही समझ लीजिए, वे अपना हित करनेमें असमर्थ हैं और सैनी भी हुए, क्रूर जानवर पशु पक्षी हुए तो वहा भी क्रूर पशुपक्षी हुए तो कौनसा लाभ पा लिया ? नारकियोंकी दशा और अवस्था तो सुन ही रक्खी है। तिर्यंचोंके दुख सुन रक्खे हैं। बाजारोंमें देख लो कि जहा मैदा,

दाल वगैरह बिकते हैं एक ठेलेमे जिसमें एक भैंसा जुतता है, ४० बोरे तो शायद रख लेते हैं, इतना हमारा अन्दाजा है और उनका वजन करीब ६० मन तक होती होगी। इतना विकट बोझ एक भैंसा लादे चला जा रहा है और वह भैंसा भी कैसा कि जिसकी गर्दन फूटी हुई है, खून बह रहा है, फिर भी कधे पर जुवा जोत दिया और कटघरे के भीतर जकड दिया चारो ओरसे। क्या करे अब वह बेचारा ? न चले तो चाबुक लग रहे है। अरे वे भी तो हम आप जैसे ही जीव हैं। हम आपने भी ऐसी पर्याय पाई होगी, क्लेश भोगे होंगे। उन दुःखोंका कौन वर्णन कर सकेगा, वे ही जानें। उनके भूख लगी है, मालिककी मर्जी हुई तो भुस डाल दिया, जब मालिककी मर्जी हुई तो पानी पिला दिया।

मनुष्यभवकी उपयोगिताका बेसुधपना— इस मनुष्यभवमें इतनी पराधीनता तो नहीं है फिर भी यह मनुष्य पाये हुए पुण्य, पाये हुए समागम मे सन्तोष नहीं कर सकता है। यह भी तृष्णाके वशीभूत हुआ अपने को पराधीन अनुभव करता है। मनुष्योंके दुःख तो बहुत कुछ अनुभव किए हुए हैं और नजर आ रहे है। यह मनुष्य बचपनमें अज्ञानी रहा, जरा कुछ बड़ा हुआ तो स्वच्छन्दतासे खेलकूदमें अपना समय खो दिया। बड़ा हुआ, विवाह हुआ, बच्चे हुए चिन्ताएँ चलीं, रोग शोक आदिक अनेक क्लेश हुए, बुढापेमे शिथिल हो गए, चलने फिरनेसे भी लाचार, एक जगह पड़ा रहना चाहता है, ऐसे दुःसह दुःखमे यह मनुष्यभव बिताया गया है। कैसे कल्याण करें ?

अवसरोंका अनुपयोग— एक सेठकी राजासे बडी मित्रता थी। सेठ हो गया दुर्भाग्यवश बहुत गरीब, तो अपने मित्र राजासे क्या मागता है ? हे राजन् ! अब दरिद्रताका दुःख तो नहीं सहा जाता है, कुछ उपाय लगावो। तो राजा कहता है कि जावो कल दिनमे एक बजेसे तीन बजे तकके लिए आज्ञा देता हू कि हीरा जवाहिरातके खजाने से जितने हीरा जवाहिरात ला सको, ले आना। सेठ पहुचा हीरा जवाहिरातके खजानेमे। राजाने खजान्ची को पहिले ही सूचित कर दिया था कि दो घंटेके अन्दर सेठ जितना हीरा जवाहिरात ले जा सके, ले जाने देना। जब वह खजाने के भीतर गया तो कहीं एक ही जगह छोटे कमरेमे न थे हीरा जवाहिरात। बहुत बड़ा मैदान था, अनेक कमरे थे। बहुत सुन्दर-सुन्दर खेल खिलाने थे, इन खेल खिलौनोंको देखा तो उनमें ही उसका बड़ा मन लग गया। उन खेल खिलौनोंमें ही रमते हुए तीन बज गए। चपरासी ने खजाने से बाहर निकाल दिया। सेठ रोता हुआ राजाके पास पहुचा। बोला, महाराज आज

तो खजाने से हम कुछ भी नहीं ला सके। राजाने दूसरे दिनके लिए १ बजे से तीन बजे तकके लिया आज्ञा दी कि सोने के खजाने से जितना चाहे सोना ले आना। पहुचा सेठ दूसरे दिन। वहा एकसे एक सुन्दर घोड़े बंधे हुए थे। सेठ घोडोंका शौकीन था। उनमें ही रम गया, किसी घोड़े पर बैठ कर उसकी चाल देखने लगा। इसीमें ही दो घंटेका समय व्यतीत हो गया। सेठ वहासे भी कुछ न ले जा सका। फिर राजाके पास पहुचा। बोला महाराज आज भी कुछ नहीं ला सके। राजा ने तीसरे दिन चादीके खजाने में जानेकी आज्ञा दी, एक बजे से तीन बजे तक के लिए। वहा पहुचा सेठ तो देखता है कि बड़ा सुन्दर मैदान है। कमरोंमें बड़ी अच्छी सजावट है। अनेक एकसे एक सुन्दर नारियोंके चित्र थे, वहा रहने वाली अनेक सेविकाएँ थीं। इन सबमें ही उसका चित्त रम गया। दो घंटेका समय व्यतीत हो जाने पर चपरासीने निकाल दिया। फिर राजाके पास वह सेठ पहुचा। राजाने चौथे दिनके लिए फिर ताम्बा, पीतलके खजानेमें जानेकी और जितना ढोकर ला सके लाने की आज्ञा दे दी। वहा सेठ पहुचा तो देखा कि बड़े भारी एरियामें एकसे एक सुन्दर पलग पड़े हैं। वह पलंग विलक्षण स्प्रिंग वाले थे। विलक्षण उनमें कोमलता थी। उनमें से एक पलग पर वह लेट गया देखने और दो मिनटमें सो गया। सोते सोते ही तीन बज गए। वहा से भी चपरासीने उसे बाहर निकाल दिया।

मनुष्यभवके अवसरोंकी उपयोगिताका बेसुधपना— ऐसे ही यह खेल खिलौनोंमें समय गुजार देता है। किशोर अवस्थामें अनेक कलाओंमें, खेलों में, प्रायोगिक खेलोंमें समय बिता देता है। जवानीमें यह वासनाओंमें समय गंवा देता है। बुढ़ापेमें खाटपर पड़ा हुआ, कराहता हुआ समय गुजार देता है। हित इसने कहा कर पाया? देवगतिमें भी अनेक कष्ट रहे। वे कष्ट थे उनमके और मनके। एक दूसरेकी सम्पदा को देखकर वे सह नहीं सकते, ईर्ष्या करते हैं, जलते हैं। अपनी हीनता निरखकर निरन्तर कष्ट भोगते हैं। उनका भी क्या जीवन? इन सब क्लेशोंका कारण यह शरीर है। जिस जीवने जो भी कष्ट भोगा उस कष्टका आधार, माध्यम यह शरीर है। हे आत्मन्! तू अनादि कालसे शरीर धारण करके दु:ख भोगकर और उसको छोड़कर कैसे-कैसे शरीरोंको धारण करता है, हम तुमसे केवल इतना ही कह रहे हैं सक्षेपमें कि जितने भी ससारमें क्लेश होते हैं उन क्लेशोंका स्थानक यह शरीर है। इस कारण तू शरीरसे विरक्त हो और जिस प्रकार शरीरका सम्बन्ध छूटे, सदाके लिए क्लेशोंसे छुटकारा मिले, वह यत्न कर।

दुष्टसे छुटकारा पानेका गंभीर उपाय— भला किसी दुष्ट मित्रसे

पाला पड गया हो तो उस मित्रसे छुटकारा पाने का क्या उपाय रचा जाता है ? जब मालूम पड़ जाय कि यह मेरे साथ कपट करता है तो उससे उपेक्षा भाव हो जायेगा और यही उपेक्षा भाव उस दुष्ट मित्रसे छुटकारा दिला देगा। ऐसे ही इस शरीरका बन्धन लग गया है तो इससे छूटनेके उपायमें प्रथम क्या करना होगा कि इस शरीरका स्वरूप और अपना स्वरूप जानना होगा। यह शरीर केवल दु खों का आश्रय है। यह मैं आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूपको लिए हुए हू। ऐसा शरीरमे और आत्मामें अन्तर जानकर शरीर से उपेक्षा करना और आत्मामें रुचि करना यह अपना कर्तव्य होगा। हे भव्य आत्मन्! इस शरीर को विपदाका स्थान जानकर इसमे मोह तो मत कर--यही मैं हू ऐसी प्रतीति तो न बना। इस शरीरसे न्यारा ज्ञानानन्द स्वरूप मैं सत् हू, अजर हूं, अमर हू, अजन्मा हू। उस निज अन्तस्तत्त्व का आश्रय करो। इस पुरुषार्थसे ही तेरे समस्त क्लेश दूर होंगे।

अन्तर्वान्तं वदनविवरे क्षुत्तृषार्तः प्रतीच्छन् ,
कर्मायत्तः सुचिरमुदरावस्करे वृद्धगृद्धया।
निष्पन्दात्मा कृमिसहचरो जन्मनि क्लेशभीतो,
मन्ये जन्मिन्नपि च मरणात्तन्निमित्ताद्विभेषि ॥६६॥

गर्भगत मनुष्योंके क्लेश-- हे प्राणी! तू माताके उदरमें जो कि मल मूत्रका स्थान है वहा कर्मोंके आधीन हुआ बहुत समय पर्यन्त बढ़नेके लोभसे जो मा ने चबाया, खाया उसे मुखरूपी छिद्रसे उठाकर खाया। मां कोई बूंद मेरे मुखमें पड़ जाये। यह जीव जब गर्भ अवस्थामे आता है तब माके पेट मे रहता हुआ इस बात की चाह किये रहता है कि कोई बूंद मेरे मुखमे भी आ जाय, पर वहा खानेको कुछ मिलता नहीं है। किसी नली द्वारा जो बच्चेकी नाभिसे लगी रहती है और मां के पेटसे किसी स्थानसे जुड़ी रहती है उसके द्वारा ही कुछ आहार ले लेता है। मुख तो बंद रहता होगा। वह बच्चा गर्भ अवस्था में भूख और प्याससे पीड़ित रहता है। यह अपने दु ख की बात कही जा रही है। हम आपको याद नहीं है। गर्भमे रहे तब कैसे दु:ख सहे, शायद किसीको भी याद न होगा। और तो जाने दो, गर्भसे निकला और एक दो साल तक जो बीती होगी उस तककी भी याद नहीं है।

बचपनके क्लेश-- बचपनके दु खका कुछ अनुमान करो। जैसे अभी हम आपको कोई किसी संदूकमें बंद करदे, जहा हवा न मिले, पानी पीने को भी कोई न पूछे तो कैसा गुजरेगा ? मा का पेट तो पूरा सदूक है इस गर्भ वाले बालकके लिए। पड़ा है सिकुड़ा हुआ, किस तरहसे भिचा हुआ वह गर्भमें रहता है, उसके दु खकी बात नहीं जाने। जब निकलता है गर्भसे

तब उसे कुछ आंखोंसे दिखता होगा जो कुछ भी, बोल तो सकता नहीं। पर सब कुछ अचम्भेकी बात नजर आती होगी। क्या है? अब उत्पन्न होते ही बच्चा रोता है तो उसकी आवाज कहा कहा इस तरह हुआ करती है ना रोतेमें? तो कवि लोग यह कहते हैं कि वह बच्चा यह सोच रहा है कि अब मैं कहा आ गया? उसे तो सारी बात नई मालूम होती है। प्रकरण चल रहा है कि ससारमें जितने भी क्लेश हैं वे इस शरीरके कारण हैं। जीवका शरीरसे सम्बन्ध है इसीसे सारे दु ख हैं, लेकिन यह उन दु खोंको सुख मानकर इस ही दु:खमें रम रहा है। गर्भमें बच्चेको रहनेके लिए कितनी जगह है? हम आप तो एक पूरे कमरेमें भी रहते हुए सोचते हैं कि हमारे रहनेका स्थान बहुत छोटा है और पेटमें कितना स्थान मिलता है इस बच्चेको रहनेके लिए? सिकुड़ा रहता है। उसके पास कहीं इतना भी स्थान नहीं है कि थोडासा सरक तो ले, कभी करवट बदल तो ले।

गर्भस्थ बालकके आन्तरिक क्लेश— गर्भस्थ बालक इतना अशक्त है, लेकिन मन उसको तभीसे है जबसे गर्भमें आया। शरीर चाहे गर्भमें तीन चार महीने तक कुछ पूर्ण बन भी नहीं पाता होगा, लेकिन मन बराबर उसी दिनसे है जिस दिनसे बालक गर्भमें आया है, और मनसे विचारनेके दु ख, कल्पनाएँ करनेके दु ख चल रहे हैं। पेटमें थोडासा स्थान है वहा बच्चेका हलन चलन बनता नहीं है। उस बच्चेके साथ कौन है वहा? पेट में कोई कीडे वगैरह हों तो वे ही उसके साथी हो सकते हैं और कीडे होते ही हैं हमारे आपके सबके पेटमें। किसी न किसी प्रकारके किसी रूपमें बने ही रहते हैं त्रसजीव। वे ही मात्र उस जीवके साथी समझिये। ऐसी गर्भअवस्थामें प्राणीने बडे क्लेश सहे हैं और जब गर्भअवस्थासे निकला तब भी महान् क्लेश हुआ। इस मनुष्यभवमें, गर्भसे ही क्लेशोंकी शुरुवात है।

क्लेश मिटानेके थोथे सांसारिक प्रोग्राम— हे प्राणी! तू क्लेशोंको मिटानेके लिए बहुतसे सासारिक प्रोग्राम क्यों बनाता है? जैसे बहने वाली नदीमें किसी जगह कोई कच्चा घाव बांधनेका यत्न करता है तो काहेको वह यत्न करता है? थोडी देरमें ही तो वह बह जायगा, ऐसे ही सासारिक सुख पानेके लिए, क्लेशोंसे दूर होनेके लिए बडे यत्न कर रहे हैं हमारे पास धन जुड़ जाय, मकान बन जाय, नगरमें मेरी कीर्ति छा जाय, ऐसी बातें तू काहेको सोच रहा है? अरे इतना तो विकट दु:ख यथाशीघ्र मिलेगा जब तू गर्भमें पहुचेगा, या अन्य प्रकार जन्मेगा। तब दु ख ही दु ख है तो। इस ससारमें उन दु खोसे छूटनेके लिए तू यहाके स्वप्नके प्रयत्न क्यों

कर रहा है? दु:खोंसे छूटना है तो तू शुद्ध प्रयत्न कर। वह शुद्ध प्रयत्न क्या है? शरीरसे भिन्न ज्ञानानन्दमात्र निज स्वरूपास्तित्वमय अपने आप को देखो, यह मैं सबसे न्यारा ज्ञानघन आत्मा हूं, ऐसी दृष्टि बना, अपने आपमें आराम विश्राम कर।

मरणभयमें जन्मक्लेशभयकी अन्तर्निहितता— तू मरणसे डर रहा है, यह मरण जन्मका कारण है। जन्म भी दु:खमय है, मरण भी दु:खमय है। मालूम होता है कि तू मरणसे क्या डर रहा है जन्मके दु:खसे डर रहा है। ये तो आ ही रहे हैं। जन्म और मरण ये जीवनके ओर छोर हैं। जैसे एक बांसके पोरमें दोनों ओर, ओर और छोर पर आग लगी हो और उसके बीचमें कीड़ा हो तो उस कीडेका कौन सहाय है, ऐसे ही हमारे जीवनके जिन्दगीके ओरमें तो गर्भ और जन्मका क्लेश है, जन्मकी आग लगी है और जीवनके छोरमें मरणकी आग लगी है, ऐसे हमारे जिन्दगीके ओर छोर बड़ी कष्ट ज्वालासे जल रहे हैं। उसके बीचमें हम आप जन्तु पड़े हुए हैं। काहेकी कुशलता? लोग पूछते हैं भाई कुशलता तो है ना? अरे काहेकी कुशलता बतायें? यह संसार ही सारा क्लेशमय है, जन्मे मरे जन्मे मरे—यही इस लोकमें होता है। आज यह मनुष्यकी जिन्दगी पायी तो कौनसी बड़ी बात पायी? यह भी स्वप्नवत् है, थोडे जीवनका काम है, मरेंगे। जो बात अपरमार्थ है, वास्तविक नहीं है उसका भय किया जा रहा है।

स्वप्नका क्लेश— एक सेठ था। उसे दिनमें नींद आ गयी। पड़ा तो है वह अपने अच्छे ठंडे कमरेमें, स्वप्न आ गया कि मुझे बहुत तेज गरमी लग रही है, चलो समुद्रकी शीतल लहरोंमें थोड़ा पहुंचें। सो चलनेको हुआ कि स्त्री, पुत्र, नौकर आदि सभी कहने लगे कि हमको भी तो गरमी लग रही है, हम भी चलेंगे। वे सबके सब नावमें बैठकर सैर करने चले। नाव जब मील दो मील दूर निकल गयी तो समुद्रमें एक भंवर उठी, नाव डगमगाने लगी। नाविक बोलता है कि नाव तो अब डूब जायगी, बचेगी नहीं। तो सेठ बोला भाई हमें बचावो, हमसे हजार रुपये ले लो, ४ हजार ले लो, हमें यहांसे बचावो। वह कहता है कि जब हम ही न रहेंगे तो रुपये कौन लेगा? हम तो नाव छोड़कर तिरे जा रहे हैं। यह सब स्वप्नकी बातें कही जा रही हैं। जिसे ऐसा स्वप्न आये उसके दु:खका क्या ठिकाना? सेठ दु:खी हो रहा है। सारा दु:ख स्वप्नमें हो रहा है। नाविक तो नावसे कूदकर पार होने चला और सेठ बड़े कष्टमें है। देखो— कहां तो सेठ आरामसे बड़े अच्छे ठंडे कमरेमें पड़ा हुआ है, कुछ सेवक लोग उसका

बहलानेके लिए उसके जगनेका इन्तजार किए बैठे हैं, मगर सेठकी क्या हालत हो रही है? बड़ा दुःखी है। इतने साधन मौजूद हैं, पर सेठके दुःख को मिटानेमें कोई समर्थ नहीं है। सेठका दुःख मिट सकता है तो मात्र एक उपायसे कि उसकी नींद खुल जाय, जग जाय तो उसका क्लेश मिटेगा। जगने पर देखता है कि वहां न समुद्र है, न नाव है, न कोई डूब रहा है, लो अब उसके रंच भी दुःख नहीं रहा।

मोहनिद्राका क्लेश— ऐसे ही इस मोही प्राणीको मोहकी नींदमें स्वप्ने आ रहे हैं, मेरा घर है, मेरा कुटुम्ब है मेरा वैभव है आदि। स्वप्न मे कोई भी बात झूठ तो नहीं मालूम होती, ऐसे ही मोहके स्वप्नमें जो कुछ हम परख रहे हैं, जान रहे हैं यह झूठ नहीं मालूम देता। लेकिन जब हमारी मोहकी नींद खुल जायेगी, ज्ञान जग जायेगा तब समझमें आयेगा— ओह! कहां है मेरा यहां कुछ? अरे मैं तो अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे चैतन्य शक्तिरूप हू, सबसे न्यारा हू—जहां यह दृष्टि जगी कि उसका सारा क्लेश मिट गया। कितना विचित्र क्लेश है संसारमें? क्लेश है भी और नहीं भी है। है तो बड़ा विकट पहाड़सा लगता है, और न समझे तो क्लेश तो कहीं नहीं है। अभी अपनी ही जिन्दगीमें घटनाएँ देखो जो रोज आती हैं, कल्पनाएँ बढ़ा बढ़ाकर दुःख कर डालते हैं। हम आपको तो कोई क्लेश नहीं है। लाखों आदमियोंसे हम आपकी स्थिति अच्छी है और परमार्थ दृष्टिसे तो मेरे आत्मामें कुछ अनिष्ट गुजर ही नहीं रहा है। कहां क्लेश है? कुछ क्लेश न लगेगा। शान्तिके लिए अथक प्रयत्न तो किए जा रहे हैं, पर एक शुद्ध स्वाधीन दृष्टि बनाने रूप प्रयत्न नहीं किया जा रहा है। जो वास्तविक काम है उसकी ओर तो दृष्टि नहीं है, और जो काल्पनिक हैं उनकी ओर बेसुध होकर लग रहे हैं। धन बढ़ रहा है तो उसकी खुशी का क्लेश भोगा जा रहा है। खुशीमें क्या क्लेश नहीं होता?

सांसारिक हर्षका क्लेश— एक साहब थे अंगरेज। उसकी आदत लाटरी लगानेकी थी। १० रु० लगाया तो १०, २० हजार, लाख दो लाख का इनाम मिलता था, पर उसको कभी इनाम नहीं मिला। सैकड़ों बार उस ने लाटरी लगायी। एक बार उसने सोचा कि हमारा जो यह चपरासी है इसके नाम पर लगा दें। सो १० रु० उसके नामसे लगा दिये। संयोगकी बात कि उसके नामसे दो लाख रुपये निकल आये। साहब सोचता है कि इसको यदि ऐसे ही मैं कह दूँ कि तुझे ये दो लाख रुपये मिले हैं तो वह तो हर्षके मारे फूला न समायेगा, मर जायेगा, बच नहीं सकता। हर्षकी ऐसी चोट होती है। तब साहबने क्या किया कि पहिले तो चपरासीको बेंतोंसे

मार कर दुःख दिया। वह कराहने लगा। जब कष्टसे हो गया तो उस ही बीचमें कहा कि तेरे नामसे दो लाख रुपये आये है लाटरीमे, सो तू इन्हें संभाल। तो ऐसे दुःखके बीच कुछ सुखकी बात सुननेमें आये तो उसकी समझ रह सकती ना। बादमें वह चपरासी बोला— हजूर हम क्या करेंगे? कहां लगायेंगे? हममे इतनी बुद्धि ही नहीं है। उस अंगरेजने कोई बड़ा काम छेड़ दिया और उसीमे नौकरी बजाने लगा, मैनेजर हो गया।

हर्षके अतिरेकमे पीड़ा— हर्षका भी बड़ा क्लेश होता है। अभी किसी बात पर कुछ तेज हँसी आ जाय आध मौन मिनट तकके लिए तो पेट ऐसा फूल जाता है कि श्वास लेनेको भी गुञ्जाइश नहीं रहती है तो वह हँसने वाला मारकर कहता है कि अब मत हसावो। मुझे तो हसीमें बड़ा क्लेश हो रहा है। तो यह जो पाये हुए समागमोंमे हसी खुशी मानी जा रही है, उसका उससे कई गुणा दुःख भोगना पडेगा। हस लो जितना हस सको। पर इसकी एवजमे कई गुणा कष्ट आयेगा। कष्टसे बचना हो तो वर्तमान समागममे भी हर्षका अतिरेक मत करो। जितने भी क्लेश हैं वे सब क्लेश इस शरीरके सम्बन्धसे हो रहे हैं। नरकगतिके क्लेश तो दूर ही रहे। उनका तो स्मरण भी हो तो शस्त्राघातकी तरह इस समय भी बडे क्लेशका कारण बनेगा। यह उत्तम मनुष्य-पर्याय पायी है, इस मनुष्यपर्यायके ही क्लेश देख लो। इस मनुष्य-पर्यायको ग्रहण करते हुए शुरुवातमे ही, गर्भके समयमें ही कैसे-कैसे दुःख हुए हैं? उसका कुछ चिन्तन तो करो।

मरणक्लेशमे जन्मक्लेशका भय— कवि कहता है कि हम तो ऐसा मानते हैं कि जो तू मरणसे डर रहा है, सो मरण भये पीछे कोई नवीन जन्म धारण करना पडेगा। सो जन्मविषे जो तूने क्लेश पाया है, कुछ ख्याल है तिसके भयसे तेरे मरणका भय पाया जा रहा है। तू मरणसे इसलिए डर रहा है कि मैं मरूँगा तो फिर जन्म पाऊँगा, और जन्मके समयमे तो मरणसे भी कई गुणा अधिक क्लेश हैं। सो मालूम होता है कि जन्मके क्लेशोंके मारे तू मरणसे डर रहा है। यह न जान कि क्लेश मरणमें ही होता है। मरणसे भी अधिक क्लेश जन्ममें हुआ करते हैं। मरणसे इस लिए डर रहा है यह कि मरे तो अब जन्मके दुःख भोगने पडेंगे। सो वह मरणका भय नहीं है, जन्मका भय है। जन्ममें जो महान् कष्ट होता है उसे नहीं सह सकता यह जीव।

संकटविनाशका प्रयोग— भैया! अब ऐसा उद्यम करो जिससे जन्म का दुःख ही न हो। यह बात अपने आपके अन्तरङ्गमें जितनी दृढ भावना यह बना ले कि मै शरीरसे रहित केवल ज्ञानानन्दस्वरूप एक सत् हू

परिजनसे, वैभवसे, शरीरसे मोह न रहे, अज्ञान न रहे— ऐसा मैं हूं। यह मेरा है, यह मेरा हितरूप है, यह अज्ञान न रहे और जैसा यह मैं आत्मतत्त्व हूं—ऐसा ही अपने आपको मानूं तो मेरे ये संकट छूट सकते हैं। शरीरको यह मैं हूं—ऐसा मानते रहेंगे तो शरीर मिलते ही रहेंगे। आखिर यह भी प्रभु तो है ना, भगवान् है, समर्थ है, अनन्तशाली है, शरीरको ही मानते रहेंगे कि यह मैं हूं तो इसे शरीर मिलते रहेंगे। इस भगवान आत्माको जो प्रिय है वह इसके लिए सदैव हाजिर है। संसार प्रिय है, विषय प्रिय हैं तो ये सब बराबर मिलते रहेंगे। आखिर है तो ऐश्वर्यशाली ना! कैसी इसकी विचित्र लीला है कि यह पेड़ोंमें जन्म लेगा तो शाखा, डाली, कोमल पत्ते, तने और नसें आदि सब रूपोंमें वह आत्मा कैसे फैल जाता है—ऐसी भी यह लीला किया करता है, जब जिस शरीरमें पहुंचता है, तब उस शरीर रूप विस्तृत रहनेकी लीला करता है। शरीरमें यों लीला कर रहा है। चेत जा, अपने आपके स्वरूपको संभाल सके तो यह अनन्तज्ञानकी लीला करने लगेगा। जन्म और मरण आदिके जितने भी क्लेश हैं, वे सब इस शरीरके सम्बन्धसे हैं। अहर्निश ऐसी भावना बनाओ कि मैं सबसे न्यारा केवल ज्ञानानन्दस्वरूप एक आत्मा हूं। इस ज्ञानभावनाके बलसे ही ये समस्त संकट दूर होंगे।

> अजाकृपाणीयमनुष्ठितं त्वया,
> विकल्पमुग्धेन भवादितः पुरा।
> यदत्र किञ्चित्सुखरूपमाप्यते,
> तदार्य विद्ध्यन्धकवर्तकीयकम् ॥१००॥

स्वयके द्वारा स्वयके घातकी साधना— इस अज्ञानी जीवने अनादिकालसे जो कुछ भी किया, वह अपने घातके लिए किया। जैसे कोई कषायी किसी बकरीको घात करनेके लिए, लिये जा रहा हो, बड़ी धूप हो, गरमीमें व्याकुलता आ गई। गरमीको मिटानेके लिए एक पेड़के नीचे छायामें वह बकरीको लेकर ठहर गया। वहां उस बकरीने अपने खुरोंसे जमीनको बहुत खरोंचा। उस खरोंचनेसे एक छुरी जमीनमेंसे निकल आयी। तो कषायीने अचानक अवसर पाकर उसी छुरीसे उस बकरीका घात कर दिया, उसके खूनसे अपनी प्यास बुझानेके लिए। तो जैसे बकरीने अपने आप अपने ही खुरोंसे ऐसी चीज प्रकट कर दी कि स्वयका घात कर लिया—ऐसे ही यह संसारी प्राणी जिस कार्यको करके आत्माका घात होता है, उस कार्यको अपने आप ही कर डालता है।

विकारसे विकासका घात— इस जीवका जो अनन्त विकास है, वह

विकास विषयकषायोंके परिणामसे तिरोहित हो गया है। एक आत्मामें भी विकास और विषयकषाय दोनोंका विरोध है। विषयकषायोंके परिणामोंके कारण इस जीवके ज्ञान, दर्शन, शक्ति और सुख आदिका विकास रुक गया है। क्या हेय है? क्या उपादेय है? इसका इस अज्ञानी जीवको विचार ही नहीं है। निमित्त तो कर्मोदय है, पर यह अपने आपकी इस स्वच्छन्दतासे जिसमें इसने अपना मौज माना, उस कार्यको वह शीघ्र कर डालता है। दुख ही दुखका काम किया इस जीवने, फिर भी जो कुछ थोड़ासा वैषयिक सुख मिला है, उसका कोई पक्ष आ जाए तो यह कितने बड़े आश्चर्यकी बात है? इसी तरह दुख दुखके कार्य करता हुआ अज्ञानी ससारी प्राणी थोडेसे विषय सुख पा गया, तो क्या हुआ? मिलनेकी कोई विधि तो न थी, पर अचानक सुखसमागम हो गया।

जैसे हजारों अन्धे कहीं पर थे तो उनमेंसे किसी अन्धेके हाथमें बटेर आ गई। उससे हजारों गुणा बाकी सारे ही अन्धे तो बटेर नहीं पाते हैं— ऐसे ही यह निरख लो कि हम आप जिनको जो कुछ थोड़ा बहुत सासारिक सुख मिला हुआ है। संसारके समस्त जीवोंसे हम लोग कितने हैं? क्या सख्या है? अनन्त तो निगोदियाके जीव वेहोश पडे हुए हैं और अनगिन्ते पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति जीव पड़े हुए हैं। मनुष्योंकी क्या सख्या है? सज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंकी कितनी सी सख्या है? समस्त अज्ञानी प्राणियोंके यह अनन्तवें भाग प्रमाण है। इसी प्रकार इन सब अन्ध जीवों और मनुष्योंके हाथमें बटेर पक्षी आ गया तो अत्यन्त ही आश्चर्यकी और अनोखी बात है।

आत्मअसावधानी— इस अज्ञानी जीव पर अहर्निश यह भ्रम का ही अंधेरा छाया हुआ है। यह अपनी उन्नतिके लिए कुछ नहीं कर पाता। कभी कुछ प्रेम भी करता है किसी बातसे ऊबकर कल्याण करनेके लिए तो भी इसे वह विशुद्ध पद प्राप्त नहीं हो सकता। जिस पदसे यह आत्मीय साम्राज्य प्राप्त होना है। हे आत्मन्! तुझे कौन तारेगा? कौन सुखी करेगा? तेरी खबर लेने वाला केवल तू ही है। अपने आपके मनको संभाल, वचनोंको संभाल, शरीरको संभाल। तेरी ही संभालसे तो तुझे आत्मीय आनन्द प्राप्त होगा। व्यर्थके मोह और रागद्वेषके जालोंसे तुझे लाभ कुछ न होगा। किसी क्षण सबसे निराले ज्ञानानन्दघन निजअंतस्तत्त्वका अनुभव तो कर। सारे सारे वागजाल और सबीके सभी कल्पनाजाल—ये सब क्षणमात्रमें ही नष्ट होंगे।

जीवके वैरी— इस जीवके वैरी भाव छः हैं— प्रथम तो कामभाव

है। किसी परके शरीरके प्रति विकारयुक्त कल्पनाए जगाकर एक कामवासना का जाल गूंथना—यह इस जीवका एक प्रधान वैरी है। जैसे कोई कहार मछलीको जालमें डालकर मछली पकड़ कर बाहर फेंक देता है। सूखे स्थान में तो वह मछली तड़फ तड़फकर सक्लेशपूर्वक मरण कर जाती है। ऐसे ही यह काम विषयक विकल्प इस जीवको जैनशासनके समुद्रों से निकाल-कर बाहर तृष्णाके रेतीले स्थानमें इस जीवको डाल देता है। मछलीका जीवन पानी था। उस पानीसे अलग होकर मछली अपने प्राणोंको गवा देती है—ऐसे ही यह ससारी अज्ञानी प्राणी जैनशासन ज्ञानसे अलग होकर अपने ही मन और कल्पनाके अनुकूल कुछसे कुछ कल्पनाजाल बनाकर इस जैनशासनसे अलग अलग होकर के तड़फता रहता है और दुखी होता रहता है।

मोह, क्रोध, मान, माया और लोभ—इन पाच वैरियोंके वश होकर भी यह जीव सक्लिष्ट रहता है। सबका मूलजनक वैरी मोह है। वस्तुकी स्वतन्त्रता ज्ञानमें न रहकर एक दूसरेका स्वामी मानना तो मोह है। इष्टकी अप्राप्ति व अनिष्टकी प्राप्तिमें रोष परिणाम रहना क्रोध है। पर्यायमें आत्म-त्वके भाव होनेके कारण इस कल्पित निजकी अन्य जीवोंसे श्रेष्ठता चाहना मान है। कल्पित इष्टप्राप्तिके आशयसे मन, वचन और कायकी कूट प्रवृत्ति करना माया है। कल्पित इष्टकी तृष्णा रखना लोभ है। इन सब वैरियोंके संकट शरीरके कारण हैं। इस शरीरसे विविक्त अपनी प्रतीति करनेसे सर्व सकट समाप्त हो सकेंगे।

पराधीनतामें सुखका अभाव—भैया! यह प्राणी किस किससे आशा रख रहा है अपने हृदयमें? बन्धुजन और इष्टजन तथा स्त्री पुत्र आदिक अनेक पदार्थोंमें आत्मीयताकी कल्पना कर रहा है कि यह मेरा है, पर इस का होता कोई नहीं है। हैरान होता है यह देखकर कि जो मैं सोच रहा हू, जो मैं करना चाहता हू—ऐसा परपदार्थमें नहीं होता है। पराधीन विषयोंसे सुख कहा मिले? दुखी हो करके स्वच्छन्दतासे अपने विषयकषायोंमें प्रवृत्ति कर रहा है। कदाचित् सासारिक सुख भी मिल रहे हैं, पर उन सासारिक सुखोंको यों जानो जैसे कि अंधेके हाथमें कोई उड़ता हुआ पक्षी आ जाये। यह जीव अपने आपके सतोष और सुखके लिए क्या करता है? इसे अगले छंदमें गुणभद्र आचार्य कह रहे हैं।

हा कष्टमिष्टवनिताभिरकाण्डमेव,
चण्डो विखण्डयति पण्डितमानिनोपि।
पश्यादभुत तदपि धीरतया सहन्ते,

दग्धुं तपोग्निभिरमुं न समुपलभन्ते ॥१०१॥

आत्मरक्षाका अविवेक— हाय ! बड़े कष्टकी बात है कि जो आपको पंडित ज्ञानी मानता है ऐसे बड़े जनोंको भी यह प्रचंड काम वशीभूत कर देता है, ज्ञानका खण्ड-खण्ड करके महान् दुःख उत्पन्न करा देता है। ये कषायोंके परिणाम, ये कामवासनाके परिणाम इस ज्ञानके टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं। अज्ञान ही समाया रहता है। ज्ञानका वहां कोई काम ही नहीं है। यह आश्चर्य तो देखो कि खोटे परिणामोंके कारण जो इस ज्ञानभावका खण्ड-खण्ड हो रहा है, उसे धीर-वीर बनकर सह रहा है। विषय-कषायोंके कतूहलोंको उत्पन्न होने वाले क्लेशोंको यह मनुष्य सहता हुआ अपने को बता रहा है। हो तो रहा है खण्ड-खण्ड, हो तो रही है खुदकी बरबादी धीर वीर और उस ही बरबादीमें अपनेको धीर वीर बना रहा है। अरे इस कामविकार को तपरूप अग्निमें जलानेका उत्साह क्यों नहीं करता है ?

कामविजयके लिये तपश्चरणादिकका आग्रह— इस देहको जितना ही आराममें रक्खो वह उतने ही अनर्थ व्यर्थके विकारोंको बढ़ातार हता है। इस देहकी तपस्यामें झोक दिया जाय और नियत समय पर खाना, नियत खाना, और और भी जो अनेक तपश्चरण हैं, सर्दी गर्मी आदिके उन सबको सह लेना। अपने आपके आत्मज्ञानको यह सावधान बनाये रहे तो इसे कहीं क्लेश न होगा। हाय, देखो इष्ट जो स्त्री आदिक हैं उनका निमित्त यह काम इस जीवको खण्डित कर रहा है और अपने आपको बरबाद करता हुआ भी खेद नहीं मानता। इस कामने तीन लोकके प्राणियों पर आतंक फैलाया है। स्वर्गोंमें देवता लोग नवग्रैवेयक से पहिले सोलहों स्वर्गों पर्यन्त वैक्रियिक शरीरधारी देवता भी इस कामसे बच नहीं सके। कोई मनुष्योंकी तरह कामसेवन करते हैं, कोई देव देवियोंके शरीरका स्पर्श करके संतोष मानते हैं, कोई देव शब्द ही सुनकर अपनी कामव्यथा दूर कर लेते हैं, कोई रूप देखकर, कोई मनसे ही विचार करके इस कामकी विपत्तिकी चिकित्सा करते हैं। लेकिन पड़ते हैं वे भी, किसी भी रूपमें पड़ें। इस कामाग्नि ज्वाला में भी वे भस्म होते जा रहे हैं, ऐसा तो आतंक छाया है, किन्तु यह जीव अपनेको ज्ञानी मानता है। जो ज्ञानी लोकके द्वारा माने जा रहे हैं, उन्होंने इस कामविषयको छोड़ा है। यह कामविषय तो दुःख ही उत्पन्न कराता है।

महान् अविवेक— देखो कोई अपने को बड़ा बुद्धिमान् मानता हो और कर क्या रहा हो, कामबाणसे छिद रहा हो, दूसरेके कामबाणोंको साहस करके सह रहा हो और जो बाण चलाने वाला विकार है उसको मित्र

मानकर उसके विनाशका उपाय नहीं कर रहा हो, बल्कि उनको पुष्ट कर रहा हो, उसे और इनाम दे रहा है, यह बडे आश्चर्यकी बात है। जो अपना घात करे उसको ही मित्र माने और उसका पोषण करे, यही हाल हो रहा है संसारी जीवोंका। परिजन, मित्रजन, रागद्वेष मोहकी ये सारी बातें इस जीवका विघात कर रही हैं और यह जीव उन ही प्रसंगोंको मित्रवत अपना रहा है। आशयमें उन्हें मित्र मान रहा है। आशयमें मित्र न माने और किसी कारण उन्हें पुष्ट करे तो वह बात अज्ञानसे अलग है।

नसीहत— एक कथानक है कि एक सेठ साहबको हजामत एक नाई बना रहा था। नाई ने हजामत बनाते हुएमें एक दो जगह छुरा मार दिया, खून निकल आया। सेठ जी ने बादमें उसे २ रु० इनाम दिया। नाई बडा खुश हुआ। उसने सोचा कि यह तो बड़ी अच्छी तरकीब है। जितनी जगह छुरा मारो, उतने रुपये इनाम के मिलते हैं। एक बाबू साहब की भी हजामत बनाने पहुचा। सोचा कि ये तो बड़े पुरुष हैं, बड़े अच्छे ढगसे रहते हैं। इनसे तो ज्यादा इनाम मिलेगा। सो हजामत बनाते हुए मे उसने दो तीन जगह छुरा मार दिया तो बाबू साहबने और उनके नौकरोंने जूतोंसे अच्छी मरम्मत कर दी। वह सोचता है कि मेरा हिसाब कहा बिगड़ गया? सेटको दो छुरे मार दिये तो २ रुपये मिले और ये तो बडे पुरुष हैं, ये तो रुपयोंके एवज में मार रहे हैं। वह एक बुद्धिमानी थी। उस सेठने नाई को मित्र मानकर रुपये नहीं दिये थे, किन्तु सजा दिलाने के लिए रुपये दिये थे। भीतर से मित्र तो न मानों। यह जीव तो इन्हें भीतरसे मित्र मानता है। खूब विचार लीजिए।

आत्मानुष्ठानमें ही उद्धार— यह जीव कुछ दिनोंको जीवित है। यह मरण करके कहा जायेगा? इसका फिर यहाके लोगोंसे कुछ परिचय भी रहेगा क्या? अनेक भव व्यतीत हो गए। वहा के परिवार जनोंका कुछ भी तो परिचय नही है। यहां का कुछ भी परिचय न मिलेगा। तो ऐसे अभी से ही तू देख अपने आपको कि जो मिला हुआ भी है, इससे भी मेरा कोई परिचय नहीं है। सबको अपरिचित देखो, स्नेह न बढ़ावो, परिचय न बढावो मोह मत बढावो, सबको न्यारा जानकर सबसे अलग हटकर अपने आपमें अपने ज्ञानमात्र स्वरूपका अनुभव करो। अपने आपमें पैठे बिना उद्धारका मार्ग न मिल सकेगा। बाह्यदृष्टिमें तो केवल अशान्ति ही अशान्ति रहेगी।

निजविश्रामके बिना विडम्बनाओंका चक्र— कोई पुरुष अपने घर को न जानकर, अपने घरमें प्रवेश न करके पराये घरमें प्रवेश करे और हा अधिकार जमाये तो उसका फल लुटना और पिटना ही उसे मिलेगा।

अपना घर छोड़कर पराये घर पर कोई अधिकार जमाये तो वह केवल क्लेशका ही कारण है। हमारा वास्तविक घर है, जहां ज्ञान और आनन्द-स्वरूप समाया हुआ है—ऐसा य मेरा आत्मप्रदेश है। उस अपने घरको छोड़कर परवस्तुवोंकी आशा करना, यहीं पर घरमें वास करना है। जैसे कोई वैरी बाणोंसे छेद रहा है और उसे भूलसे मित्र मानकर उसका पोषण किया जाए तो जैसे लोकमें वह मूढ कहलाता है—ऐसे ही कोई अपनेको ज्ञानीरूप मानता है और ये कामविकारभाव स्त्रीरूप बाणों इसे छेदे, अथवा परशरीर बाणों इसे छेदें और उन्हें यह मित्र मानें, तो उसकी दशाएं उसी प्रकार हैं।

जिसका ऊपर दृष्टान्त दिया गया है, वह पीड़ा सहता है और काम को हितरूप जानकर वहीं रमण करता है। अरे! तू तपरूप अग्निसे इसी कामको भस्म कर देनेका उपाय क्यों नहीं करता, क्यों अनेक सामग्रीको संचित कर इस कामकी पुष्टताको चाहता है?

कामविजयसे लोकविजय— एक बात बड़ी प्रसिद्ध है कि शम्भुने कामदेवको जलाकर उसकी राखको अपने शरीरमें लपेटा और दुनियामें अपनी वीरताका परिचय कराया। एक स्तवनमें कवि कहता है कि वाह री विचित्रता! इस कामदेवको जलाया तो जितेन्द्रियने। उससे कामदेव भस्म हो गया तो उसकी राखको लपेटकर कोई अपनेको कामविजयी ही प्रसिद्ध करना चाहता है। शरीरको सुकुमार मत बनाओ। शरीरके रुचिया और आरामदेह मत बनो। इस शरीरको कष्टमय होने दो। तुम उपकार और परके काम करो। जो अपने शरीरको आरामसे रक्खेगा, अपने शरीरसे मोह करेगा, उसमें विकारभाव तीव्रतासे आयेंगे और अपने ही इन सब विकारपरिणामोंसे अपने आपको ससारमें रुलाएगा। जन्म और मरणकी परम्परा बढ़ायेगा। तुझे यह विनश्वर शरीर मिला है। यह तो किसी दिन भस्म हो ही जाएगा।

अरे भैया! ऐसा काम करलो ना कि इस शरीरको तप और सयम में लगाकर तू विकारभावोंको भस्म कर डाल और अपने शुद्धज्ञानानन्दस्व-रूपका निर्विकल्प होकर अनुभव कर। अपना काम और अपने परिणाम संभाल लेगा तो तुझे अलौकिक सुख प्राप्त होगा। यों इस छन्दमें आचार्य-देव अपने आपके स्वरूपमें मग्न होनेका उपदेश कर रहे हैं।

अर्थिभ्यस्तृणवद्विचिन्त्य विषयान् कश्चिच्छ्रियं दत्तवान्,
पापां तामवितर्पिणीं विगणयन्नादात् परस्त्यक्तवान्।
प्रागेवाकुशलं विमृश्य सुभगोऽप्यन्यो न पर्यग्रहीत्—
देते ते विदितोत्तरोत्तरवराः सर्वोत्तमास्त्यागिनः ॥१०२॥

उत्तरोत्तर त्याग— जिसके भेदविज्ञान निर्मल प्रकट हुआ है और इस भेदविज्ञानके बलसे परद्रव्योंकी उपेक्षा करके जिसे निजअन्तस्तत्वकी चाह लगी है, वह पुरुष इन विषयकषायोंमें बधकर नहीं रह सकता है। फल यह होता है कि वह सर्वपदार्थोंका त्यागी हो जाया करता है। जो जन त्यागव्रत लेते हैं, उनके तीन प्रकार हैं—कोई अपनी सम्पदाको तृणवत् विचार कर और साथ ही कुछ कषायके अ श होनेसे याचकजनोंको देकर, कुटुम्बी और वहिन आदिक जिसको जो कुछ देना हुआ देकर, फिर उन विषयोंके त्यागी हो जाते हैं, लक्ष्मीका त्याग कर देते हैं। कोई जन इतने विरक्त होते हैं और कुछ ऐसे विरक्त होते हैं कि इस लक्ष्मीको पापस्वरूप और तृप्तिकी न करनहारी समझ कर उसके बिनयोग की भी कल्पना न करके यों ही छोड़कर चल देते हैं। यह उनसे भी विशिष्ट कक्षके त्यागी हैं। कोई पुरुष ऐसे होते हैं कि पहिले से ही इस लक्ष्मीको कुशलरूप न जानकर पहिलेसे ही त्याग देते हैं, भोगते भी नहीं हैं। यह उनसे भी उत्कृष्ट त्यागी हैं।

उत्तरोत्तर विशिष्ट त्यागका एक उदाहरण— उदाहरणके लिए एक घटना लो। किसी नगरमे मदिरमे तीन पुरुष मिलकर व्रत नियम स्वाध्याय किया करते थे। जिनमें एक बड़ी उमरका था, दूसरा जवान था और तीसरा १८, २० वर्षका बालक था। स्वाध्यायका उन तीनोंके नियम था, धर्म की रुचि थी। एक दिन उन तीनोंमें यह बात तय हुई कि अपनेमें से जो विरक्त हो जाये, वह बाकी दो को भी सम्बोधे। तो उस वृद्धपुरुषके मनमें आया कि उमर बहुत गुजर गयी, जो कुछ मनमें था वे कर्तव्य भी कर लिए, पर इस जगत्में सारभूत बात कुछ भी नहीं मिली। इस जगत्से तो विरक्त होना ही कल्याणकारी है। उसे सब कुछ छोड़नेका मनमें आया। तो उसने दो तीन माहमें सारी सम्पदाका हिसाब किताब बनाकर, जिसको जितना बँटवारेमें मिला सब कुछ दे दिया, सब कुछ छोड़कर घरसे चल दिया। रास्ते में उस जवानकी दुकान पड़ती थी, जो स्वाध्यायमें उसका साथी था। उस जवान साथीसे बोला कि भाई ! हम तो विरक्त हो गए हैं और जा रहे हैं, किसी धर्मसाधनाके स्थान पर। तो वह जवान बोला कि हम भी तुम्हारे साथ चल रहे हैं। दुकानसे उठा और साथ चल दिया। तो वह वृद्ध पुरुष कहता है कि तुम ऐसे क्यों चले जा रहे हो ? लड़के को बुलवावो, दुकान संभलवा दो, दुकानकी चाबी सौंप दो तब चलो। तो जवान बोला कि जिस चीजको छोड़ना है, उसे जब छोड़ ही दिया तो फिर उसकी क्या व्यवस्था बनानी ? जो लेना चाहे ले, जो लूटना चाहे लूटे। जिस वस्तुका हमने ममत्व त्याग दिया, उस वस्तुके बारे में अब क्या कल्पनाएँ जगाना ? वह यों

ही खुली दुकान छोड़कर उस वृद्ध पुरुषके साथ चल पड़ा। अब इन दोनों ने रास्तेमें किसी मैदानमें उस बालकको खेलते हुए देखा। वे दोनों कहते हैं कि हम दोनों विरक्त होकर जा रहे हैं। तो वह बालक बोला कि हम भी साथ ही चलते हैं। गेंद बल्ला वहीं छोड़कर उन दोनोंके साथ चल पड़ा। वे दोनों समझाते हैं कि अभी तुम्हारे विरक्त होनेके दिन नहीं हैं, तुम्हारी सगाई हुई है, विवाह कर लो, घर रहो, कुछ सांसारिक आनन्द लूटो, बादमें विरक्त होना। तो वह बालक कहता है कि जिस चीज को हम आगे छोडेंगे उसको अभी क्यों ग्रहण करें? जिस कीचड़को हमें आगे धोना पडेगा, उसे हम पहिले से ही न लगायें तो यह कितनी उत्तम बात होगी? वह बालक खेल छोड़कर उन दोनोंके साथ चल पड़ा। अब जरा विचारो तो सही कि उन तीनोंमें उत्तरोत्तर कौन भला था? उस वृद्धसे भला तो जवान निकला जिसने कुछ व्यवस्था बनाने की भी नहीं सोची। जिसे त्याग दिया उसका अब क्या विकल्प करना? वह चल दिया। उससे भी उत्कृष्ट निकला वह किशोर बालक जो यह सोचता है कि जिस चीजको भोगकर छोड़ना ही है, उसको पहिले से ही क्या ग्रहण करना?

विषयत्यागकी अनिवार्यता— देखो, विषयोंके त्यागके बिना किसी का गुजारा नहीं चलता। जो विषयोंमें आसक्त हैं उनका भी विषयोंके त्याग बिना गुजारा नहीं चलता है। मान लो कोई खाता ही जाये, खाना छोडे नहीं तो उसका गुजारा चल जायेगा। नहीं चल सकता। यों ही सभी विषयों की बात है, सब विषयोंको छोडनेसे ही गुजारा चलता है। तो वे तीनों पुरुष उत्तरोत्तर विशिष्ट त्यागी हुए। यह तो हुई त्यागियोंकी उत्कृष्टता। अब जरा विषय कषायोंकी भी उत्कृष्टता देखो। कितना त्याग कषायोंमें होड़ मचाए हुए हैं।

अज्ञानमें विषयोंकी होड़— एक बार टोकरीमें मल लिए जाते हुए भंगिनको देखकर तीन पुरुष उसके पीछे लग गए। किसी सज्जन पुरुषने उसे अच्छी तौलिया देकर ढका दिया था ताकि किसीको परेशानी न हो। वह भंगिन कहती है—भाई, क्यों हमारे पीछे लगे हो? वे तीनों बोले कि हम देखना चाहते हैं कि तुम टोकरीमें कौनसी चीज लिए जा रही हो? इसमें तो कोई बढिया चीज होगी। वह भगिन कहती है—भाई, लौट जावो इसमें मल है, गंदी चीज है। इतनी बात सुनकर उनमें से एक वापिस लौट गया, दो अभी तक पीछे ही लगे रहे। भगिन कहती है—भाई! लौट जावो, क्यों पीछे लगे हो? तो वे कहते हैं कि हमें तो दिखा दो। जब सही-सही मालूम पड़ जायेगा, तब लौटेंगे। भगिनने उस टोकनेसे तौलिया

लक्ष्मीपुत्र होना और यान है। वैसे भी बताया है कि इस लक्ष्मीकी सवारी उल्लू है। जैसे अलङ्कारमें सबकी सवारियोंका निर्णय है— गणेशकी सवारी चूहा है, महादेवकी सवारी बैल है, ऐसे ही लक्ष्मीकी सवारी उल्लू है। स्त्री बोली—हे लक्ष्मीपुत्र! क्या हो गया? तुम क्यों उदासचित्त हो? "नारी पूछे सूमसे काहे बदन मलीन। क्या तेरो कुछ गिर गयो या काहूको दीन॥" क्यों उदास चित्त है, तेरा कुछ गिर गया है क्या? या तूने किसीको कुछ दिया है क्या? तू क्यों उदास है? तो सूम कहता है— "ना मेरो कुछ गिर गयो, ना काहूको दीन। देतन देखो औरको तासों बदन मलीन॥" जो अनुदार होता है वह दूसरोंको देते हुए भी नहीं देख सकता है।

भोगके त्यागमें ही उत्कृष्टता— जो पुरुष भोगकर भी त्यागे, वह भी उत्कृष्ट है। बिना भोग भोगे त्यागे वह भी उत्कृष्ट। जो पुरुष जब चेत जाये जब निर्विकार हो सके तब ही भला है। जो अबसे असंख्यात वर्ष पहिले सिद्ध भगवान हुए हैं। वे भी जगत्में अनन्तकाल भटककर हुए हैं। इस समय जो जीव आज दिख रहे हैं वे तो संसारमें भटक ही रहे हैं। जो जब चेत जाये, समझो उसका वही सवेरा और उसका उतनी जल्दी भला हो गया है। जिस-जिस वस्तुमें मोह किया जा रहा है, जो लोग मोह किए जा रहे हैं, वे स्वयं ही अपने आपको क्लेशके गड्ढेमें पटकते जा रहे हैं। यह मोहका अंधकार यह ज्ञानका अंधेरा इस जीवको शान्ति नहीं लाने दे सकता। खूब अपने आपके अन्तर्मर्ममें प्रवेश करके सोच लो, हम प्रभुकी भक्ति करें, पूजा करें और इस पौद्गलिक विभूतिसे ममता न हटे उसे ही अपना देवता मानते रहें तो हमारी भक्ति पूजन कहां विराजेगी? जब स्वपरवस्तुके प्रसंग में ज्ञानप्रकाश ही नहीं जग पा रहा है और परपदार्थोंमें यह मैं हूं, यह मेरा है, इस प्रकारका भाव किया जा रहा है तो उसे चैन मिलेगी कहासे? ज्ञान-प्रकाश पायें और इन जड़ पौद्गलिक विभावोंको विनश्वर, भिन्न जान लें, कुछ अपनी ममताको ढीली करें तो कल्याणका मार्ग मिलेगा अन्यथा यह पाया हुआ दुर्लभ मनुष्यजीवन बिल्कुल बेकार खोया।

मोहत्यागमें ही दुर्लभ समागमकी सफलता— भैया! यदि परपदार्थों के प्रति ममतामें ढिलाई नहीं की जा सकती है तो किस काम आया यह नरदेह, किस काम आया यह जैनशासनका एक वातावरण, किस काम आया यह प्रभुभजन? जब कि इसके चित्तमें परपदार्थोंसे उपेक्षा ही नहीं जग पाती है, परमें रले मिले ही चले जा रहे हैं, घुलमिल कर रहने की आदत बनी हुई है। ये जड़ वैभव सम्पदायें तो अपनी ओरसे कोई रागभरी वाणी नहीं बोलते हैं वहा तो यह कंजूस इस मोहका अपने ही आपकी

ओरसे एकाकी रहकर, एकाकी ही प्रयत्न कर रहा है, अपने आपको अंधेरेमें और क्लेश गर्तमें डालनेके लिए। भाई सब कुछ छूटेगा तो जरूर, अभीसे कुछ उदारचित्त बना लो, कुछ अपने जीवनमें इस वैभवसे युक्त रहनेकी आदत बनालो, अन्यथा मरण समयमें अत्यन्त क्लेश होगा और आगे जन्म लेकर वहां भी सारे जीवन भर अपनेको कष्टमें ही लगाना पड़े। इससे त्याग की आदत डालो, त्यागका भाव बनावो, मोहमें ढिलाई करो। इससे ही कल्याणका मार्ग मिलेगा।

विरज्य सम्पदः सन्तस्त्यजन्ति किमिहाद्भुतम्।
मावमीत् किं जुगुप्सावान् सुभुक्तमपि भोजनम् ॥१०३॥

सतोंका वैराग्यपूर्वक त्याग— ज्ञानी सतपुरुष बड़ी उत्कृष्ट भी पायी हुई सम्पदाको त्याग देते हैं, इसमें कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि उनको इस परमें, विपत्तिमें रुचि नहीं जगी और उसमें ग्लानि बनी रही। किसी भी परपदार्थ पर देते हुए उपयोगमें आत्माका हित नहीं है। अशोभनीय और अयोग्य काममें रुचि न होनेसे यह सम्पदा छूट ही जाती है। और देखो छूटेगी तो सारी सम्पदा। किसीके भी पास सदा न रहेगी। यह ही मरण करके चला जायेगा। फिर क्या है यहाका इसके लिए? लेकिन जो अपने जीवनमें ज्ञानके बलसे सम्पदाको छोड़ देते हैं और ज्ञानानन्दस्वरूप निज अतस्तत्त्वमें प्रवेश करके शान्त रहा करते हैं ये सत्पुरुष धन्य हैं। इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है कि ऐसे बड़े पुरुष भी अलौकिक राज्य और वैभव सम्पदाको भी त्याग देते हैं, जैसे ग्लानिसहित भोजन किया गया हो तो उसे वह पुरुष क्या उगल नहीं देता। कोई पुरुष ग्लानिसहित भोजन करे यह भोजन ठीक नहीं है, विषैला है या अन्य कुछ बात ध्यानमें रखकर ग्लानिसहित भोजन करे, रुचि न जगे तो उस भोजनका वमन कर देता है अथवा वह ऐसी औषधि खाता है जिससे वह किया हुआ भोजन उगल जाये वह अपने उदरमें रखना नहीं चाहता। इस ही प्रकार ग्लानिसहित इस वैभव सम्पदाको रखने वाला, भोगने वाला यह ज्ञानी पुरुष उस वैभव सम्पदा को त्याग ही देता है।

वैराग्यसे त्यागका निभाव— भैया! जब रागभाव रहता है तब त्याग करके दुःख मालूम होता है। इसी कारणसे सरागी पुरुष वहां आश्चर्य मानते हैं कि इसने वैभव कैसे त्याग दिया? जिसके विरागता उत्पन्न हुई, उसको त्याग करनेमें कुछ भी खेद नहीं होता, बल्कि उस परवस्तुके त्यागसे अपने आपकी ओर झुकाव अधिक बढ़ता है। उससे वह विशुद्ध शाश्वत निराकुल आनन्द ही चाहता है और कुछ नहीं चाहता है। पर इन रागद्वे

आनन्दकी झलक उसीको ही होती है जो परको पर जानकर परसे उपेक्षा करके निज आत्मस्वभावको शरण मानकर उसकी ओर ही झुके। कितनी स्पष्टसी बात है ? जरासे विवेकसे भी समझमें आ जाने वाली बात है कि यह सब कुछ भिन्न है, अहित है, कुछ सम्बन्ध भी नहीं है। भला बतलावो इस भींतकी ईंटोंसे आपका कुछ ताल्लुक है क्या, कोई सम्बन्ध है क्या, कोई सम्बन्ध है क्या, कोई रिश्तेदारी है क्या ? यों ही इस वैभवको भी सोचिये कि आपका कुछ लगता है क्या ? अरे लगता तो यह देह भी कुछ नहीं है। इसे भी त्यागकर जाना पड़ता है, फिर अन्य वैभवकी तो बात ही क्या है ?

आनन्दका आधार ज्ञान और वैराग्य— ज्ञान और वैराग्यमें जो आनन्द बसा है, आनन्द वही है। इसके अतिरिक्त तो सारे क्लेश ही क्लेश हैं। भ्रमसे मान लिया कि सुख है, परकी आधीनता स्वीकार करके नाना क्लेश ही क्लेश भोगे जाते हैं, तिस पर भी बुद्धि पर ऐसी धुन बनी रहती है कि उसे ही सर्वस्व और हितकारी माना जाता है। यथार्थ ज्ञान बना रहना इससे बढ़कर अन्य कुछ भी वैभव नहीं है। आत्माका शरण सहायक सम्यग्ज्ञान ही है, अन्य कुछ नहीं है। जब कभी यह मनुष्य इष्ट वियोग होने पर घबड़ाता है तो उसे इसका ज्ञान ही सहायक होता है। दूसरा कोई पुरुष सहायक नहीं होता। सम्बन्धीजन उसे बहुत समझाते हैं, छोटा हो, भतीजा हो उसे गोदमें लेकर समझाते हैं, सिर पर हाथ फेरकर, लेकिन उस की समझमें आये, तब ना वह दुःख छोड़े। उसके ही ज्ञान जगे और यह बात स्पष्ट समझमें आये कि मेरा तो कहीं कुछ था ही नहीं, न है, न होगा। मैं तो अपने स्वरूपसे परिपूर्ण सत् हूं। अपने ही स्वरूप मात्र हूं। मेरा तो मेरे स्वरूप पर ही अधिकार है, अपने स्वरूपके सिवाय अन्य किसी परजीव पर अन्य किसी परपदार्थपर मेरा रंच भी अधिकार नहीं है। यह बात जब समझमें आये तब दुःख मिटेगा। दूसरोंकी कोशिश से दुःख न मिटेगा। यों ही अन्य और क्लेश आ जायें, उन क्लेशोंमें भी इस आत्माका सम्यग्ज्ञान ही शरण है। ज्ञानमें अद्भुत बल है, इसी प्रकार वैराग्यमें भी अद्भुत बल है।

क्लेशका आधार परका अनुराग— जितने भी क्लेश हैं वे सब राग से उत्पन्न किए गए हैं। सिवाय रागपरिणामके और कुछ क्लेश है ही नहीं। रात दिनकी सब प्रवृत्तियोंमें इसका अंदाज कर लो, जब-जब भी इसे कोई क्लेश हो रहा होगा तब किसी न किसी परवस्तुके विषयमें राग करने से क्लेश होता होगा। सिवाय रागके और कोई कारण नहीं है कि मुझे दुःख हो जाय, और राग है व्यर्थका। जो अज्ञानसे अपने स्वरूपको न पहिचान

कर श्रद्धा ही ऐसी बना लेता है कि यह अमुक परवस्तु मेरी हितकारी है, मेरी है, बस उसे क्लेश होंगे। सारे क्लेशके साधनों को छानते जाइये, सभी के अज्ञानसे क्लेश हैं। भगवान्की भक्ति करने हम आते हैं, भगवान्की भक्तिका विशुद्ध एक यही प्रयोजन है कि हे प्रभु! मेरेमें राग परिणमन न रहे, यही मैं चाहता हू। मैं ससारके अन्य पदार्थोंको नहीं चाहता हू, क्योंकि उनके मिलने पर भी आत्माको शान्ति नहीं मिलती है, बल्कि अशान्ति बढ़ती जाती है। मेरे रागभाव न रहे, यही मै चाहता हू।

प्रभुस्तवनमें भक्तकी चाह— स्तवनमें कहते हैं ना, "आत्माके अहित विषय कषाय, इनमे मेरी परिणति न जाये।" आत्माका कल्याण करने वाले ये विषय और कषायके परिणाम हैं। इनमे मेरी प्रवृत्ति न हो, बस यही मै चाहता हू। इतनी स्वच्छ बुद्धि ज्ञानी पुरुषके हुआ करती है। अज्ञानीजन तो लडके मागेंगे प्रभुसे, वैभव चाहेंगे, मुकदमेकी विजय चाहेंगे, यश चाहेंगे और अनेक लौकिक कामनाएँ। किन्तु ज्ञानीपुरुष यही चाहते हैं कि मेरा जैसा शुद्ध ज्ञानस्वरूप है ऐसा ही मेरा स्वरूप रहो, अन्य कुछ कामनाएँ नहीं हैं। इतनी स्वच्छता सम्यग्ज्ञान बिना जग नहीं सकती। सम्यग्ज्ञान ही हम आपका वास्तविक शरण है।

अपूर्व मिलन— अपनी भक्ति अपने प्रभुज्ञानके निकट बसा करे, उस से और बढ़कर कोई मिलन नहीं है। खुद ही खुदसे मिल जाये यही अपूर्व मिलन है, बाकी तो किसी पदार्थसे हित बनाया, प्रेम किया, यह कोई अपूर्व मिलन नहीं है, वह क्लेशको ही देने वाला है। अपने अन्तरगमें ऐसा यत्न तो करलो। गुप्त ही गुप्त अपने आपमें ही बसकर स्वाधीन सुगम पुरुषार्थ किया जाना है, सारा संसार मिलकर भी मुझे सुखी करनेका यत्न करे तो भी नहीं कर सकता है और मैं ही केवल अपने आप आपके आपके बलसे ही अपने आपको सुखी होनेके लायक ज्ञानरूप प्रयत्न करूँ तो मै सुखी हो सकता हू। सुखके उपायमे दूसरी कोई बात है ही नहीं।

विशुद्धज्ञानमें विरागताका स्वागत— ये ज्ञानी वैरागी पुरुष विरक्त होकर इस सम्पदाको छोड़ देते हैं तो इसमें आश्चर्य कुछ नहीं है। हमारी बुद्धि जब तक वैराग्यकी ओर नहीं लगती है तब तक ये शान्तिके सब काम अटपटे मालूम होते है। अनन्त तीर्थंकरोंने क्या किया अन्तमें ? यही वैराग्य उन्होंने परिग्रहका परित्याग किया, पर हमारी समझमे यह बात ठीक न जँचे तो हम अपनेको प्रभुके भक्त कहनेके अधिकारी नहीं हैं। हमारी निरन्तर यह भावना रहे दर्शन करते हुए, सामाजिक पूजन आदि करते हुए अथवा घरमें भी बैठे हुए यह भावना जगे कि हे प्रभो ! मुझमें इस

भावका अपूर्वबल शीघ्र प्रकट हो कि रागद्वेषका मेरेमें निवास हो न हो। मैं शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूपको निरखता रहू, इस अन्त प्रयोगमें ही मोक्षमार्ग समाया हुआ है।

श्रियं त्यजन् जडः शोकं विस्मय सात्त्विकः सतां।
करोति तत्त्वविच्चित्रं न शोक न च विस्मयम् ॥१०४॥

लक्ष्मीके प्रति अज्ञानी और ज्ञानीकी प्रतिक्रिया-- जो मूर्ख पुरुष होते हैं, जो पराक्रमरहित होते हैं, जो विषयकषायोंको अपनानेके कारण कायर बने हुए हैं, ऐसे पुरुष तो इस लक्ष्मीको त्याग कर शोक करते हैं। ये पुरुष लक्ष्मीको त्यागते नहीं हैं, किन्तु जब लक्ष्मी छूट जाती है तब ये शोक करते हैं। ज्ञानी पुरुषको कितना स्पष्ट निर्णय है? पहली बात यह समायी हुई है कि मेरे आत्मस्वरूपके सिवाय बाकी अन्य सब कुछ नहीं है। यह सब पुद्गलोका ठाटबाट मेरा कुछ नहीं है। पहिले तो यही बात समायी हुई है। दूसरी बात यह है कि इस वैभवको मेरे हाथ पैर नहीं कमाते हैं, भाव उत्तम हो पुण्यका उदय हो तो ऐसी ही बुद्धि से श्रमकी ओर भाव जगता है कि जिस पुण्योदयसे यह सर्वसाम्राज्य वैभव अनायास ही थोडेसे प्रयत्नसे प्राप्त हो जाता है। जैसे छायाको पकड़ने जायें तो उस छायाको पकडनेमें हम सफल नहीं सकते। जैसे-जैसे हम छायाको पकड़ते जायेंगे वैसे ही वैसे छाया दूर होती जायेगी और जैसे जैसे छायासे विमुख होकर किसी उलटी ओर जायेंगे तो यह छाया पीछे पीछे चलेगी। अथवा इस बात से भी क्या मन बहलाना है? ज्ञानीपुरुषको तो यह सब कुछ असार और अहित जँचता है।

ज्ञानीका पराक्रम—जो सत्य पराक्रमके स्वामी हैं, जो अपना विक्रम अजमाया करते हैं वे पुरुष त्याग करें तो अपनेमें गौरवका अनुभव करते हैं। यह गौरव है, स्वाभिमान है और त्यागकी अन्त प्रसन्नता है, किन्तु इससे भी ऊपर ऐसा तत्त्वज्ञान होता है कि वह लक्ष्मीको त्याग करता हुआ न तो शोक करता है और न गर्व करता है, ये सब ज्ञानकी महिमा है। कोई पुरुष ज्ञानमें अपना कुछ वैभव पाकर अभिमान पुष्ट किया करता है और कोई पुरुष ज्यों ज्यों विशिष्ट श्रीमान् होता जाता है त्यों त्यों नम्र होता जाता है। जैसे जैसे फल विशेष लगते हैं पेड़में वैसे ही वैसे वह पेड नम्रीभूत होता जाता है। बड़े पुरुषका नम्र होना यह बड़प्पनकी निशानी है, तो जो तत्त्वज्ञानी जीव है वह इस वैभवको त्यागते हुए न शोक करेगा और न गर्व करेगा। लौकिक पराक्रमी पुरुष तो किसी कारणसे, अपने उत्साहसे धन आदिकका त्याग कर दे तो उसे गर्व होता है कि मैंने ऐसा कार्य किया।

उसके अन्तरंगमें यो अहंबुद्धि बनी रहती है, और जो पराक्रमरहित हैं, कायर हैं, विषयबाधासे बद्ध हैं और इसी कारण जिनके आत्मबल नहीं प्रकट हो पाता है। उन प्राणियोंके किसी कारणसे धन आदिकका बिछुडना हो तो उनके शोक उत्पन्न होता है। जो शुद्ध निश्चल ज्ञानकी भक्तिसे ज्ञान की उपासनामें लगे रहते हैं उनके भीतर ज्ञानके कारण अज्ञानका संकट सब दूर होता है और जो विषयोंसे बँधे हुए कायर हैं उनके सामने प्रकट और विशेष आ जाते हैं।

तत्त्वज्ञानीका ज्ञान व त्याग— अहो ! वे विलक्षण संतजन धन्य हैं जो अपने आपमें अपने आपके स्वभावका ध्यान करके अपनेको अनाकुल बना लेते हैं, और आश्चर्यकी बात है अथवा युक्त बात है कि जो तत्त्वज्ञानी पुरुष हैं उनके धन छूट जाये तो उनके न शोक उत्पन्न होता है और न गर्व उत्पन्न होता है। इस कारण जो तत्त्वज्ञानी पुरुष हैं, वे धन वैभवको परद्रव्य जानते हैं, और पर तो पर थे ही, उनका त्याग हो गया तो उससे ज्ञानी पुरुषको न शोक होता है, न गर्व होता है। दूर तो था ही, जरा और दूर हो गया। धन वैभव मेरे आत्मामें मिला हुआ नहीं है, दूर तो वह है ही पहिलेसे ही। अब क्षेत्रमें और दूर हो गया। कोई शोक नहीं होता है ज्ञानी पुरुषको और परमार्थसे त्यागना भी क्या ? अपने स्वरूपको जान जावो कि यह मैं हूं और इसके अतिरिक्त जो कुछ भी है वह सब पर है, इतना दृढ़तापूर्वक ज्ञान होनेका नाम है वस्तुका त्याग। कोई वस्तु आत्मामें चिपकी नहीं है, जो उसका त्याग किया जाये। बस इसे दृढतासे जान भर लो ऐसे ही, बस इसीका नाम है बाह्यवस्तुवोंका परित्याग।

ज्ञान और वैराग्यका शरण— सम्यग्ज्ञान ही हम आपको शरण है। अब अपनी-अपनी जीवनी देख लीजिए कि ज्ञानके अर्जनके लिए हम कितना तो शरीर लगाते हैं, कितना मन लगाते हैं और कितना उत्साह जगाते हैं, कैसी हठ मानते हैं ? इसका भी अन्तर देख लीजिए। धर्मके झुकावमें यह कुछ आगे भी ले जायेगा और जड़ वैभवके झुकावमें यह कुछ भी न पा सकेगा। अपने तन, मन, धन, वचन सब इस आत्महितमें, ज्ञानार्जनमें लगाना है। यह जीवन ज्ञानके अर्जनके लिए है, विषयोंके सेवनके लिए नहीं है। ऐसा दृढ़ निर्णय न रहे तो उसने धर्मको पाला ही क्या है ? पुण्यके अनुसार जितनी लक्ष्मी आये, आने दो। हम तो साहस करके उस ही में समस्त गुजारा कर लेंगे। इस जीवनको सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्-चारित्रकी आराधनामें लगावो। यह वैराग्यका और ज्ञानका मार्ग हम आप को शरण है। विषयकषायोंमें फसना, अनुरक्त होना यह केवल क्लेश ही

उपजानेका एकमात्र साधन है।

विमृश्योच्चैर्गर्भात्प्रभृति मृतिपर्यन्तमखिलम्,
मुधाप्येतत् क्लेशाशुचिभयनिकाराघबहुलम्।
बुधैस्त्याज्य त्यागाद्यदि भवति मुक्तिश्च जडधी,
स कस्त्यक्तु नाल खलजनसमायोगसदृशम्।।१०५।।

शरीरकी क्लेशकारणता— पूर्व छन्दमें यह बताया था कि जो मूर्ख लोग होते हैं वे लक्ष्मीके वियोगके समय शोक किया करते हैं और जो पराक्रमी पुरुष हैं, वे वैभवके त्यागमें गौरव अनुभव करते हैं और जो विशेष ज्ञानी तत्त्वज्ञ पुरुष हैं, वे न हर्ष करते हैं, न शोक न गौरव, किन्तु मात्र ज्ञाता द्रष्टा रहते हैं। वैभवके त्यागको उक्त छंदमें उपादेय बताया है। इस छंदमें शरीरके मोहको छुटानेका उपदेश है। यह शरीर गर्भसे लेकर मरण पर्यन्त क्लेशका ही कारण है। आज इस शकल सूरतमें हम आप बधे पडे हुए हैं तो दूसरोंकी शकल सूरत निरखकर यह जानकर कि ये ही जीव हैं, इनको देखकर सन्मान और अपमानकी बात मानना; सम्बन्ध, हित, अनिष्ट बातें मानना जानना है तो इस क्लेशका भी कारण यह शरीर है। क्या जीवके नाक आंख कान की शकल होती है? यह सब कर्मोदयकी रचना है। जीव तो इस देहमें भी अमूर्त केवल ज्ञान दर्शन मात्र है। इस शुद्ध जीवको निरख कर कोई बात नहीं की जा रही है।

व्यवहारी जीवसे व्यवहार— भैया! जो कोई बात करता है तो इस नाक आंख कानकी शकलको देखकर बात करता है। उस अमूर्त जीवपर किसकी दृष्टि है, और जगत्में बातों-चातोंका ही क्लेश है। किसी मनुष्यसे बात करना ही बन्धनका कारण है। कोई कुछ बोलेगा तो या तो वह राग भरा वचन होगा अथवा द्वेषभरा वचन होगा। रागयुक्त वचन बोलने में भी बन्धन है और द्वेषसे भरे वचन बोलनेमें भी संकट है। रही आवाजसे बोलने वाली चिडियोंको कौन पकड़ता है? तोता मैना आदिक ये पक्षी क्यों पकडे जाते हैं? वे पक्षियोंमें अच्छा बोलना जानते हैं। रागभरा कोई शब्द बोलने पर दूसरे जीवोंकी ओरसे भी रागभरा नम्रताभरा वचन मिलता है सुननेको, तब यह उस ओर और अधिक झुकता है और इस झुकावके फलमें जीवनमें एक ऐसा बन्धन बंध जाता है कि इसके परतंत्रता प्रकट हो जाती है, स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है। धन्य हैं वे पुरुष जो अपने में इतना साहस बनाये हैं कि वे किसी भी परजीवसे अनुरागसे स्नेह नहीं करते हैं, किन्तु यथार्थतत्त्वके ज्ञाता रहते हैं।

स्थावरोंके शरीरकी भी क्लेशकारणता— सब क्लेशोंका कारण यह

शरीर है। वनस्पतियोंमें भी देखो जंगलोंमें कैसे-कैसे फूल खिलते हैं, अपने आप खिर जाते हैं, उन्हें कोई उठाता भी नहीं है और गुलाबके फूल जो दिखनेमें भी सुहावने होते हैं और जिनमें सुगंध भी तेज होती है वे फूल तोड़ लिए जाते हैं। मशीनोंमें मसल दिये जाते हैं, इत्र निकाल लिया जाता है। देखो यहां भी जो रूपसे या गंधसे दुनियाको अपनी महिमा बता रहे हो। ऐसे फूल भी तोड़कर कुचल दिये जाते हैं। पत्थरोंमें जैसे पत्थर है तैसे ही लोहा है, सोना है, चांदी है, हीरा है, रत्न है, सब ही तो पृथ्वी हैं, पर यह देशी पत्थर अत्यन्त ऊबड़ खाबड़ कैसा उठा हुआ होता है, इसे कौन सताता है। संगमरमर पत्थर एक भी खाली नहीं रह पाता है। इन्हें तोड़ा जाता है, कूटा जाता है, छीला जाता है क्योंकि जरा रंगके सुहावने हैं। और स्पर्श भी चिकना कोमल है। ये हीरा रत्न किस तरह तोड़े जाते हैं, बड़ी दुर्गति की जाती है। सान पर चढ़ाकर उनकी राख निकाली जाती है, और इन पूर्वजोंके पत्थरोंको कोई नहीं तोड़ता है।

विलक्षण गोरखधन्धा— लोकमें यही तो गोरखधंधा है। कहते हैं कि पुण्यका उदय है। अरे पुण्यका उदय है तो दूसरोंसे सताया जानेके लिए है। विरला ही प्राणी बचता है दूसरोंके द्वारा सताये जाने से। पापके उदय भी दुःखके कारण हैं और पुण्यके उदय भी परमार्थसे दुःखके कारण हैं। अन्तर इतना भर है कि पुण्यके उदय वाले तो अपने को सुखी मानते हैं। पर हैं अन्तरंगसे वे भी दुःखी हैं। कभी कोई झगड़ा विवाद हो जाये तो इसका भी कारण यह शरीर है। कोई जीव जीवके स्वरूपको देखकर झगड़ा नहींमचाता, किन्तु इसही शरीरकी शकल सूरत को देखकर इसने मुझे यों कहा, उसकी यह प्रतिष्ठा भी नहीं रखता, बस इन विचारोंसे विवाद कलह हो जाता है। सच जानों अपने अपने शरीरको निरखकर छूकर यह निर्णय करो कि हमारे समस्त क्लेशोंका कारण यह शरीर है। शरीर न रहे बिलकुल मेरे पास तो उसकी क्या स्थिति होगी? मैं केवल कहलाऊँगा। केवल केवल सिद्धोंको बोलते हैं। जो केवल रह गये, सिर्फ आत्मा ही आत्मा रह गये उनका नाम सिद्ध है। वे अनन्त आनन्दमय हैं, सदाके लिए संकटोंसे छूट गए हैं। ऐसे सिद्ध होनेकी मनमें अभिलाषा रक्खो।

मोहका व्यर्थ आग्रह— यह परिवार, यह वैभव अनेक भवोंमें पाया है, इससे भी अधिक आज्ञाकारी विनयशील परिवार अनेक भवोंमें पाया है, पर सबको छोड़ना पड़ा। हिम्मत बनावो निर्मोह होने की, मोह तो कायरता है और भीतरमें निर्मोहताका भाव बनाना सो धीरता है। जो सत्य बात है उसको ही समझने में दृढ़ बने रहो, इतनी सी तो बात है। किसी झूठको

सत्य मानते हो तो उसमे कष्ट है। खूब देख लो, सोच लो कि सभी जीव अपनेसे न्यारे हैं या नहीं। खूब सोच लो, उनका तो विश्वास है। जो पहिले मिले हुए परिजन थे, वे आज घरमे नहीं हैं उनके प्रति तो ऐसी बात बैठ गयी कि वे मेरे न थे, जुदे जीव थे और जो जीव आज समागममें हैं, अपने पासमे हैं, उनके प्रति यदि अन्तरंगमें यह ज्ञान जग जाय कि ये भी अत्यन्त भिन्न हैं, मेरा स्वरूप मुझमे है, दूसरोका स्वरूप उनमें ही है, ये अपनी ही करनीके अनुसार किसी गतिसे इस गतिमे आये हैं और इस गतिसे अन्य गतिमे चले जायेंगे, मैं अपनी करनीके अनुसार किसी गतिसे आया हू और किसी गतिको जाऊगा, यहां तो सब जीवोंमे अपना-अपना स्वतत्र स्वतत्र रवैया है, ये भी जुदे हैं—ऐसी स्वतंत्रताकी समझ बन पायी तो धर्मपालन तब किया। और इतनी समझ न बने तो चाहे चादीके फूल चढाओ, चाहे खूब सजाकर द्रव्य चढाओ यदि भीतरमें यह अज्ञान नहीं मिट रहा तो शान्ति तो मिलेगी ही नहीं। यह बात अपनी अपनी निजकी है।

अन्त धर्मपालन— भैया! लोगोंसे ऐसा घरमे कहो कि तुम न्यारे हो, जुदे हो, हमारे कुछ नहीं हो, दुर्गतिकी खान हो—ऐसी झगडेकी बात नहीं कह रहे हैं, किन्तु अपने ही मनमें इस ज्ञानका घूँट उतार लें और बोझको अपने उपयोगसे हटा लें, अपने आपको अकिञ्चन् ज्ञानमात्र अनुभव करते रहें तो बड़ी शान्ति मिलेगी और भी देखो— कोई साधारणसा शारीरिक रोगी भी हो, रोगकी कोई वेदना भी हो तो बिल्कुल सच समझो। सबसे भिन्न अकिञ्चन् ज्ञानमात्र अपनेको अनुभवते रहनेसे वे रोग भी दूर हो जायेंगे। आत्मनिर्मलतामे बड़ा प्रताप है। ये औषधि और तन्त्रमन्त्र, ये काम न करें, किन्तु आत्माकी निर्मलता इस रोगको दूर करनेमें काम करती है। धर्मपालनमें सब लाभ ही लाभ है। हानिका तो नाम नहीं है, पर धर्मपालन नाम है मोहके न रहनेका, अपने आपको सबसे भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप निहारते रहनेका। यह धर्मपालन हो तो सारे सकट दूर होंगे। धर्मपालन कितना सुगम है, इसमें यह भी जरूरत नहीं कि नहाकर बैठें, तब तो धर्म मिलेगा या कुछ मुकुट ककड़ा कड़ा छाला पहिनकर बैठें, इन्द्र इन्द्राणीका रूप बनाकर बैठें तो धर्म मिलेगा। अरे! अपने अन्तरंगमें जरा स्वरूपका विचार बन गया, धर्म हो गया। उस धर्ममें अलौकिक प्रताप है, इससे स्वस्थ्य भी रहेगा और प्रसन्न भी रहेगा।

देहविविक्त अन्तस्तत्त्वके दर्शनकी महिमा— भैया! इस शरीरसे प्रीति न करें और प्रीति कब तक करते रहेंगे? शरीरकी अन्तिम गति क्या होगी? लोग बड़ी जल्दी इस शरीरसे निकलकर ठठरी पर कसकर जला ही

देंगे इस शरीरको। अपने आपके शरीरको देखकर बोलो कि यह किसी दिन बेरहमीसे जला दिया जायेगा। यह है इसकी अन्तिम गति। भला हो कि अभीसे इस शरीरसे अपनेको भिन्न मानते रहो, तो इसमें शान्ति होगी, धर्म मिलेगा, भविष्यकाल बड़ा सुखमय व्यतीत होगा। कभी ऐसी आशंका हो जाये कि लो अब तो मैं मरसा रहा हूं, कुछ जान सी ही नहीं रही, दिल भी कुछ काम नहीं करता। अरे यदि मर गये तो भी क्या नुक्सान है? यह मैं आत्मा तो पूराका पूरा यहां नहीं रहा, लो दूसरी जगह रहा। इस मुझ आत्मामें बिगाड़ क्या हो सकता है? मेरा बिगाड़ तो मोहभावसे है? मोही है तो बिगाड़ है। इस शरीरसे क्या प्रीति करते हो? जो गर्भसे लेकर मरणपर्यन्त कष्टका ही कारण रहा। वे कष्ट सभी जानते हैं।

देहकी सदा अपवित्रता— यह शरीर गर्भसे लेकर मरण पर्यन्त अपवित्र अपवित्र ही रहा। कभी इतना भी नहीं हुआ कि आज दशलाक्षणी का पहिला दिन है तो सोनेका तो बन जाये, यह शरीर एक दिन तो ठीक हो जाये। बड़ा धर्म कर रहे हैं। बडे शोभा श्रृङ्गारसे शरीरको सजाया है? एक दो मिनटको भी यह शरीर कचनका बन जाये। अरे गर्भसे लेकर मरण पर्यन्त प्रतिक्षण यह अपवित्र ही अपवित्र रहा। किसी को राग हो शरीरसे तो रागमें शरीर सुन्दर दिखना है, शरीरमें सुन्दरता कुछ नहीं है। मास-मासका पिंड ही सर्वत्र है। सुन्दरताकी बात क्या? यह तो सब जगह दुर्गन्ध दुर्गन्ध ही फैलाता है। शरीर दुर्गन्धित न होता तो इत्र फुलेलकी आवश्यकता न थी। शरीर कुरूप न होता तो अच्छे-अच्छे कपड़ोंसे सजानेकी आवश्यकता न थी। रागमें यह जीव अपने शरीरको अथवा दूसरेके शरीर को 'यह सुन्दर है' इस प्रकार निरखता है। शरीरमें सुन्दरता कुछ नहीं है भला बतलावो किशोर अवस्थामें अथवा जवानी अवस्थामें थोड़ासा मांस अधिक चढ़ा हुआ है और जरा अवस्था ढली तो इतना ही तो हुआ कि थोड़ासा मांस पतला हो गया। इतने में ही सुन्दरता कहा भाग गया। कौनसी बड़ी गड़बड़ी हो गयी? सुन्दरता तब भी न थी, सुन्दरता अब भी नहीं है। जिसको जिससे राग होता है उसको वह सुन्दर लगता है।

अपवित्रताका सौन्दर्य— एक सेठानीने नौकरानी रक्खी। दो एक दिन ही हुए। सेठानी का लड़का स्कूल पढने जाता था। एक दिन वह लड़का अपने साथ खाना ले जाना भूल गया। मिठाईका टिपिन न ले जा पाया, तो सेठानी कहती हैं नौकरानीसे कि यह मिठाई का टिपिन ले और मेरे बच्चेको दे आ अमुक स्कूलमें तो नौकरानी कहती है कि हम तो तुम्हारे बच्चेको पहिचानती ही नहीं हैं। तो सेठानी कहती है कि हमारे बच्चेको

क्या पहिचानना, सारे स्कूलमें जो सबसे अच्छा बच्चा हो, वही तो मेरा बच्चा है। उस सेठानी को गर्व था कि मेरा जैसा बच्चा किसीका नहीं है। उसी स्कूलमें नौकरानीका भी बच्चा पढ़ता था। वह नौकरानी टिपिन बाक्स लेकर स्कूल गयी तो वहा सभी बच्चों को देखा। उसे कोई बच्चा अच्छा न दीखा। उसे तो अपना ही बच्चा अच्छा दीखा। उस अपने ही बच्चे को मिठाई देकर नौकरानी चली आयी। शामको जब सेठानी का बच्चा घर आया तो मा से रोकर कहता है कि आज तुमने हमें मिठाई खाने को नहीं भेजी। तो सेठानी ने कहा कि नौकरानीके हाथ भेजी तो थी। नौकरानीको सेठानी डाटने लगी। तो नौकरानी कहती है कि तुमने ही तो कहा था कि स्कूलमें जो सबसे सुन्दर बच्चा है वही तो हमारा बच्चा है। सो हमें तो हमारा ही बच्चा सुन्दर लगा, उसीको सारी मिठाई खिलाकर मैं चली आयी। तो जिसके प्रति राग है बस वही सुन्दर है और सुन्दर कुछ नहीं है। ये तो मांस चामके पिंड हैं।

शरीरका अटपटापन— यह शरीर ऊबड़ खाबड़ बना है। मान लो ये मनुष्यके जैसे नाक कान न होते, बिल्ली शेरकी तरह चिपटी नाक के होते तो क्या सुन्दर जचते ? सुन्दर न जंचते, यदि राग है तो। चाहे चार पैर वाले जानवर ऐसा सोचते हों कि ये कैसे विकट जानवर हैं कि दो पैरोंके बल खडे हैं, ऐसी नाक उठी है, उन जानवरोंको यह मनुष्यका शरीर बड़ा बेडौल लगता होगा। हम जानवरोंको बेडौल देखते हैं। कुछ वास्तवमें सुन्दर नहीं है। यह शरीर ही समस्त संकटोंका कारण है। शरीर नहीं, शरीरमें जो मोह पैदा होता है वह है संकट। जितना डर है वह शरीर के कारण है। केवल आत्मा हो, शरीरका सम्बन्ध न हो तो बिजली भी तड़क जाये, काहे का डर ? यह ददक जाता है जरासी आवाजमें। जितने अपमान और पराभव होते हैं वे इस शरीरके कारण हैं। ऐसे इस शरीरको भूलो तो, सही विचार तो करो। हे ज्ञानी सत्पुरुष ! इसका मोह अनुराग छोड़ दो।

अशरीरतामें शाश्वत आनन्द— देखो भैया ! वास्तवमें सुख मुक्तिमें है और इस शरीरके त्यागसे मुक्ति मिलती है, अनन्त आनन्द इस शरीर के त्यागसे मिलता है। तू इस अनन्त आनन्दको नहीं चाहता क्या ? लोकमें कहावत है कि 'तुझे आम खानेसे काम या पेड़ गिननेसे काम।' तुझे अनन्त आनन्द चाहिए या यहाके तर्क वितर्क चाहियें। इस शरीरके विकल्पसे मुक्त होने पर सशरीर अवस्थामें भी आनन्द ही आनन्द मिलता है और फिर यह शरीर बहुत देर तक टिक न सकेगा। सर्वदाके लिए मुक्त होकर यह आत्मा

अनन्त आनन्दका अनुभव करेगा। इस शरीरका मिलाप जो होता है यह दुष्टजनोंके मिलापकी तरह जान। मुझ ज्ञानमय आत्माके साथ एक ऐसा दुष्ट लगा है कि शांति नहीं मिल पाती। वह कौनसा दुष्ट है जो मेरे साथ ऐसा चिपका हुआ है कि मुझे छोड़ता ही नहीं है? एक भवमें गुजर जाऊं तो दूसरे भवमें फिर आगे तैयार है। इस शरीरका मिलाप दुष्टजनोंके मिलाप की तरह है।

शरीरकी अरम्यता— देखो इन बातोंमें एक भी बात सामने आए तो विवेकी पुरुष पसंद नहीं करते। अपवित्रता, डर, अपमान और पापमें से एक भी बात ज्ञानियोंको पसंद नहीं है और इस शरीरमें ये सबकी सब बातें पड़ी हुई हैं। तब क्या यह शरीर मोह और प्रेम करनेके योग्य है ? जो समस्त अवगुणोंकी खान है, उससे लाभ कुछ भी नहीं है। इसके छोडनेसे ही और वैभव सम्पदा व समस्त परवस्तुओंके त्यागसे ही मुक्ति होगी। इस शरीरके मिलापको भी दुखमय जानकर इसका मोह तो छोड़ना ही श्रेयकर व सुखमय है।

> कुबोधरागादिविचेष्टितैः फलं,
> त्वयापि भूयो जननादिलक्षणम्।
> प्रतीहि भव्यप्रतिलोमवर्तिभि—
> र्ध्रुवं फलं प्राप्स्यति तद्विलक्षणम् ॥१०६॥

संसारप्रक्रियासे विपरीत चर्याका अनुरोध— अज्ञान और रागादिक भावोंकी चेष्टाओंसे जो बारम्बार जन्म मरण आदिक फल पाया है तो अब ऐसा कर कि जिस विधिसे जन्म मरणके दुखका फल पाया है, यदि उसका उलटा चलने लगे तो ससार संकटोंसे विपरीत फल तुझे मिल जायेगा। वह फल क्या है ? वह फल शाति मोक्ष है। लोकमें जिस कारणसे जो कार्य भी उत्पन्न होता है, उससे उलटा कारण मिलनेसे उलटा ही फल प्राप्त होता है। जैसे कर्मोंसे कोई रोग हो जाए तो उस रोगका मिटाना किसी औषधिसे ही होगा। इसी तरह मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योगसे जो संसार का परिभ्रमण चलाया है, इसके विपरित अपनी परिणति हो तो सब ससार के भ्रमण मिट सकेंगे।

ऐ भव्य जीव ! अज्ञान और असयमसे जन्म मरण आदिक दुखरूप फल पाया है, सो यह बार बार पाया है। यदि एक बार भी धोखा हो जाए तो उसमें यह अज्ञान भी न बैठेगा कि मुझे इस बातसे धोखा हुआ है, परन्तु बारबार अज्ञान अविरतिके परिणाम करता है और उनके कारण बारबार जन्म मरण आदिक दुख भोगता है तो अब भी कुछ सदेह है ? एक बार कोई

विरुद्ध काम हो जाए तो न भी पता रहे उसका, किन्तु जब बारबार तू अपनी विपरित परिणतियोंसे धोखा खा रहा है तो अब संदेहकी बात तो कुछ भी नहीं रही। तू मोह करता है, इससे ससारमे रुलता है। कषायभाव करता है, इससे दुखी रहा करता है। अब तू ऐसा कार्य कर कि जिससे संसारके समस्त सकट दूर हों। जैसा कार्य तू करता आया है, उसके विपरीत करने लग। मोह करता आया तो अब निर्मोह वृत्ति जगा। निर्मोह वृत्तिसे सासारिक संकट दूर होंगे।

क्लेशनिदानकी स्पष्टता होने पर भी प्रमाद करने पर खेद— जब कोई रोग बारबार हो जाता है, तब तो यह निर्णय हो जाता है कि मुझे इस कारण तकलीफ हुआ करती है। कभी कदाचित् कोई एक बार खाये और उसमे हो जाये बीमारी, तो भले ही उसमें निर्णय न हो सके कि मैंने ऊटपटाग खाया और जितने बार खाया, उतने ही बार रोग बना तो उसमें अब संदेह नहीं होना चाहिए कि मुझे यह रोग क्यों हुआ ? इसी प्रकार इन संसारीजनों ने बारबार अज्ञान और असयमका सेवन किया है और बारबार ही जन्म मरण के दुख भोगे हैं, अब तो ये नहीं रहना चाहिए।

जैसे कोई जब इमली खाये, तब ही देहमें दर्द हो, तो उसे यह ही निर्णय रहेगा कि इमलीके खानेसे ही यह वायुका दर्द हुआ है। भ्रम तो नहीं रहता। यदि दूसरा कोई खाया करे तथा उसको रोग होवे तो भी भ्रम रह सकता है। जब खुद पर कोई बात बारबार बीतती है तो फिर उसमें भ्रम का क्या कारण है, अब यह निश्चय करो कि अज्ञान और मोहरूप परिणमन करनेसे तो क्लेश होता है और अब इसके विपरीत ज्ञानव्रत, सयमरूप परिणमन करे तो नियमसे क्लेश मिटेंगे। जिन परिणामोंसे ससार बढ़ा है, उनसे उलटा चलें तो मोक्षमार्ग मिलेगा।

स्वयके प्रयोगका अवबोध— यद्यपि मिथ्यात्व अज्ञान आदिक खोटे भावोंमें रहने वाले लोकमें अनेक जीव हैं और मोक्षमार्गमें लगने वाले जीव थोड़े हैं, लेकिन तू अपने आपमें अनुभव करके तो देख—यदि सत्यश्रद्धान् सत्यज्ञान और उस रूप ही उपयोग हो, ऐसी कभी वृत्ति जगती है तो तेरा कष्ट कम होता है या नहीं ? कम होता है। तो जिस उपायसे कष्ट कम होता है, उस उपायमे यह विश्वास पूरा रहेगा कि यह उपाय पूर्णरूपसे बने तो कष्टका नाम नहीं रह सकता। अब कष्टके उपायसे विपरीत चल। देख तेरा आत्मा और आत्मासे सम्बधित ये शरीर आदिक पदार्थ और कल्पना किए गये वैभव परिजन आदिक इनमें तू भेद कर। छोडते न बने तो भी यथार्थ ज्ञानमें कौनसा कष्ट है ? यह सब भीतरी तपश्चरणकी बात है। जो

जीव यथार्थ ज्ञान बनाये रहता है, अन्तरंगमें सबसे निराले अपने स्वरूपास्तित्वमात्र इस ज्ञानानन्दघनको अपने उपयोगमें बसाता है, ऐसा उसे पूर्ण निर्णय है तो उसके संकट अवश्य मिटेंगे।

कार्यकारण योग— भैया ! यह तो एक गणित जैसा उत्तर है। यदि बीज बढ़िया है गेहूका, चनेका और वातावरण भी उत्तम है तो प्रतिबन्धकके अभावमें बो देने पर ऊगेगा ही, और यदि बीज घुना है, उसकी जो नाकसी होती है वह निकल गयी है, उपादान अयोग्य है तो वह बीज बो देने पर भी उग नहीं सकता है। जैसे अग्नि पर बटलोहीमे पानी चढ़ा देनेसे प्रतिबन्धकके अभावमे वह गरम हो ही जाता है और ठंडे स्थानमें रख देनेसे वह ठंडा हो जाता है। निमित्तनैमित्तिक योगमे जो जिस तरह होना होता है वह होता ही है। तो यहां भी यह निर्णय करो कि मोहके करनेसे जन्म मरणकी परम्परा बढ़ती ही है, तब यथार्थज्ञान होने पर मोहके छूटनेसे यह जन्म मरणकी परम्परा दूर हो जायेगी। अपने हितके लिए तू ऐसा ही यत्न कर कि यह जन्म-मरणकी परम्परा, विषयकषायोंके अभिप्राय ये सब तेरे समाप्त हो जायें।

प्रवृत्तिकी भावनानुसारिता— जो मनुष्य जिस तत्त्वकी बार-बार भावना करता है उसको उस तत्त्वकी प्राप्ति होती है। अपनेको कोई मै मूर्ख हू, मैं मूर्ख हू—ऐसा बार-बार विचारे तो रही सही बुद्धि भी बिगड़ जाती है। कोई अपने कुछ ज्ञानयुक्त कार्य भी करता हो और यह समझता हो, इसे मैं ठीक निभा ले जाऊँगा तो उसकी बुद्धिमें कुछ विकास होता है। जो अपने को मै तो दुःखिया हू, ससारमे रुलने वाला हू—ऐसा ही विश्वासमें लिए रहे तो वह संसारमें रुलेगा ही। जो सासारिक समागमोंसे विरक्त यह मैं ज्ञानमात्र, स्वयं ही स्वरूपतः सिद्ध और मुक्त हूं, ऐसा प्रतीतिमें लाये तो उसको मुक्ति निकट मिलेगी। कभी-कभी नाटकोंमें नाटक करने वाले पुरुष जब अपने आपको भूल जाते हैं और जिसका पाठ किया है उस ही रूप अपनेको मान लेते हैं तो वे यदि किसीको मारनेका पाठ कर रहे हैं तो मार ही देंगे, क्योंकि अपने आपको भूल गये ना कि मैं अमुक हूं और मैं तो यह नाटक कर रहा हूं। जैसी अपनेमें भावना बनायी, वैसी ही इस पर गुजरती है।

सद्भावना— कोई पुरुष कैसी भी कठिन स्थितिमें ऐसी भावना बनाये कि मैं लाखों, करोड़ों पुरुषोंसे अच्छा हू, मुझे सर्वसाधन प्राप्त हैं, धर्म के लिए मुझे अवसर है तो वह कठिन और दरिद्र स्थितिमें भी अपनेको प्रसन्न रखता हुआ निभा ले जायेगा और कोई धनिक सम्पन्न होकर भी

तृष्णावश अपनेको यों निरखता रहे कि मैं तो बड़ा दुःखी हूं, मेरी आवश्यकताएँ ही पूर्ण नहीं होती हैं, एक न एक सकट मेरे सामने है तो वह पाये हुए समागमका भी सुख नहीं ले सकता है। जो अपनेको जिस रूप विचारता है, वह अपनेको उस रूप ही परिणमा लेता है। ज्ञानी पुरुष अपनेको निरन्तर ज्ञानमय प्रतीतिमें लिए रहते हैं, इसी कारण उनका ऐसा प्रकाश है, वे किसी भी समयमें भ्रममें नहीं आते हैं, किसीके बहकाये नहीं बहकते।

सुख दुःखकी निर्णायकता— जिसके सम्यक् ज्ञान जग गया है, वह उसका अमिट ज्ञान है। सुख और दुःखका फैसला इस ज्ञानभावनामें है। यह मैं आत्मा स्वयं ज्ञानानन्दस्वरूप हूं, सबसे निराला अकेला हूं, मेरा मेरेमें ही उत्तरदायित्व है, मैं अपने आपका ही स्वामी हूं—इस प्रकार जो अपने आपमें अपने आपके एकत्वका निर्णय रखता है उसे ससार सकट नहीं हैं। जिसे अपने आपके स्वरूपका भान भी नहीं है, जिस शरीरमें यह बस रहा है उस शरीरमात्र ही अपनेको निरखता हो तो विपरीत बुद्धि होने पर इसको सारी बातें प्रतिकूल लगेंगी, तब इसे क्लेश ही होगा। आत्मन्! यदि सत्य शान्ति चाहते हो तो अपने आपको सबसे निराला ज्ञानानन्दस्वरूपमात्र समझना ही पडेगा। इस सम्यग्ज्ञानके अतिरिक्त ससारमें अन्य कोई उपाय नहीं है जिससे इसके सकट मिट सकें। अज्ञानमें जो भी यह प्रयत्न करेगा उससे इसके दुःख ही बढेंगे, दुःख दूर न होंगे। यों श्री गुणभद्र आचार्यदेवने इस बात पर दृष्टि डलायी है कि दुःखसे तुझे दूर होना है तो जिन चेष्टावोंसे दुःखी होता हो, उनसे तू विपरीत चलने लग तो तेरा दुःख समाप्त हो जायेगा। तब किस प्रकार चलें? उसके उत्तरमें आचार्यदेव कहते हैं—

दयादमत्यागसमाधिसन्तते पथि प्रयाहि प्रगुणं प्रयत्नवान्।
नयत्यवश्यं वचसामगोचरं विकल्पदूरं परमं किमप्यसौ ॥१०७॥

सत्पथगमनका अनुरोध— दया, इन्द्रियदमन, त्याग, समाधि इनके पथमें तू अपनी प्रवृत्ति कर। इसकी जो परिपाटी है उस मार्गमें तू यत्न करता हुवा सीधा निष्कपट गमन कर। यह मार्ग तो एक परमपद रूप है, जो वचनोंसे नहीं कहा जा सकता है। इस मार्गसे तू अवश्य कल्याणका साधन पायेगा। दया नाम है अपनी और परजीवकी करुणा करना। करुणा करने वाला जिस परिस्थितिका होगा इस ही प्रकारकी छोटी और बडे ढगकी करुणा उत्पन्न होगी। ज्ञानीजन इन जीवों पर मौलिक करुणा करते हैं। थोड़ी वर्तमान शान्तिके लिए वचन विस्तारका सुख लूट लिया तो इससे जीवका पूरा तो न पड़ेगा। इस जीवका कष्ट सदाके

लिए दूर हो, ऐसा प्रयत्न करे यह तो इसका पूरा पड़ेगा। ज्ञानीपुरुष जीवों के प्रति ऐसा चिन्तन करता है कि इनको ऐसी सद्बुद्धि आ जाये, ऐसा ज्ञान जग जाये, जिस ज्ञान द्वारा यह अपने आपके यथार्थस्वरूपको पहिचान जाये। इससे सदाके लिए संकट मिट जायेंगे।

विदेह बननेमें देहकी उपेक्षाका मूल सहयोग— देखिये यह तो युक्तिसंगत बात है ना, कि जिससे प्रेम किया जायेगा, वह अपने साथ लग जायेगा। यदि कोई अनिष्ट मित्र अपने साथ लग गया है तो उसका उपाय यह है कि प्रीति न करे, उपेक्षा भाव कर दे तो वह टल जायेगा। ऐसे ही जब तक हम शरीरसे प्रीति रखते हैं, शरीरको अपनाते हैं तब तक यह निश्चय समझिये कि यह शरीर मेरे साथ लगा रहेगा। एक शरीरको छोड़ेगा तो अगले भवमें नया शरीर लग जायेगा। इस शरीरसे यदि सदा के लिए मुक्त होनेकी इच्छा है तो इस शरीरसे प्रीति न करिये। शरीरसे प्रीति करते जायें और उससे मुक्ति चाहें तो यह बात नहीं हो सकती। प्रथम कर्तव्य है जिससे हम छूटना चाहते हैं उससे उपेक्षा करदें। ज्ञानी जीव जीवों पर ऐसी परम करुणाका भाव करते हैं कि इन्हें सन्मति जगे और भेदविज्ञान प्रकट हो कि सदाके लिए संकट मिटें। कुछ उनसे कम ज्ञानीजीव हों तो वे कुछ व्यावहारिक अच्छे आचार विचारोंमें लगा देनेकी करुणा करते हैं और बाकी कोई दयालु पुरुष दया करते हैं तो उसका जो ऐहिक संकट है, भूख होना, प्यास होना अथवा उसके रहनेका कोई साधन न हो तो उन बातोंको लेकर उनके दुःख दूर करते हैं, ऐसी उनकी करुणा जगती है।

करुणाभावमें आत्मस्पर्शनका स्थान— करुणाभावमें कुछ न कुछ आत्मस्वरूपका स्पर्श होता है। दूसरे जीवों पर दया तभी उत्पन्न होती है जब इस तरहकी कोई बात खुदमें भी अनुभूत हो जाती है। अपने आपमें वेदना हुए बिना दयाका भाव पैदा नहीं होता। दूसरे जीवकी वेदना देखकर अपने आपमें कुछ वेदना बनेगी तो उस पर दया बनेगी। जब कभी आप हम खुजैले दुःखी कुत्ता बिल्लियोंको देखकर या जिसकी हड्डियां निकली हैं ऐसे भैंसा, बैल जिनके गर्दन पर कुछ फोड़ा और खून चूता है और उन्हें कोई अपनी गाड़ीमें जोतकर चाबुक मारकर चलाते हैं, उन्हें देखकर जो दया आती है सो उसका मूल यह है कि खुदमें भी ऐसा अनुभव हो जाता है कि ऐसा यदि मैं होता तो कितनी मुझे वेदना होती? ऐसी कुछ उसके निकट पहुंच किए बिना, वेदना हुए बिना दयाका अंकुर उत्पन्न नहीं होता। यह दयाका भाव शुभभाव है। यह विषयकषायोंकी कलुषताको दूर करनेके

एक सुगमसाधन है। हम दयाके पथमें चलें।

आत्महितमें इन्द्रियदमनका सहयोग— इन्द्रियदमनसे इन्द्रियके विषय रुक जाते हैं। ज्ञानबलसे विषयोंको रोक लेना यह है इन्द्रियदमन। हितार्थी आत्मन्! तुम दमनके पंथमें लगो। कोई पुरुष ऐसे होते हैं कि उनके मनमें कोई इच्छा जग जाय कि हम आज अमुक चीज खावेंगे, तो इच्छा तो जग गयी, मगर थोड़ी देर बाद उस ही वस्तुका त्याग कर देते हैं जिसकी कि इच्छा जगती है। क्यों उपयोग कर करके इच्छा जगती है? साधारण सुगम प्रयत्नसे जो बात बने वही भोगा जाय। इन्द्रियोंने जैसा जो कुछ चाहा, उनकी पूर्तिमें लग गये तो फिर कल्याणका यत्न कब करोगे? इन्द्रियदमनके पंथमें चलो।

त्यागमार्ग— परवस्तुओंका राग छोड़ना इसका नाम है त्याग। रागसे अनेक क्लेश मिलते हैं। और रागके त्यागसे ये क्लेश दूर हो जाते हैं। रागके त्यागके पंथमें चलो तो इससे कोई निर्विकल्प परमपद प्राप्त होगा। समाधिभाव कहते हैं समतापरिणामको। रागद्वेष न जगकर एक केवल ज्ञाताद्रष्टा रहनेका प्रयत्न हो तो कोई अलौकिक आनन्द अनुभूत होगा। प्रयत्न करके और ढंगके साथ बढ़े, इन शुद्ध कार्योंमें लगे तो संसार का परिभ्रमण मिटेगा।

शिवपथ और भवपथ— सूत्र जी में एक सूत्र आया है—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणिमोक्षमार्गः। और अगर ऐसा सूत्र बन जाय—मिथ्यादर्शन ज्ञानचारित्राणि संसारमार्ग तो गलत है क्या? दोनों ही सूत्र ठीक हैं। सूत्र जी के ८ वे अध्यायमें मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगबन्धहेतवः कहा है, इसीका संक्षेपरूप है— "मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्राणि संसारमार्गः।" हम जिस विधिसे चलकर दुःखी हो रहे हैं, उससे उल्टा चलने लगें तो ये सारे क्लेश दूर हो जायेंगे। हमारा कर्तव्य है कि हम इस ज्ञान दर्शनस्वरूप निज अतस्तत्त्वकी श्रद्धा करें, उसका ही ज्ञान करें, उसका ही आचरण करें तो इस रत्नत्रयके लाभसे संसारके संकटोंसे हम निवृत्त हो जायेंगे। हम रात दिनके चौबीसों घंटोंमें किसी क्षण इस निर्विकल्प ज्ञानज्योतिमात्र आत्मतत्त्वका स्पर्श करते रहें तो इस उत्कृष्ट भव और धर्मका पाना सफल होगा।

> विज्ञाननिहतमोहं कुटीप्रवेशो विशुद्धकायमिव।
> त्यागः परिग्रहाणामवश्यमजरामरं कुरुते ॥१०८॥

ज्ञानपूर्वक त्यागमें परमविशुद्धिका सामर्थ्य— वस्तुविज्ञानसे जिसने मोहको दूर किया है, ऐसे पुरुषके जो परिग्रहका त्याग होता है वह अवश्य

ही उसे अजर और अमर कर देता है। एक आयुर्वेदिक दृष्टान्त है कि ठीक स्थान बनाकर जिसमें पवनके स्थान स्वय बने हुए हैं, ऐसी कुटीमें रहकर कोई रोगी पुरुष एक विशुद्ध कायको प्राप्त कर लेता है। इस ही प्रकार यह परिग्रहत्याग अजर और अमर पदको प्राप्त करा देता है। सम्यग्दर्शनकी अपूर्व महिमा है। जिस पुरुषको अपने आपमें विराजमान इस शुद्ध अन्तस्तत्त्वका भली प्रकार दर्शन हो जाता है, उस पुरुषका नियमसे निर्वाण नश्चित हो गया। सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेके लिए प्रथम भेदविज्ञान चाहिए। किसी भी वस्तुका हम समुचित दर्शन तब कर पायेंगे जब हम अन्य परवस्तुवोंसे उसकी भिन्नता नजरमें लें। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपरूपमें है। मैं भी अपने ही स्वरूपरूप हू, समस्त परपदार्थोंसे न्यारा हूं, ऐसे विविक्त ज्ञानानन्दस्वरूप आत्माका उपयोग द्वारा दर्शन कर लेना सो सम्यग्दर्शन है। इस सम्यग्दर्शनके प्रभावसे मोह दूर हो जाता है। मोह दूर करके फिर रागद्वेषके विजयके लिए जो परिग्रहका त्याग किया जाता है वह सम्यक्‌चारित्र है इस जीवको सम्यग्दर्शन भी हो, सम्यग्ज्ञान भी हो और सम्यक्‌चारित्र भी हो तो अब इन तीनोंके प्रसादसे उसे निर्वाण अवश्य मिलेगा। यदि कारण सब ठीक मिल जायें, उपादान ठीक हो तो कार्यसिद्धि कैसे न होगी ? जैसे ये संसारके कार्य हमारे मिथ्यात्व मिथ्याज्ञान और मिथ्या आचरणके बलसे चल रहे हैं, ऐसे ही समझिये इससे विपरीत अर्थात् अपने स्वभावके अनुरूप हम रत्नत्रयमार्ग पर चलें, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्र की आराधना सहित चलें तो नियमसे निर्वाण होगा, ससारके सकट छूटेंगे।

वैरीमें राजी रहनेका व्यामोह व उस संकटसे छुटकारेका उपाय— यह जीव राजी रहता है मोहमें, किन्तु इस जीव का वास्तविक वैरी है मोह। वैरीसे सताया जा रहा है व उस सतानेमें ही राजी है और उस वैरीमे भी राजी है। यह कितना विकट भ्रम है इस जीवपर ? सम्यग्दर्शन होने पर इसके मोक्ष होगा, यह तो निर्णीत हो गया, पर सम्यक्‌चारित्र भी साथ हो तो सम्यक्‌चारित्र की पूर्णता होते ही नियमसे मोक्ष है। हां, इन तीनोंमें कोई कम रह जाय, सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यक् चारित्र नहीं है तो उसे अभी मोक्ष न मिलेगा, किन्तु मोक्षमार्गपर अंशरूपसे चलता जरूर जा रहा है। प्रत्येक कार्यकी सिद्धिके लिए उस कार्यका विश्वास हो, उस कार्यका ज्ञान हो और उस कार्यके अनुरूप अपना आचरण बने, यह सर्वत्र आवश्यक है। जैसे घरका काम हो, व्यापार का काम हो, सबमें विश्वास ज्ञान और आचरण चाहिए।

कार्यसिद्धिमें विश्वास, ज्ञान और आचरणकी आवश्यकता— जैसे एक रसोई बनानेका ही काम है, तो उसमें भी यों विश्वास होता है कि रसोई ऐसे बनती है। क्या कभी ऐसा संदेह किया जाता है कि कल तो चूल्हे पर तवा रखकर आटेसे रोटी बनाकर पकाया था, आज आटासे रोटी बनेगी या नहीं? ऐसा संदेह नहीं होता है। जैसा उसका पूरा विश्वास है, उसकी विधियोंका भी पूरा ज्ञान है, जिस प्रकारसे जो चीज बनती है वह सब भी बराबर ज्ञानमें है और जैसा विश्वास है, ज्ञान है, वैसा काम भी करने लगे तो रसोई क्यों न तैयार होगी? ज्ञान भी रहे, विश्वास भी रहे और बनाये नहीं, पड़ा रहे आलस्य किए तो रोटी कैसे बनेगी? व्यापारके काम मे भी व्यापारविषयक विश्वास चाहिए। अर्थके अर्जनका उपाय यह ही है। यह विश्वास बना हुआ है और उसकी कुछ विधियों पर भी विश्वास बना है उसका भी ज्ञान है और फिर कार्य भी करने लगे तो वहा भी उसे लाभ होता है। यों ही समझिये आत्माको मुक्त करना है, मोक्ष देना है तो पहिले मोक्ष-सम्बन्धी विश्वास चाहिए। यह मैं आत्मा स्वभावसे ज्ञानानन्दघन हूं, अकेला हू, मैं इस शरीरसे मुक्त हो सकता हू, कर्मोंसे मुक्त हो सकता हू— ऐसा विश्वास चाहिए और उन सब तत्त्वोंका ज्ञान चाहिए जिसके आश्रयसे हम मुक्त हो सकते हैं और फिर वैसा आचरण कर लिया जाय तो उसको मोक्ष भी अवश्य होगा।

आकिञ्चन्यभावना व निष्परिग्रहताके हितमें पूर्णयोगदान— मोक्ष के मायने हैं केवल अकेला रह जाना। आत्माके साथ जो शरीर, कर्म, समागम, परिग्रह देह आदिक दंद फंद लगे हैं वे सब टल जायें, उनसे निवृत्ति मिले, इसका नाम है मोक्ष। पहिले तो यह विश्वास होना चाहिए कि मेरा स्वरूप निर्मल है और मैं निर्मल हो सकता हू। जो पुरुष अपनेको ही निर्मल नहीं मान पा रहे हैं, जिन्होंने इस देहको ही अपना सर्व कुछ मान लिया है उन्हें मुक्ति कहासे प्राप्त होगी? पहिले तो अपने में निर्मलपनेका विश्वास होना चाहिए और फिरी इस तरहका अपना उपयोग बनायें, ऐसा ही अपने में अनुभवन करें तो उन्हें निर्वाण अवश्य होगा।

निष्परिग्रहता और अकिञ्चन्यभावना—ये दोनों शान्तिकी ओर ले जाते हैं। निष्परिग्रहता आचरणमें चाहिए और आकिञ्चन्य श्रद्धानमे चाहिए। मैं आकिञ्चन हू, मेरा मेरे सिवाय अन्य कुछ नहीं है, जो मेरा स्वरूप है वही मैं हू, वही मेरा है, इसके आगे एक अणुमात्र भी मेरा नहीं है, यह विश्वास चाहिए। चाहे रागवश, परिस्थितिवश न रह सके अकेले और परिजनका, इष्टजनका पालन पोषण आदिक

भी करें, धनार्जन भी करें तो भी ज्ञानी पुरुष को अन्तरङ्गमें यह श्रद्धा है कि मैं तो अकेला ही हूं, ज्ञानस्वरूप हू, परमाणुमात्र भी मेरा अन्य कुछ नहीं है--ऐसा ज्ञानी गृहस्थका निरन्तर विश्वास रहा करता है। फिर उसका यह विश्वास जब भलेरूपमें होनेको होता है तो इसकी अणुव्रत और महाव्रतमें प्रगति होती है। जो श्रावकका व्रत अथवा साधुका व्रत ग्रहण करता है उसके सम्यक्चारित्र बनता है। यो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रके प्रसाद से यह जीव कर्मोंका क्षय करता है।

ज्ञानका गाम्भीर्य— ज्ञान तो जीवका एक स्वरूप है। ज्ञानके किसी प्रकारका परिणमन होनेके कारण कर्मबंध अथवा कर्ममोक्षकी व्यवस्था नहीं बनती है, किन्तु मिथ्यात्व हो और मिथ्या आचरण हो तो यह जीव संसार में रुलता है, कर्मोंसे बंध होता है। यदि यह जीव अपने उपयोगको संभालता है, अपने रूप रहता है तो इसे कर्मबन्ध नहीं होता है। हर एक परिस्थितिमें अपना सम्यक्त्व बराबर जागृत रखना चाहिए। सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र निर्जराके कारण हैं और मिथ्यादर्शन, मिथ्याचारित्र ये संसार के कारण हैं। ज्ञान एक मध्यस्थ है, तटस्थ है। ज्ञानके कारण न बंध हो, न मोक्ष हो। जो यह बताया जाता है कि कोई उल्टा ज्ञान करे तो कर्मोंसे बँधता है, सो उसके मिथ्यात्वके कारण बध है, ऐसा समझना। मिथ्यादर्शन व मिथ्याचारित्रसे बध है, पर ज्ञानसे बध नहीं, और न ज्ञानसे मोक्ष है। ज्ञान जब अनुपम तटस्थ है तभी तो हमारे लिए वह आलम्बन है। हमारा कर्तव्य है कि हम अपने स्वरूपको जानें, विश्वास करें और निष्पक्ष होकर, समतामें रहकर, ज्ञाताद्रष्टा रहकर अपने आपकी सम्पदाकी वृद्धि करें, यही निर्वाण पानेका उपाय है। अब यह बतला रहे हैं कि निर्वाणके मार्गमें लगने वाले अनेक पुरुष होते हैं, उनमें सर्वोत्तम त्यागी पुरुष कौन हैं?

अभुक्त्वापि परित्यागात्स्वोच्छिष्टं विश्वमासितम्।
येन चित्रं नमस्तस्मै कौमारब्रह्मचारिणे ॥१०६॥

कौमारब्रह्मचारियोंको प्रणाम— जो जीव इन भोगोंको न भोगकर पहिले से ही उनका त्याग करते हैं, मानों यह दृष्टि रखकर कि इन सब भोगों को अनन्त बार भोगा, ये सब भोग तो भोगे हुए होनेके कारण जूठे हैं। इन जूठे भोगोंमें क्या प्रीति करना? यों जानकर जो पुरुष भोगे बिना ही परिग्रह का, भोग विषयोंका परित्याग करते हैं वे कुमार ब्रह्मचारी हैं। ऐसे ब्रह्मचारी जनोंको, आत्मरमण करने वाले साधुसंतोंको, व्यवहार चारित्र पालने वाले संतोंको हमारा नमस्कार हो।

त्रिविध त्यागी— दुनियामें त्यागी तीन प्रकारके होते हैं। जैसा कि

इस ग्रन्थमें पहिले वर्णन किया है। उनमें कुछ तो ऐसे हैं कि जो पहिले भोगसामग्रीको संकलित करते हैं और उस भोगसामग्रीका उपभोग करते हैं, पर किसी कारणसे उससे विरक्ति आ जाये तो उन पदार्थोंको छोड़ देते हैं और कुछ पुरुष महाभाग ऐसे होते हैं कि इन भोगोको असार अहित जान कर भोगे बिना ही भोगोंका परित्याग कर देते हैं। ये हैं कौमार ब्रह्मचारी। इन्होने कुमार अवस्थामे ही दीक्षा धारण की है। आज भी ऐसे बालक बालिकाएँ पाये जाते हैं जिनको अपने सम्पूर्ण शीलसे ही रुचि है। वे किसी दूसरे पुरुष अथवा स्त्रीसे एक वैवाहिक बन्धन बाधकर भी अपनेको परतंत्र नहीं रखना चाहते हैं। पुरुष हो वह भी विवाह करने पर परतन्त्र हो जाता है, स्त्री हो वह भी विवाह करने पर परतन्त्र हो जाती है। यह परतन्त्रता भावोंकी है। प्रीतिभावके कारण यह परस्परमे पराधीनता बनी रहा करती है। जो पुरुष सर्वपराधीनतावोंसे मुक्त हो जाये, उसे साधु पुरुष कहते हैं। लक्ष्मणके ८ कुमार पुत्रोंने कुमार-अवस्थामें दीक्षा धारण की थी। यों अनेक पुरुष हुए हैं, ये कौमार ब्रह्मचारी सर्वोत्कृष्ट त्यागी पुरुष हैं। कुछ पुरुष ऐसे होते हैं, जो मरकर ही छोड़ पाते हैं।

उच्छिष्टताके सूक्ष्म प्रकार-- जैसे किसी पुरुषके आगे भोजन रखा जाय और वह उसे बिना खाये छोड़ दे तो उसे बडे पुरुष नहीं खाते हैं। यह सब भावोंकी बात है। किसी के सामने पातल परोस दी गयी हो और वह उसे बिना खाये ही उठ जाये तो बडे पुरुष भी उसे जूठा समझ लेते हैं और उसे नहीं खाते हैं। वह तो अब जूठके समान हो गया। यह एक दृष्टिकी बात है। जैसे किसी पुरुषके गले में फूलोंकी माला डाल दी जाये, तो एक बार गलेमें वह माला डाल देनेके कारण उसे कोई दूसरा पुरुष अपने गले में डालना पसद नहीं करता है। वह तो अब अयोग्य हो गयी, ऐसा समझ कर उसे कोई भी अपने गलेमें डालना पसद नहीं करता है। यह सब भावों की बात है। जिसे भोजनमे आसक्ति होती है वह तो कुछ भी विचार नहीं करता है, उसे ग्रहण कर लेता है और जिसे उस भोजनमें आसक्ति नहीं है वह उसे जूठा समझकर त्याग देता है।

वज्रदतके पुत्रोंका वैराग्य— पूर्वकालमें वज्रदन्त चक्रवर्ती हुए हैं। वे एक बार सभामें विराजे हुए थे। मालीने आकर राजाके आगे एक फूल भेंट किया। वह कमलका पुष्प था। उसे जब पखुड़ियोंको इधर-उधर करके फैलाकर देखा तो उसके अन्दर एक मरा हुआ भवरा पड़ा था। उस चक्रवर्ती को तत्काल ही वैराग्य उपजा। अहो! देखो जैसे यह भवरा गधके लोभमें आकर अपने प्राण गवा बैठा है, ऐसे ही हम सब ससारी जीव विषयोंके

लोभमें आकर अपने प्राण गंवा देते हैं। हम आप खुद अपने आपका ही घात करते रहते हैं। उसे विरक्ति हुई तो वह अपने बडे लड़केसे कहता है ऐ राजपुत्र ! तुम राज्य ग्रहण करो, तुम्हारा राज्याभिषेक करेंगे। वह बडा राजपुत्र बोला वज्रदन्त चक्रवर्तीका पुत्र कि पिताजी ! आप क्यों छोडकर जा रहे हैं? वज्रदन्तने बताया कि मुझे अब इस वैभवकी, राजपाटकी इच्छा नही रही। इसमें ही बने रहे तो आत्मकल्याणसे विमुख होकर संसारमें जन्म-मरण ही बढाते रहेंगे। अब मुझे विरक्ति हो गई, हम इसे छोडकर जा रहे हैं, इसे तुम ग्रहण करो तो वह पुत्र बोलता है कि जिसे तुम असार जानकर, अहितकारी जानकर छोड़कर जा रहे हो, उसे हमारे सिर क्यों पटकते हो? यदि हमारे सिर पटक रहे हो तो यह कोई न्याय नहीं है। जिस चीजको तुम विपदा समझकर छोडे जाते हो, उस चीजको हम न ग्रहण करेंगे। हम भी तुम्हारे साथ जाकर दैगम्बरी दीक्षा ग्रहण करेंगे। चक्रवर्तीने बहुत समझाया— देखो तुम अभी कुमार अवस्थाके हो, जंगलके घोर दुःखोंको तुम न सह सकोगे। तो चक्रवर्तीका पुत्र बोला— पिता जी! तुम तो एक मामूली राजाके लडके हो, हम चक्रवर्तीके लड़के हैं। हम विचलित नहीं हो सकते। दूसरे लड़केसे कहा— तो उसने भी ऐसा ही उत्तर दिया। उनके जो कुछ हजार लड़के थे, सबका वही उत्तर हो गया। अन्तमें वज्रदन्त चक्रवर्तीने एक छोटे पोतेको जो अभी बच्चा ही था, बोलना भी न जान सकता था, उसके सिर पर राज्यपट्ट बाधकर लोगोंको यह कह कर कि अब तुम लोगोंका यह राजा हुआ है, सब छोड़कर चल दिये।

वैराग्यकी कुछ घटनायें— वैराग्यके कारणोंसे अन्य भी ऐसी घटनाएं होती हैं। एक कमलके फूलमे मरे हुए भंवरेको देख लिया, वैराग्य हो गया, शिरका केश सफेद देख लिया वैराग्य हो गया। अब तो किसीके वैराग्यकी बात चित्तमें नहीं समाती। लोग पशुओंकी जानसे खेल खेलते हैं। किसी कुत्ता बिल्लीको कडी धूपमे बाध दिया, वह तो चिल्ला रहा है, भूख, प्यासके मारे तड़फ रहा है, फिर भी उसे देख देखकर लोग मौज मानते हैं। अनेक घटनाएँ दुःखद देखते सुनते हैं, फिर भी कभी चित्तमे वैराग्यकी बात नहीं समा पाती। किसीको तो उडते हुए बादल दिख जानेसे ही वैराग्य हुआ है। अभी तो महलकी छत पर खड़ा हुआ था, बादलोंसे बने हुए मदिरका फोटो लेनेके लिए। छतसे नीचे कैमरा या पेन्सिल लेने आया, इतनेमें ही वहा पर जाकर देखता है कि सारे बादल विघट गये हैं, इधर उधर उड़ गये हैं। बस उसके वैराग्य आ गया। सोचा कि जैसे ये बादल शीघ्र ही विघट गए, ऐसे ही ये धन वैभव सारे समागम शीघ्र ही विघट जाते

है। ऐसे-ऐसे अनेक कारण होते हैं।

भोगपरित्यागके विना शान्तिकी असभवता— जो पुरुष भोगोंको भोगे विना, स्वीकार किए विना त्याग देते हैं वे पुरुष कुमार ब्रह्मचारी हैं, जो भोगकर छोड़े तो भी भला है। इसमें कुछ विशेष आश्चर्यकी बात नहीं है। यह गृहस्थीमें सादा खाना, सादा पहिनना, सादे रहन सहनसे रहना यह भी एक त्यागका रूप है। वे तो सर्वोत्कृष्ट त्यागी हैं जो भोगोंको भोगे विना ही उनका परित्याग कर देते हैं और आत्मध्यानमें ही अपनी बुद्धि लगाते हैं। ऐसा स्मरण कर करके हमें यह भाव भरना चाहिए कि भोगों का परित्याग करें, तब ही हमें शान्तिका मार्ग मिलेगा।

अकिञ्चनोहमित्यास्व त्रैलोक्याधिपतिर्भवे'।
योगिगम्यं तव प्रोक्त रहस्य परमात्मन ॥११०॥

परमात्मतत्त्वका रहस्य— हे सम्यग्दृष्टि पुरुष! देख धीरेसे सुन। तुझे आज परमात्माका वह रहस्य बतावेंगे जो योगियों द्वारा गम्य है, जिस रहस्यको योगिराज चिरकाल तक तपश्चरण और सयम करके अनुभवसे जानते हैं। वह परमात्माका रहस्य क्या है? परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिका उपाय क्या है? मैं अकिञ्चन हू अर्थात् मेरा मेरे सिवाय अन्यत्र कहीं कुछ नहीं है, ऐसा निर्णय करके तू विश्राम सहित अपने ही एकत्वमे अकड़कर रह जा। जिसे देहातमें बोलते हैं टन्नाकर रह जाना। जैसे कभी कोई बच्चा किसी बात पर हठ करता है तो वह उस हठके प्रसगमें एक चुपचाप बाली अकड़से रह जाता है। ऐसे ही तू अपनेको यह जानकर कि मैं अकिञ्चन हू, मेरा अन्यत्र कहीं कुछ नहीं है। तू अपनेमें विश्राम करके रह जा। यह योगिगम्य परमात्वतत्त्वकी प्राप्तिका उपाय कहा गया है।

ज्ञानानुभवका प्रसाद— ज्ञानी विरक्त सत योगी बनकर जगलमें और किया क्या करते हैं? एक अपने आपको ज्ञानमात्र सबसे निराला केवल ज्योति प्रकाशमय निरखते हुए एक निष्पद बन जाता हैं। उस समय सकल्प विकल्प हट जानेके कारण अपने आपमें एक उत्तम ज्योति प्रकट होती है, सहज आनन्द जागृत होता है, उस स्थितिमें तू परमात्माका रोज अनुभव कर सकता है। इस जीव पर कुछ माननेका घोर सकट है। मेरा कुछ है नहीं और मान लिया कि मेरा है, इस कारण यह संसारी प्राणी रुल रहा है। कभी ऐसी बात समझमे भी आती है, फिर भी उस मार्ग पर नहीं डट पाते हैं।

मोहका क्लेश— यह मोह करना बुरा है, दु खदायी है, ससारमें रुलाने वाला है और इस ही भवमें बारम्बार रुलाने वाला है। कहीं किसी

दूसरे जीवके मोहमें शान्ति नहीं मिला करती है। दूसरे जीव भी तो कषायवान् है, उनकी भी उनमें हठ है, उनके भी दिल है, वे भी आजादी पसन्द हैं। तुम करोगे दूसरे जीवोंमे मोह तो भले ही तुम चाहो यह कि मैं जैसा चाहूं तैसा ही ये जीव परिणमा करे, पर यह कैसे होगा? तब पराधीनता का क्लेश स्पष्ट ही है। कहीं भी तो सुख नहीं है संसारमे। किसी भी स्थितिमें सुख नहीं है। कुछ धनिक हो गए तो क्या शान्ति मिल गयी? बड़ी खुशीमे इतने संगीत समारोह करके बडे नाच गान करके खुश हुआ जा रहा है, वहां भी भीतरमें देखो तो वही आकुलता है, खुशी नहीं है। आकुलता खुशीके रूपमे भी फूटती है और विशादके रूपमे भी फूटती है। कौन निराकुल है? जो खुश है वह भी व्याकुल है और जो शोकमग्न है वह भी व्याकुल है। किसी जीवको यहां वहां कहींसे ढूंढकर ऐसा तो लावो जो पूर्णरूपसे निराकुल हो। निर्व्याकुल तो एक भगवान् ही हैं।

आत्मविश्रामका यत्न— हे आत्मन्! मै अकिञ्चन हूं, ऐसा अपने आपमें विचार करके तू परमविश्रामसहित निष्पद होकर ठहर जा। देख यह एक ऐसा परमात्मत्वकी प्राप्तिका राज है कि जिस राजमें परम आनन्द समा हुआ है, अज्ञानभावके कारण परपदार्थोंमे ममत्व हुआ करता है, वह ममत्व भले ही करे कोई, किन्तु कोई पदार्थ अपना कभी होता नहीं है। स्पष्ट देख लो, हाथमें पकड़कर देखलो— अपने ही शरीरको या गृहके वैभवको देखलो, कभी अपना होता है क्या? प्रकट न्यारा है, स्वरूप चतुष्टय भिन्न-भिन्न है, न मेरा गुण अन्यमें है, न मेरा परिणमन अन्यमें है, न मेरा बड़प्पन अन्यमें है, न मेरा किसी पर अधिकार है, न किसी पर स्वामित्व है, ऐसा प्रकट निराला यह जगत् है। इसमे आत्मत्वभाव अज्ञानसे ही होता है और यह अपना होता है नहीं, तब यह जीव बडा व्यग्र होता है, हीन दशाको प्राप्त होता है। इस मोही जीवने अपने हृदयमें उत्सुकता तो यह भरी है कि यह वस्तु मेरी है, मेरा इस पर पूर्ण अधिकार है और वस्तुस्वरूपके कारण निकला वह अनाधीन। तब बड़ी व्यग्रता होती है, ओह मैंने इतने कष्ट सहे, विकल्प किया, प्रयत्न किया और यह जीव या यह पदार्थ मेरे अनुकूल नहीं परिणम रहा है। देख सारे सङ्कटोंसे मुक्त होना हो और इस भवमें भी यदि तुझे अपनेको निर्व्याकुल अनुभव करना हो तो मैं अकिञ्चन् हूं, परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है, ऐसा तू केवल निजज्ञानपुंज अपनेको निरख। इस उपायके बिना तुझे शान्तिका कोई ढंग न मिलेगा।

परभावसे विविक्तताकी भावना— ज्ञानी जीवके यथार्थ भावना होती है कि कुछ भी परद्रव्य मेरा नहीं है, धातुवोंमे सब धातु, शरीरमे सब

शरीर और की तो बात क्या, भावोंमें अपने ही विचार रागद्वेष विकल्प, ये भी अपने नहीं हैं, ये समस्त पर होते हैं, विघट जाते हैं, कोई परद्रव्य मेरा नहीं है—ऐसा जब परिणाम हो तो परम उदासीनता प्रकट होती है। इस ही उदासीनताका नाम है चारित्र। इस चारित्रके फलसे देख तू तीनों लोकका अधिपति हो जायेगा। अपनेको अकिञ्चन मानेगा तो तीनों लोकका मालिक बन जायेगा और अपने को यहा किसीका कुछ मालिक मानेगा तो हीन दशामें रहकर ससारमें जन्म मरण पायेगा। देखो कितना पुष्ट, किन्तु सुन्दर निर्णय है।

मानकी चाहमें सम्मानका अलाभ— कोई पुरुष मानका अर्थी हो, मुझे सन्मान मिले, यों वह सन्मानका अर्थी आगे-आगे तुरैयासी झाँकता हुआ, अपने ही मुखसे अपनी बडाई करता हुआ, बिना ही बुलाये, बिना ही लोगोंके आदर किए, सबसे आगे उठता बैठता हुआ जो पुरुष चेष्टा करता है उसे कभी सन्मान मिला है क्या ? जो अपने मुँह अपनी बड़ाई करता है। उसे लोगोंके द्वारा बड़ाई मिलती है क्या ? बडाई तो मिलेगी उसको जो अच्छा काम करेगा। अच्छा काम करके जो अपने मुखसे बड़ाई करले, उस को कभी बडाई नहीं मिलती है। सन्मानका अर्थी अपनी बडाईके लिए बडी चेष्टाएँ करता है, पर अन्तमें उसे सन्मानकी जगहपर अपमान ही प्राप्त होता है।

योगिगम्य परमात्मत्वविधि— जो पुरुष परोपकारके कार्य करके भी अपनेको न कुछ, नम्र, विनयशील, गर्वरहित, सबका अनुयायी, पीछे ही पीछे उठने बैठने चलने वाला पुरुष है, वह पुरुष दूसरोंके द्वारा सन्मानको प्राप्त होता है। ऐसे ही जानों कि जो पुरुष अपने आपको अकिञ्चन मान कर नम्र, विनयशील, न कुछ अपने आपके स्वरूपमें रमकर सतोष करने वाला होता है, वह तीनों लोकोंका अधिपति अर्थात् जिनेन्द्रदेव होता है। और जो अपनी ही कल्पनामें जगत्में अपने को कुछ मानता है, उसको हीन दशामें रहकर ससारमें रुलना पड़ता है। यह सारा रहस्य योगीश्वर ही जानते हैं भली प्रकारसे।

आत्मप्रयोक्तृत्वमें ज्ञातृत्व— जिनको तात्त्विक ढगसे यह मर्म न उतरा हो वे पुरुष बातें भले ही करले, किन्तु वे ज्ञाता नहीं कहलाते हैं। जैसे तैरने की कला जानने वाला, जो तैरकर अनुभव कर चुका है, उसे ही तैराक कहेंगे। किताबी ढगमें जो लिखा है, विधि है उस तरहका अभ्यास कर लेने वाला उसका ज्ञाता न कहलायेगा। भला देखो कोई पुरुष रोटी बनाना रोज देखता है, ताजी ताजी रोटी रोज बनती हैं। वह पुरुष खाता जाता है सारी

वाने देखता जाता है, इस तरह आटा गूंना, इस तरह लोई बनायी, इस तरह बेला, इस तरह तवे पर रक्खा, इस तरह उलटा, अग्निपर सेका, खूब देख रहा है रोज-रोज वह पुरुष, मानों २५ वर्ष हो गये देखते-देखते। एक दिन ऐसा आ जाय कि खुद ही रोटी बनाना पड़े तो वह रोटी न बना सकेगा; यद्यपि २५ साल हो गये रोज देखते हुए और वह दूसरोंसे रसोई बनानेकी बात बड़े अच्छे ढगसे पूरी पद्धतिसे कह डालेगा। यों आटा गूंनो, यों रोटी पकावो, सब कुछ बता डालेगा, पर खुदको बनाना पड़े तो न बना पायेगा। तो क्या उसे रोटी बनाने की विधिका ज्ञाता कहा जायेगा? ढंगसे अनुभव से तो ज्ञाता न कहलायेगा। ऐसे ही मैं अकिञ्चन हूं, मेरा जगत्मे परमाणु मात्र भी कुछ नहीं है, मैं केवल ज्ञानस्वरूप हू, इतनी ही बातें करने वाले इस मर्मके ज्ञाता नहीं कहला सकते, किन्तु जो अपने उपयोगको ऐसा बना कर इस तत्त्वज्ञानके अमृतका पान करके संतुष्ट हुए हैं, उन्हें ही इस कलाके ज्ञाता कहेंगे।

अकिञ्चन और सकिञ्चनकी मान्यताका प्रभाव— हे आत्मन्! मैं वैभववान् हू, मेरी इतनी इज्जत है, इस ही बात को दिलमें धारे हुए क्या तू शान्ति पा रहा है? अरे क्षणिक इन विकल्पोंके भारको तू अपने उपयोग से हटा तो दे, कुछ क्षण एक बार भी तो अपने को अकिञ्चन अनुभव कर। देख फिर तुझे कितना आनन्द जगता है? एक बात और भी है, जो अपने को अकिञ्चन मानेगा, बाह्यपदार्थोंमें तृष्णा लोभ लालच न करेगा उसके पुण्यरस स्वयमेव अधिक बढ़ता है, पापोंका क्षय होता है और कुछ ही समय बाद वह समतासे भी भरपूर हो जाता है। अपनेको अकिञ्चन माननेमें सभी गुण हैं और सकिञ्चन माननेमे विडम्बनाएँ ही बनती हैं। मै हू कुछ, ऐसा माननेमें विडम्बनाएँ ही बनती हैं।

मैं मैं तू तू का फल— एक कोई नटखटी लड़का था। कई जगह नटखट करता गया। एक बार पावभर गुलाबजामुन लेकर गांवके किनारे गया। जहा तालाबमें एक धोबी कपडे धो रहा था। उसका लड़का भी था। उस नटखटी लड़के ने उसे दो चार गुलाबजामुन खिला दिये। अब तो वह रोने लगा कि मुझे और चाहिए। धोबी ने पूछा कि तुमने इसे क्या खिला दिया? तो उसने कहा—गुलाबजामुन। ये कहा मिलेंगे? इन पासके ही बागोंमें चले जावो, जितने चाहे तोड़ लावो। धोबीने कहा— अच्छा भाई, तुम मेरा सामान देखे रहना, मैं इसे गुलाबजामुन तोड़कर खिला लाऊँ। अच्छा तुम्हारा नाम क्या है? वह नटखटी लड़का बोला—मेरा नाम है कल परसों। वह तो पासके बागोंमें अपने सारे बर्तन कपडे वगैरह उसको

जताकर चला गया। उस नटखटी लड़के ने क्या किया कि वह उसका सारा सामान लेकर चम्पत हो गया। जब वह धोबी लौटकर आया तो चिल्लाने लगा, अरे कल परसों मेरा सामान ले गया। लोग कहते हैं, अरे बेवकूफ कल परसों सामान ले गया, तो आज क्यों रोता है? वह नटखटी लड़का आगे बढ़ गया। रास्ते में एक घुड़सवार मिला। घुड़सवार बोला, भाई हमें प्यास लगी है, अपना डोर लोटा दे दो और मेरा घोड़ा पकड़ लो, हम पानी कुवेंसे भरकर पी लें। अच्छा भाई तुम्हारा नाम क्या है? मेरा नाम है, कर्ज लेनेमें। वह तो पानी पीने चला गया और वह लड़का उस घोड़ेको लेकर चम्पत हो गया। घुड़सवार रोने लगा, चिल्लाने लगा, हाय मेरा घोड़ा कर्ज लेनेमें ले गया। लोग सुनने वाले कहते हैं, अरे बेवकूफ! कर्ज लेनेमें घोड़ा ले गया तो क्या बुरा किया? तू ने कर्ज क्यों न चुकाया? वह नटखटी लड़का आगे किसी नगरमें पहुंच गया। वहा एक धुनियाके घर पहुचा। धुनिया तो घर पर था नहीं, उसकी औरत थी। वह लड़का धुनियाकी औरतसे कहता है कि आज रातको अपने घर मुझे ठहर जाने दीजिए, सुबह चले जायेंगे। अच्छा ठहर जावो बाबू जी। अच्छा तुम्हारा नाम क्या है? मेरा नाम है "तू ही तो था" ठहर गया वह। पासमें एक बनियाके घरसे घी आटा दाल वगैरह सारा सामान लिया और कहा कि सुबह पैसे चुका देंगे। अच्छा तुम्हारा नाम क्या है बाबू जी? हमारा नाम है 'मैं था।' उसने धुनियाके घर भोजन बनाया खाया और जो कुछ धोवन था, वह धुनियाकी रुईमें डालकर सवेरा होते ही चला गया। जब धुनिया आता है तो देखता है कि सारी रुई खराब हो गयी है। औरतसे पूछता है कि किसने इसे खराब किया? कौन यहां रातको ठहरा था? धुनियाकी औरतने कहा कि जो ठहरा था वह, तू ही तो था। उसने उसे पीटना शुरू किया। सच बता कौन था? तू ही तो था। खूब पीटी। बनिया ने उसे पिटते देखा तो उसके दया आने लगी। बनिया आकर बोला, अरे जो ठहरा था वह मैं था, लो बनिया भी पिट गया।

जो बाहरी बातोंमें, मैं मेरा करता है उसको विडम्बना ही नसीब हैं। हे जिनेन्द्रदेवके भक्त! जिनेन्द्रकी भक्तिके प्रसादसे तू अनन्त सुख पायेगा। तू अपने आपको इस देहसे न्यारा केवल ज्ञानपुंज अपने आपको निरख। प्रभुभक्ति वास्तवमें इसीमें है। अपने आपको सबसे न्यारा केवल ज्ञानपुंज मान ले। क्या है? यह वैभव तो मिटने को ही है। चाहे जब मिटे, वियोग तो होगा ही। इसमें आसक्ति न करके एक अपने आपमें अपना शुद्ध प्रकाश पायें। मैं अकिञ्चन हू ऐसा मानकर तू ठहर तो जा। विश्राम तो कर अपने

में देख तू तीन लोकका अधिपति हो जायेगा। यह परमात्मप्राप्तिका राज-रहस्य जिससे बड़े बड़े योगिराज परमार्थ तपश्चरणको प्राप्त करते हैं, यह रहस्य तुझे कहा गया है।

त्रिलोकाधिपतित्वका यत्न— परमात्मतत्त्वका यह रहस्य कैसे मिलेगा? वस्तुस्वरूपका ज्ञानाभ्यास करें, जिसको भी देखो उसे पूर्ण स्वतंत्र देखो। कोई भी जीव यदि किसीके आधीन बन रहा है तो वह स्वतंत्र होकर परके आधीन बन रहा है। परके आधीन बननेकी बात तो त्रिकाल हो ही नहीं सकती। कोई जीव किसी दूसरे जीवके आधीन कभी बन ही नहीं सकता। वस्तुके स्वरूपमें ही नहीं है यह बात। जो जीव दूसरेके आधीन बन रहा है वह अपनी कल्पनामें, अपनी कल्पनाओं द्वारा, अपनी कल्पनाओंके आधीन बन रहा है। कोई जीव किसी दूसरेके आधीन बन ही नहीं सकता है। देख यह स्वाधीनताका मार्ग परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिका राज तुझे कहा है।

त्रिलोकाधिपतित्वका यत्न — हे आत्महितार्थी पुरुष! तू बार बार ऐसी ही भावना कर—मैं अकिञ्चन हूं, मैं अकेला हूं, मेरा कहीं कुछ नहीं है। देख यह एक तेरा घरका मन्त्र है। अपने आत्मा भगवान्से मिलने का उपाय है। तू बारबार ऐसी सत्य भावना तो कर कि मैं अकिञ्चन हूं, अकेला हूं, मेरा कहीं कुछ नहीं है, मैं सबसे निराला हूं—इसकी बड़े योग उपयोगसे अपने आपमें खोज तो कर, स्वतः ही एक ऐसा अपूर्व आनन्द उत्पन्न होगा, आल्हाद होगा, जिसके प्रतापसे तू सहज आनन्दमें तृप्त हो जायेगा। तू धीरे से सुन, गम्भीरतासे सुन, तुझे तेरे खास कानमें बात कही जा रही है। तू अपने आपको अकिञ्चन मानकर सबसे निराले रूपसे ठहर तो जा, तू तीन लोकका अधिपति हो जायेगा। इस प्रकार ज्ञानभावनाके लिए आचार्यदेवने हम लोगों को उपदेश दिया है। चाहे परिस्थिति कुछ हो, कर्तव्य कुछ हो, परसम्बन्धी श्रद्धासे दूर न भागो। मैं निर्मल ही हूं, अकिञ्चन ही हूं, ज्ञान-मात्र ही हूं—ऐसी अपनी श्रद्धा बना तो तू सकटोंसे यथाशीघ्र पार हो जायेगा।

दुर्लभमशुद्धमपसुखमविदितमृतिसमयमल्पपरमायुः।
मानुष्यमिहैव तपो मुक्तिस्तपसैव तत्तपः कार्यम् ॥१११॥

तपके लिये मरणभवकी विशेषता— यह मनुष्यजन्म दुर्लभ जन्म है, किन्तु अपवित्र है, सुखरहित है, जिसमें मरणका समय नहीं जाना जा सकता है ऐसा अविदित मरण समय है। यहां उत्कृष्ट भी आयु हो तो भी अल्प है, ऐसी तो इस मनुष्यभवकी स्थिति है और यहां बात यह है कि नर मनुष्यशरीरमें ही होता है, मुक्ति तपसे ही मिलती है, नर मनुष्य-

पर्याय प्राप्त करके हे कल्याणार्थी पुरुष ! तुमको तप ही करना युक्त है। इसमें जो विशेषण दिया गया है यह बहुत मर्म बताने वाला है। देख यह मनुष्यजन्मका मिलना अति दुर्लभ है और ऐसे दुर्लभ मनुष्यजन्ममें बहुत उत्कृष्ट कार्य हो सकता है तो उसे कर लेना चाहिए। धर्मका उत्कृष्ट पालन इस मनुष्यभवमें ही हो सकता है।

तपकी मनुष्यभवमे ही सभवना— मनुष्यके सिवाय तीन गतियां और हैं नारक, तिर्यञ्च और देव। इन तीनों की हालत सुनिये। देव तो विषयोंमे आसक्त हैं, उनको धर्मपालनकी चित्तमें बात नहीं आती है और फिर उनके शरीरकी बनावट, शरीरका ढंग और कर्मोका उदय इस प्रकार का है कि उस देवशरीरमे रहकर धर्मकी बात मनमें, सयमकी बात मनमें नहीं आती है और न उसे कर सकते हैं। वे सयमकी बात करने में असमर्थ हैं। देवगति तो यों निपटी। नारकी जीव तीव्र दु खसे व्याकुल रहा करते हैं। वे स्वय सतापसे तपे रहते हैं। धर्मका पालन वे क्या करेंगे ? तिर्यञ्च जीव विवेकरहित हैं, सो प्रत्यक्ष दिखता भी है। एक मनुष्यभव ही ऐसा है जिसमें धर्मकी प्राप्ति हो सकती है। ऐसा दुर्लभ मनुष्यजन्म पाकर तपस्या के लिए अपनी उत्सुकता रहनी चाहिए और शक्तिमाफिक तप करना चाहिए।

देहकी अपवित्रताका वैराग्यमें सहयोग— यह मनुष्यदेह अपवित्र है। यह देह नीचेसे ऊपर तक अपवित्र है। मल, मूत्र, मांस, मज्जा, हड्डी, पीप, नाक, खून, खकारसे रचा हुआ है। ऊपर पतली चामकी चादर मढी है। अरे शरीर जब अपवित्र ही अपवित्र है तो इससे क्या प्रीति करना ? देवगतिके जीवोंमे जो रूप होता है उसके समक्ष यहाके रूपमें सुन्दरता नहीं है। सुन्दर हो शरीर, पवित्र हो शरीर तो थोडी तृष्णा भी कर लो कि तपस्या करके इस शरीरको क्यों सुखायें, क्यों विगाड़े, पर न तो यह शरीर पवित्र है और न यह सुन्दर है। तब ऐसे अपवित्र शरीरको पाकर तप में लगानेका भय क्यों करते हो ? आरामसे रहेगा तो भी यह शरीर अवस्था पाकर बूढ़ा बनकर नष्ट होगा। इस अपवित्र शरीरको तपकी साधना मे लगाया जाय तो उससे लाभ ही मिलेगा।

मनुष्यभवकी अपसुखताका वैराग्यमे सहयोग— यह मनुष्य शरीर सुखसे रहित है। यह देह यदि सुखसे भरपूर होता तो भी थोडी यह कहने की गु जाइश रखते कि ऐसे सुख वाले शरीर को तप करके क्यो बिगाडें, क्यों इसको हैरानीमें डालें ? किन्तु सुख है कहा ? बच्चोंसे लेकर बूढ़ों तकमें तो कल्पनावोंके अनुसार इन सब जीवोंको दु:ख लगा हुआ है। देवों

की तरह यहां सुख होता तो यह कहना ठीक था कि ऐसे सुखको छोड़कर क्यों कठिन तप करना, क्यों कष्ट सहना ? तनका भी दुःख है, वचनका भी दुःख है, मनका भी दुःख है। इस मनुष्य शरीरमें कितने ही रोग होते हैं? लाखों किस्मके रोग होते हैं। उन रोगोंसे भरा यह शरीर है। 'शरीरं व्याधिमंदिरम्।' शरीर रोगोंका घर है। शरीरकी तो यह हालत है। मनकी हालत भी बड़ी कठिन है इस मनुष्यभवमें। कुछ सुविधा भी होती, कुछ रोगरहित शरीर भी होता तो भी मानसिक सुखोंसे वह छूट न पाता। दुःखमें पड़ा हो तो मानसिक दुःख भोगता है, सुखमें पड़ा हो तो मानसिक दुःख भोगता है।

मनुष्यभवकी अल्पसुखता— एक छोटा भी बच्चा हो दो तीन सालका, मांके पास बैठा हो, उसके मनमें यह आ जाये कि हमें सड़क पर जाना है, तो मां उसे बहुत सुखसे रक्खे, गोदमें रक्खे, कुछ खिलाए और आरामसे थपथपाये तो भी उसे मानसिक दुःख लगेगा, न कुछ इतनीसी बात कि मुझे तो सड़क पर जाना है और यह जाने नहीं देती। वह बच्चा भी दुःखमें आकर तड़फता है, रोता है, सो प्रत्यक्ष दिखता है। वृद्धोंके मानसिक दुःख देख लो। वृद्धोंको कोई खाने पीनेका भी दुःख नहीं देता। समय पर खूब खिलाया, थोड़ी शरीरकी सेवा भी कर दिया तो भी उसके मनमें अनेक बातें आती हैं। उनकी परिणति मनके अनुकूल नहीं होती या मनके अनुकूल नहीं चलते तो वे भी मानसिक दुःखसे तप्तायमान रहते हैं। जवानोंकी बात तो विचित्र है। उनका मन तो अति चंचल है। शरीरमें बल भी है, सो वे यह चाहते हैं कि मैं जिस कामको मनमें विचारूँ वह काम तुरन्त हो, ठीक हो। लेकिन पर-पदार्थका परिणमन अपने आधीन है नहीं, सो पर तो पर ही है, उसके परिणमन पर हम आपका अधिकार क्या है ? यों बच्चोंसे लेकर वृद्धों तक सभी मनुष्य मानसिक दुःखसे दुःखी हैं। इस शरीरमें सुख नहीं है, सो ऐसे दुःखों वाले आत्माको तपस्यामें लगा दीजिए। दुःखी तो यह है ही। आरामसे रहे तो भी दुःख पाता है। यदि तपस्यामें लगायें तो सम्भव है कि दुःख न हो। कहो वहां अन्तरङ्गमें आत्मीय आनन्द जगे तो यह मनुष्यभव सुखरहित है। इसे तपस्यामें लगाना योग्य है।

अविदितमृत्युसमयताका वैराग्यमें सहयोग— तीसरा विशेषण दिया है, इसके मरणका समय नहीं जाना जाता है। न जाने कब मृत्यु हो जाये ? जैसे देवताओंका मरणका समय निश्चित है। उन्हें भी विदित है कि हम अमुक दिन मरेंगे, क्योंकि देवताओंकी आयु बीचमें कटती नहीं है। जैसे यहां शस्त्रसे, रोगसे या किसी कारणसे अकाल मृत्यु हो जाती है, ऐसी बात

देवतावोंमें नहीं है। वे अवधिज्ञानी होते हैं, वे जान जायेंगे कि अमुक दिन, अमुक मिनट पर हमें मरना है। तो जहां मरणका समय विदित हो वहा यह भावना बन सकती है कि अभी तो इस दिन तक जीना है। पीछे कर लिया जायेगा धर्म अभी तो इतने वर्ष पडे हैं, लेकिन इस मनुष्यका तो कलका भी पता नहीं है कि क्या होगा ? ऐसे ही अंदाजसे अपनी वासनाके अनुसार अपने चित्तमें यह बसाये हुए हैं कि हमें बहुत जीना है। लेकिन जब भी कोई मरता है उसके दो चार दस दिन पहिले भी क्या कोई सोच पाता है कि अब हम निकट समयमें ही मरने वाले । तो हमें धर्मसाधनाके लिए तपस्या आदिकका शीघ्र काम कर लेना चाहिए।

नरभवकी अल्पायुष्कता— यह मनुष्यभव अत्यन्त अल्प आयु वाला भव है। देवतावोंकी आयु सागरों पर्यन्तकी होती है। जैसे मानलो किसी की २५ सागरोकी आयु है तो उसका अर्थ यह है कि वह असंख्याते वर्ष जीवित रहेगा। करोड़ नहीं, शंख महाशंख नहीं, किन्तु असंख्यात वर्ष तक इस शरीरमें रहेगा। कल्पना करो कि कोई दो हजार कोशका लम्बा चौड़ा गड्ढा है। उसमें उत्तम भोगभूमिमें पैदा हुए ७ दिनके मेढेके बच्चेके रोमके अत्यन्त छोटे टुकड़े जिनका कि कनरनीके काटनेसे दूसरा हिस्सा न हो सके, ऐसे रोम उस गड्ढेमें भर दीजिए और उसके ऊपर हाथी फिरा दीजिए, तो इसमें कितने रोम भरे हैं, कल्पना लावो, और उनको एक-एक करके सौ-सौ वर्ष बाद निकालते जावो, तो जितने वर्षोंमें सब रोम निकल सकें उतने वर्षोंका नाम है व्यवहारपल्य। उससे असख्यात गुणा है उद्धारपल्य। उससे असख्यात गुणा है अद्धापल्य। एक करोड अद्धापल्यमें एक करोड अद्धापल्यका गुणा करके जो आया उसे कहते हैं एक कोडाकोडी अद्धापल्य। ऐसे दस कोड़ाकोड़ी अद्धापल्यका होता है एक सागर। ऐसे ३३ सागर तक देव जीवित रह सकते हैं। समय तो है, उसका माप कल्पना द्वारा बताया जा रहा है। कुछ करनेकी बात नहीं कह रहे हैं। उतना बड़ा गड्ढा खोदकर उतने रोम भरे नहीं जा सकते हैं और फिर उन पर हाथी फिराकर उन्हें एक-एक करके सौ-सौ वर्ष बाद निकाला नहीं जा सकता है, पर इतना लम्बा समय है, यह समझमें आये कैसे ? इसको समझानेके लिए कल्पना करके ऋषि संतोंने बताया है कि इस ढगसे लोग समझ जावें। ऐसी है उन देवों की आयु। ऐसी ही नारकियोंकी आयु होती हैं। उसके सामने ये मनुष्यके १०० वर्ष हो गए, लाख वर्ष हो गए, करोड़ वर्ष हो गये तो ये कौनसी गिनती में हैं ? यह तो अल्प आयु है। बहुत बड़ी लम्बी आयु हो तो यह सोचा जाये कि चलने दो अभी मनमौजीका काम। जब थोड़ा समय रह जाये

तब ऐसा आयेगा। यह आयु बहुत थोड़े समय वाली है, ऐसी अल्प आयुमें तप, दान, संयम, साधन करके इस दुर्लभ मनुष्यजीवनका लाभ उठा लेना चाहिए।

परमार्थ तपश्चरणसे ही मुक्ति— तपस्याके बिना मुक्ति नहीं होती। बाह्य तपश्चर्यामें नीमता भले ही न हो। कोई साधु बाह्य तपश्चरण अधिक कर रहा हो, कोई बाह्य तपस्याय कम कर रहा हो, पर अन्तरङ्ग जो तपश्चरण है, शुद्धनिज ज्ञायकस्वरूपका आश्रय लेना उसका ही अनुभव करना, यहां ही उपयोग रमाना, ऐसा जो पारमार्थिक अन्तरङ्ग तपश्चरण है और प्रायश्चित विनय आदिक जो अन्तरङ्ग तपश्चरण हैं, वे सबको करने होते हैं। भरत चक्रवर्तीको दीक्षा लेनेके बाद अन्तर्मुहूर्तमें केवलज्ञान हो गया था। बाह्य तपश्चरण करनेका उन्हें अवसर ही नहीं मिल पाया था पर उनकी जिन्दगीमें अन्तरङ्ग तपश्चरण चलता रहता था। राज्यपद संभालते हुए भी, चक्रवर्ती होकर भी धर्मका काम और अन्तरङ्गमें वैराग्य का काम बराबर चल रहा था।

परमार्थ तपश्चरणकी अनिवार्यता— बाहुबलि स्वामी एक वर्ष तक कायोत्सर्ग आसनमें खड़े रहे। वर्षाकालमें बेलें लिपट गयीं, सर्पोंके घर पासमें ही बन गए, अनेक सर्प आस-पास डोलने लगे, ऐसी एक वर्ष की कठिन साधना की। ऐसे दृष्टान्त कम सुननेमें आते हैं। बाहुबलिके पिता ऋषभदेवने दीक्षा लेकर उपवासकी ६ माहकी प्रतिज्ञा की थी। रोज-रोज वे चर्याको निकलते रहे, पर ६ महीने तक उन्हें विधि न मिली। देखो तो कर्मोंकी चाल। इतने बड़े भगवान ऋषभदेव इस अवसर्पिणी कालमें चतुर्थकालमें सर्वप्रथम रक्षक हुए हैं, जिनकी दयाके कारण लोकमें प्रसिद्धि हुई। कोई कृषिका रचने वाला है। ६ माह तक रोज चर्याको जायें, पर आहार का योग न मिले। उस समयके लोग जबकि ऋषभदेव चर्याको निकलें राजा महाराजा सभी हाथी घोड़ा लेकर भेंट करने जाते थे। कोई कहे सोना, चांदी, रत्न ले लो, कोई कहे हाथी, घोड़ा ले लो। कोई अपनी लड़की विवाहके लिए भेंट करने आता था, जैसा कि उस समय रिवाज था। सब प्रभु सेवाके लिए सभी लोग जाते थे, पर आहार देनेकी विधि न जान पाते थे। इसीसे उन्हें ६ माह तक आहारकी विधि न मिली। तो किसीको बाह्य तपस्या साधन जाना आता, किसीको नहीं जाना आता, पर अन्तरङ्ग तपस्या बिना किसीको मुक्तिका लाभ नहीं होता।

निगोदसे निकलनेका दृष्टान्त— हे कल्याणार्थी पुरुष! इस दुर्लभ नरदेहको पाकर इसे सदुपयोगमें लगा। यह मानुष देह पाना बड़ा दुर्लभ बहुत

है। प्रथम तो तुझे निगोदसे निकलना ही बड़ा दुर्लभ था। अनन्त निगोदिया जीव अनादि कालसे अब तक निगोदमें पड़े हैं और अनन्तकाल तक निगोदिया रहेंगे। कुछ ऐसे भी निगोदिया जीव हैं जो इस निगोद पर्यायको कभी छोड़ नहीं सकते। निगोदमें महा कष्ट हैं। श्वासमें १८ बार जन्म और मरण होता है। केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय है। शरीर भी ऐसा साधारण है कि एक जीव मरे तो अनन्त जीव सगमें मरें, एक जीव जन्म ले तो अनन्ते जीव जन्म लें। ऐसे निगोदके कठिन दुःखों से तो हम आप निकल आये हैं। अब इसी भवमे अनेक चिंताएँ, अनेक शोक किया करते हैं।

प्रत्येक स्थावरोंमें जन्म— निगोद से निकला तो यह जीव पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिमें उत्पन्न हुआ। इनकी भी दशा कोई सुखमय दशा नहीं है। पृथ्वीको चाहे जो काटे भेदे, उसके पास रक्षाका क्या साधन है? ऐसे ही जल को चाहे जो बिलोये, अग्निको चाहे जो बुझाये, वायुको चाहे जो रबड़ आदिमें रोकदे और वनस्पतिको चाहे जो तोड़े भेदे फूल पत्तियोंको तोड़कर चाहे जो अपना दिल बहलाये। कोई तो प्रभुपर फूल चढ़ाकर लोग कहते हैं कि हमने धर्म किया, पर धर्म वहा कहां होता है? हालाकि गृहस्थावस्थामें ये सभी कार्य किए जाते हैं, पर इनके छेदने में भेदने में जो प्राणघात है वह तो होता ही है।

स्थावरोंसे निर्गमन— इन स्थावरोंसे निकलकर दो इन्द्रिय जीव हुए, लट, केचुवा, जोक, शख कौड़ी, सीप आदि की पर्यायमें आये; उनका भी कितना घात होता है? थोड़ा एकेन्द्रियसे इनमे अधिक विकास है। अनेक प्रकारके कष्ट इस जीवने दो इन्द्रिय पर्याय पाकर भोगे। दो इन्द्रियसे निकल कर यह जीव तीन इन्द्रिय पर्यायमें आया। कीड़ा कीडी बन गया, यह भी कोई खास विकास नहीं है। चार इन्द्रिय हो गया तो मक्खी मच्छर आदि की पर्याय मिली। उनकी भी स्थिति हम आप सभी देख ही रहे हैं। पचेन्द्रियमें पशु पक्षी हो गए, उनकी भी सभी लोग हालत देख रहे हैं।

वर्तमान उपलब्ध सुयोगके सदुपयोगका अनुरोध— इन सबसे निकल कर मनुष्यपर्यायमें आना उत्तरोत्तर दुर्लभ है। मनुष्य हो गये, पर उत्तमदेश का मिलना कितनी कठिन बात है? पैदा हो गये होते कहीं बर्फीले प्रदेशमे जहा अन्न और फल नहीं पैदा होते हैं तो कितनी दयनीय स्थिति होती? उत्तम देश भी मिल गया तो उत्तम कुलका मिलना मुश्किल है। देश भी उत्तम मिल जाये और नीच कुल मिल जाये तो वहा भी भावोंकी उन्नति नहीं है। उत्तम कुल मिल जाये, फिर शरीरका निरोग मिलना, बुद्धिका

विकास होना, प्रतिभासम्पन्न होना, धर्मविद्याका सुयोग मिलना, उसमें रुचि रखना, धर्मकी बात सुनना, समझना, चित्तमे धारण कर लेना, उसका पालन कर सकना—ये सारी बातें उत्तरोत्तर कठिन हैं। इतनी दुर्लभ चीज हम आपको आज मिली है, इसे पाकर इसे अन्य गतियोंकी भांति विषय-कषायोंमें ही गवा दिया तो सोच लीजिए ऐसा समागम मिलना आसान नही है। आज दुर्लभ मानुष देह मिला है तो इसे तप व्रत संयममें लगाये, इससे ही मोक्षका काम सिद्ध होगा।

> आराध्यो भगवान् जगत्त्रय गुरुर्वृत्तिः सतां सम्मता।
> क्लेशस्तच्चरणस्मृतिः क्षतिरपि प्रप्रक्षयः कर्मणाम्।
> साध्य सिद्धिसुखं कियान् परिमितः कालो मन साधनम्।
> सम्यक् चेतसि चिन्तयन्तु विधुरं किं वा समाधौ बुधाः ॥११२॥

अल्पसाधना और महान् फल— तीन लोकके गुरु भगवान् तो आराधना किए जाने योग्य हैं अर्थात् जहां त्रिलोकीनाथ भगवान्की आराधना करनेका काम है और सज्जन पुरुषोंकी जैसी प्रवृत्ति करनेका काम है, वहा अब भगवान्के चरणोंका स्मरण करनेमें अन्दाज कर लो, कितना क्लेश है और लाभ कितना है? अरे! इन सत्कार्योंसे कर्मोंका क्षय हो जायेगा, मुक्तिका सुख मिल जायेगा। आप सोच लो इतना काम करने के लिए हमें कितना समय मिला है इस मनुष्य भवमें और एक मनको साधने भरका काम है। एक स्वाधीन सुगम कार्य करनेमें क्या कष्ट है? कष्ट तो विकारी भावोंमें है। विषयोंकी इच्छा हो, कामकी वेदना हो, रसीले स्वादिष्ट भोजन करने की वाञ्छा हो, इत्र फुलेल सुगंधित पदार्थोंका परिणाम बना हो, सुन्दर-सुन्दर रूपोंके अवलोकनकी उत्सुकता हो, गायन, राग सुननेका भाव हो, यश कीर्ति बढ़ानेका चित्तमें चाव हो तो ये सब क्लेश हैं। समाधिभाव होना क्लेश नहीं है। सज्जनों जैसी वृत्ति बनाना, भगवान् प्रभुकी आराधना करना यह क्लेश नहीं है। यह तो कष्टके निवारणका उपाय है। हे भव्य पुरुषो! अपना भाव बनाओ, चित्त बनाओ, प्रभुभक्ति और समता सेवाका। इन दो बातोंका चाव बनाओ और अपना जीवन इन दो प्रसंगोंमें बीते तो क्लेश न होगा, शान्ति ही मिलेगी।

ध्यान तपकी विशेषता — कोई पुरुष समझे कि तपमें तो बड़ा कष्ट है और कष्ट सहा जाता नहीं, उसके प्रतिबोधके लिए यह छंद कहा गया है कि देखो समस्त तपोंमें उत्कृष्ट तप ध्यान है। उपवास करना, कायक्लेश करना इनको तो नहीं कहा जा रहा है। सब तपोंमें उत्कृष्ट तप ध्यान है, मनको एक जगह स्थिर होना, यह सबसे ऊँचा तप है। एक मनको गिराए

से गिरना हो जाता है और एक मनको सभाल लेने से उठना हो जाता है। अन्तरङ्गमें देखिये कितने क्लेश हैं? कितनी सी बात है। अरे प्रभुकी भक्ति-करो और सत्संगमें निवास करो, सज्जनों जैसी चर्या बनाओ। इसमें कष्ट तो रच है ही नहीं। लाभ अनेक है, शान्ति मिलेगी, निराकुल रहेंगे, स्वतत्र रहेंगे और भव-भवके बँध हुए कर्मोंका विनाश होगा। देखो समस्त तपोंमे उत्कृष्ट तप है ध्यान। इसमें क्या कष्ट है सो तो बतावो? दो ही कार्य तो बताये गए, प्रभुभक्ति और सज्जनो जैसी प्रवृत्ति। इनके खिलाफ काम क्या होगा? परिवारकी भक्ति अर्थात् परिजनोंसे मोह करना और नीचे कार्योंका, नीचे पुरुषोंका सेवन करना, इनमे तो खेद ही होगा। कोई अयोग्य काम कर लिया। नीच काम कर लिया तो प्रथम तो लज्जाका खेद भोगना पड़ता है और फिर इतना ही नहीं, इसके बाद अपमान और तिरस्कार भी हो जाया करता है। जिन विषयोंमें, विकारोंमें तू रम रहा है क्लेशके कारण तो ये ही हैं। सो नीचका सेवन करनेमें खेद ही खेद है और तीन लोकके नाथ अरहंत आदिक का, तीन लोकके ज्ञायक परमात्माका आराधन करना इसमें न क्लेश है और न भविष्यका कोई सकट है। इस प्रकार सज्जनोंकी प्रवृत्ति बनाना, जो सज्जन लोग किया करते हैं ऐसी वृत्ति से चलना, इसमें खेद नहीं होता।

प्रभुभक्ति और सद्वृत्तिमें उत्कर्ष— आपको नीच कार्य करना पडे तो उसमें खेद होता है। जिस वृत्तिकी बडे पुरुष भी प्रशसा करते हैं, ऐसी प्रवृत्ति ही अगीकार करनेके योग्य है। अभी चार आदमियोंमें कोई बात कहेंगे तो भली-भली कहेंगे। चाहे वह स्वय भला न हो, चाहे उसकी प्रवृत्ति भले की न हो, पर चार आदमियोंमें बात बोलनी होगी तो भली ही बोली जायेगी। तो जिस बात को चार आदमियोंके बीच कहनेमे लज्जा आती है, उस नीच कार्यका सेवन कितना अनर्थ करने वाला होगा? देख तेरे लिए दो ही काम बताये जा रहे हैं—भगवान्की आराधना करना और सज्जनों जैसी प्रवृत्ति करना। इनके करने में कोई कष्ट यदि आता है तो वह तो तेरे लिए शृङ्गार है, कष्ट नहीं है। तू यदि सद्वृत्ति बनाए हुए है, प्रभुभक्ति बनाए हुए है तो ये सारे संकट जो इस बीच आते हैं वे शृङ्गार हैं, सकट नहीं हैं। और देख प्रभुभक्ति और सज्जनों जैसी प्रवृत्तिको टेखकर यदि नीच कार्योंमें लगा तो इससे तो अनन्त क्लेश भोगने पडेंगे। नीच गतिमें जन्म लेगा, कोई पूछनहार न रहेगा। इससे उल्टा चलने पर तो अनन्त क्लेश पावोगे। यदि एक सीधे मार्ग पर चलनेमें वर्तमान परिणामोंके अनुसार कुछ कष्ट होता हो तो वह कुछ कष्ट नहीं है।

प्रभुभक्ति और सद्वृत्तिका फल – भगवान आत्माके आराधन करने से अथवा प्रभुके शुद्ध गुणोंके स्मरण करनेसे, अपने आपके कल्याणकी साधनामें तेरा कुछ जाता है क्या? तेरे स्वरूपमें से कुछ घटता है क्या? अगर कुछ घटता हो, जाता हो तो उसमें दुःखी होना चाहिए। उसमें दुःखी होना ठीक ही है। सो जाता तो कुछ है नहीं, बल्कि क्लेशका कारण जो कर्मसमूह है उस कर्मसमूहका ही नाश होता है। अपने निजस्वरूपमें ही कुछ खर्च नहीं होता किन्तु जो बाधा विपदा लगी हुई है, बोझ चढ़ा हुआ है वह बोझ नष्ट हो जाता है। और भी देख, भगवानकी आराधना और सज्जनों जैसी प्रवृत्ति इन दोनोंका फल साधारण नहीं है, किन्तु सर्वोत्कृष्ट मोक्षफल है। यदि तुझे कुछ क्लेश जँचता हो, प्रथम तो क्लेश है ही नहीं! सद्विचारोंमें, सद्‌आचरणोंमें क्लेश नहीं होता, बल्कि प्रसन्नता ही होती है, किन्तु मन चिरकालसे विषयोंमें लिप्त बना चला आ रहा है, इस कारण मनकी वृत्ति कुछ गंदी है। इसीसे इसे अनगिनते क्लेश होते हैं। खैर, सद्‌-प्रभासे रहे तो इसमें कोई साधारणसा क्लेश है, किन्तु फल कितना शिवमय होता है।

असद्‌वृत्तिमें पराधीनता— भैया! कोई साधन पराधीन हो तो उस से खेद होना ठीक है, पराधीन साधनमें खेद होता है। लेकिन तू देख तो सही, तू पराधीन शब्दोंका भी ठीक अर्थ नहीं लगा सकता। अरे! विषय के साधनोंमें आधीन होनेका नाम पराधीन है। लोकमें उसको पराधीन कहने लगते हैं कि जो छोटा पुरुष है, किसी बड़ेके अण्डरमें काम करता हो तो लोग कहते हैं कि यह पराधीन है। पर यह कोई खास पराधीन नहीं है। पराधीनता तो विषयके साधनोंकी हुआ करती है। मोही जीव जिस को स्वाधीन समझते हैं वह तो बहुत पराधीन है। परिजनसे प्रेम है, मोह है, उन परिजनोंकी कितनी ही बातें सहन करनी होती हैं और फिर भी विषयों के लोभके पीछे, विषयसाधनोंके कारण वहां पराधीनताका अनुभव नहीं करते, किन्तु जहां धर्मका कार्य हो, सत्संगकी बात हो, प्रभुभक्ति सद्‌वृत्ति की बात हो वहां पराधीन मान लेते हैं। पराधीन तो इन्द्रियके विषयोंके साधनके आधीन बननेका नाम है। यह कार्य तो स्वाधीन है। अरे अपने मनकी ही तो साधना करना है।

प्रभुभक्तिकी स्वाधीनता— देखो! जो सज्जन पुरुष हैं वह भी वीत-राग हैं, और जो भगवान् है वह तो उत्कृष्ट वीतराग है ही। अपने मनसे इन वीतराग प्रभु और गुरुओंके प्रति अपनी भक्ति भाव रहे, उनकी सेवा उपासना बनी रहे तो ऐसी सेवा उपासना करने पर भी उनकी ओरसे तुझे

कोई बाधा नहीं आती और तू उन वीतराग पुरुषोंकी, प्रभुकी सेवा उपासना न करे तो भी उनकी ओरसे तुझे कोई बाधा नहीं आती है। अब तो केवल तेरी ओरसे ही करनेका काम है। मनका साधन बना और प्रभु एव गुरुवोंकी सेवामें रत रह। कितना स्वाधीन काम है ? एक अपने मनको हटाने भर की बात है। कष्टकी बात, पुरुषार्थकी बात तो इतनी मात्र है, और लाभ कितना है ? निराकुलता रहे, शान्ति रहे, स्वाधीनता रहे, भव-भवके कर्मों के बन्धन भी कटें, इतने लाभ हैं। फिर भी यह मोही जीव प्रभुभक्ति और सद्वृत्तिको नहीं करना चाहता है। हे कल्याणार्थी पुरुष ! तू विचार तो, एक प्रभुके ध्यानमें कौनसा कष्ट है ? इस तपमें तू अनादर मत कर।

तपश्चरणकी स्वाधीनता— शायद यहा कहोगे कि सज्जनों जैसी वृत्ति करनेमें और तपकी साधनामें जहा तक ध्यानका सम्बन्ध है, ज्ञानका सम्बन्ध है, वहा तक तो हम मान जायेंगे कि इसमें कोई कष्ट नहीं है, बल्कि प्रसन्नता ही है, क्योंकि नवीन नवीन और सत्य बात मालूम हो जाती है। यदि अनशन करें, उपवास करें, ऊनोदर करे तो इनमें तो बड़ा कष्ट है। इन तपोंसे तो हमें अलग रहना चाहिए। इनमें लगनेकी बात तो हे आचार्य देव ! आप कहो। इसमें तो कष्ट मालूम होता है। उसका समाधान यों है कि अनशन आदिक तपोंसे भी तब कष्ट है जब स्वयं करना न चाहे और करना पड़े, अपनी उत्सुकतासे अपनी प्रसन्नतासे जो अनशन आदिक तपों को करता है उसे इस तपमें भी कष्ट अनुभूत नहीं होता है। यदि कोई दुनियाको बतानेके लिए या दुनिया मुझे नाम न धरे, दुनियामें भी प्रशंसा बढ़े, ऐसे कुछ भी भाव रखकर अनशन करे तो वह दिलसे नहीं किया। अनशनके चावसे अनशन नहीं किया, वह तो जबरदस्तीसे हुआ। जो आप न करना चाहे और किसी कारण जबरदस्ती हो जाये तो उस अनशनमें कष्टका अनुभव होता है, पर जो स्वय अपने आपकी इच्छासे किया जाये, उसमें किसी प्रकारका कष्ट नहीं है। जैसे अपने परिणाम प्रमादी न बन सकें और क्लेशरूप भी परिणाम न बने, इस प्रकार ध्यानकी सिद्धिके लिए अनशन आदिक भी करना चाहिए। इसमें कोई कष्टकी बात नहीं है।

विशुद्ध उपयोगका अनुरोध— जब तक शुद्ध मार्गका लक्ष्य नहीं होता ब तक ये धर्मके कार्य कष्टरूप मालूम होते हैं। जब एक धुनि इस अन्त १पके लिए जग जाती है तो उसमें अनशन आदिक तप करनेमें कोई कष्ट नहीं होता है। हे आत्मन् ! तू इन दो बातोंको मत भूल। तीन लोकके नाथ वीतराग सर्वज्ञदेवकी भक्तिमें बढ़ो। प्रभुकी मुद्रा विचार कर, आकाशमें समवशरणका दृश्य विचार कर बड़ी शोभा वाले समवशरणके बहुत बीच

में गंधकुटी पर जैसे चतुर्मुख भगवान् विराजमान है, ऐसे उन प्रभुकी शान्त मुद्राको निरखकर अपना विशुद्ध उपयोग बना। इस उपयोगमें प्रसन्नताका अनुभव होता है। जबकि पुत्रोंमें, स्त्रीमें, धन वैभवमें चित्त लगाया जाये तो उसमें कायरताका अनुभव होता है। क्यों इस मोह वाले प्रसंगमें रहने से दिल दिन प्रतिदिन कमजोर होता जाता है? अपने आप तू कष्ट और उपसर्गोंको चाह रहा है। इसकी चाह छोड़कर प्रभुभक्ति और सज्जनों जैसी प्रवृत्ति बना। इन सद्प्रवृत्तियोंसे तेरा अवश्य कल्याण होगा। अब आगे और भी प्रतिबोध करते हैं।

द्रविणपवनप्राध्मातानां सुखं किमिहेक्षते।
किमपि किमयं कामव्याधः खलीकुरुते खलः॥
चरणमपि किं स्प्रष्टुं शक्ताः पराभवपांशवो।
वदत तपसोऽप्यन्यन्मान्यं समीहितसाधनम्॥११३॥

कामव्याधका वेध— धन वैभव सम्बंधी जो विचार हैं, ये विचार इस संतप्त जीवोंको ताप बढ़ानेके लिए पवनके समान हैं। जैसे हवा चली तो अग्निका जोर बढ़ा, दाह तपन उत्कृष्ट बनी, ऐसे ही ये वैभव जड़पदार्थोंके विचार, ये इस संसारके दुःखी संतप्त जीवोंका और भी दुःख बढ़ाते हैं। जो इन जड़ वैभवके विचारमें ही निरन्तर अपने चित्तको रमाते हैं उन्हें कहांसे सुख हो सकता है? यह आत्मा तो निष्काम है, अदुष्ट है, शिष्ट है, इसे कामरूपी ये शिकारी इस अदुष्ट आत्माको दुष्ट कर रहे हैं। ये चारित्रको ढकनेमें धूलका काम करते हैं। जैसे कभी तेज हवा चले, उस हवासे धूल नीचेसे उड़े और उड़कर सूर्यको भी आच्छादित करदे, ऐसे ही ये जड़ पदार्थोंके विचार यह ही हुई हवा। इन हवाओंसे कष्टोंकी धूल उड़ती है। जड़ पदार्थोंमें गमन वाञ्छा रखनेसे कष्ट ही उत्पन्न होता है। उस कष्टरूपी धूलसे हे आत्मन्! तेरा चारित्ररूपी सूर्य ढक जाता है। तू परिग्रहकी ओरका विचार मत कर। प्रभुभक्ति और आत्मरमणकी ओर अपने विचार बना। अच्छा भैया! तुम्हीं बतावो तपसे जो सिद्धि होती है ऐसे मनोवाञ्छित पदार्थकी सिद्धि कराने वाला अन्य कौन है? सभी जीव केवल एक अपने सही विचारके माफिक चलें तो सुखी हो सकते हैं। विकारयुक्त गन्दे परिणाम करनेसे जीवको सुख नहीं हो सकता है।

मानवोंकी मानवृत्ति— जगत्में यह जीव जितने कार्य करता है, सो सब मान आदिकके अर्थ करता है। मेरा मान रह जाये। मानके लिए तो यह मनुष्य अपने प्राण भी गवा देता है। जगत्के जीवोंमें मानकी चाह विशेष पायी जाती है। संसारमें चार गतियां हैं— नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और

देव। कषायें भी चार हैं— क्रोध, मान, माया, लोभ। नरक गतिके जीवोंके क्रोध की विशेषता है, तिर्यञ्च गतिके जीवोंमें मायाकी विशेषता है, देव गति के जीवोंमे लोभकी विशेषता है और मनुष्य गतिके जीवोंमें मानकी विशेषता है। यह पुरुष संतान चाहता है तो क्या संतानके लिए संतान चाहता है या अपने आत्माके लिए संतान चाहता है? लोकमें अपना मान रखने के लिए संतान चाहता है। उसके मरेके बाद भी लोग यह कहें कि यह अमुकका बेटा है, इतना मात्र कहलाने का सुख लूटने के लिए संतान चाहता है, पर वह सुख तो है नहीं।

मानका अनर्थक हठ— व्यवहारमें कहते हैं ना कि इतनी बात कहलाने के लिए इतने बड़े कष्ट सहे जा रहे हैं। रात दिन परिग्रहके व्यामोहमें लगे जा रहे हैं। इसका फल कितना होगा? वास्तवमें तो इससे लाभ नहीं है, वल्कि इससे हानि है। कुछ सोच लिया कि लोग मेरा नाम कहेंगे। अरे मर गये फिर काहे का नाम? मरकर न जाने किस क्षेत्रमें और किस भवमें शरीर धारण किया? अब तो वहांकी जो बात है वही अनुभवमें आयेगी। आज मनुष्य हैं सो आजकी नाना व्यञ्जनों जैसी भोजन की प्रवृत्ति है और फिर वही जीव मरकर बन जाय केंचुवा, तो उसका मिट्टी का भोजन है। काहे का मान रखते हो, काहेका बड़प्पन, काहेका सम्मान? कुछ भी इसमें सुख नहीं है। मरणके बाद क्या दशा होगी? इसका कुछ भी ख्याल नहीं रखते, लेकिन मान रखने के लिए सब कार्य करते हैं। तू अपना मान रख तो ऐसा रख, जो अनन्त कालके लिए तुझे सुख पहुचायेगा। लोग प्राण देकर भी अपनेको बड़ा मनवाना चाहते हैं। जितने भी कष्ट यह मनुष्य करता है—व्यापार करना, धन जोड़ना, और-और भी इष्ट सामग्री के साधन मिलाना, यह तो सब विपत्ति हैं। तू मान आदिकके निमित्तसे ऐसा आर्तध्यान कर रहा, तू इससे सदा दुखी ही रहेगा।

तपश्चरणसे सर्व अभ्युदय— देख तपस्यामें समस्त लाभ हैं। त्याग संयम ध्यान सदाचारमें बढ़, इससे ऋद्धिसिद्धि सब कुछ उत्पन्न हो जाती हैं। तपस्यासे बढ़कर उत्कृष्ट और कुछ नहीं है। तू तपमें प्रमादी मत बन। प्रभुका ध्यान, सज्जनोंकी सेवा, इन दो तत्त्वोंमे तो कुछ कष्ट भी नहीं है। सो थोड़ी एक मनकी साधना बना ले। पापोंसे दूर होगा तो तेरा सर्वकल्याण होगा।

इहैव सहजान् रिपून् विजयते प्रकोपादिकान्,
गुणाः परिणमन्ति यानसुभिरप्ययं वाञ्छति।

पुरश्च पुरुषार्थसिद्धिमचिरात्स्वयं यायिनी।
नरी न रमते कथं तपसि तापसहारिणि ॥११४॥

तपश्चरणसे कषायविजय— तपके होनेसे यहां ही तत्काल क्रोधादिक वैरियोंको जीत लिया जाता है। तप नाम है अपने ज्ञानस्वरूपमें अपने उपयोगको तपाना अर्थात् जो उपयोग अनादि कालसे बाहरी पदार्थोंमें स्वच्छन्दतासे मौज मानता हुआ लग रहा है, उस उपयोगको बाह्यपदार्थों से हटाकर अपने आपके स्वरूपमें लगाना। इसमें एक तपनसी होती है। देर तक अपनेमें रम नहीं पाता, बैठ नहीं पाता, कभी किसी को घबड़ाहट भी होती है तो अपने आपके स्वरूपमें अपने ज्ञानको लगाना यही वास्तविक तपश्चरण है। इस तपश्चरणमें यह प्रभाव है कि इससे क्रोधादिक वैरियोंको तत्काल जीत लिया जाता है।

गुणविकासकी सर्वप्रियता— जिस गुण को लोग अपने प्राण देकर भी प्रकट करना चाहते हैं उस अपने गुणके विकासमें उत्सुक होओ। नाना प्रकारके गुण सीखना यह गुणोंके विकासका ही तो उद्यम है। ज्ञानविकासमें केवल जानकारी भर होती है, बाह्यमें मिलता कुछ नहीं है, उसके लिए भी बड़ी उत्सुकता रहती है। जैसे बालकों को आर्टमें या गणितमें किसी भी चीजमें कोई ज्ञान मिलता है तो उन्हें उसमें बड़ी प्रसन्नता रहती है। उनको न तो मिठाई मिलना है और न उनको कोई आराम दिया जा रहा है, केवल एक उनमें जिज्ञासा उठी है कि यह क्या है ? उस जिज्ञासाके हल कर लेनेमें उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती है। जिस गुण विकासके लिए लोग जान जानकर उद्यम करते हैं वह गुणविकास इस परमार्थ तपश्चरणके प्रसादसे स्वयमेव प्राप्त हो जाता है।

जीवोंमें ज्ञान और आनन्दकी उत्सुकता— जीवको चाहिए ज्ञान और आनन्द। मूलमें केवल ये दो ही चाह हैं और जितनी भी चाह बना ली है यशकी, नामकी, धनकी, वैभवकी ये सब आनन्दकी प्राप्तिके लिए हैं। मूलमें जीवको केवल दो ही चाह हैं। किसीको बड़ा आराम दिया जाये, आनन्द दिया जाय और जिज्ञासा हल करने का कोई साधन न मिले, ज्ञान बढ़ानेका कोई साधन न मिले तो वह पुरुष भी ऊब जाता है। उसे प्राप्त हुआ आराम भी सुहाता नहीं है। उसे चाहिए ज्ञानकी खुराक और किसीको ज्ञान ही ज्ञान मिलता रहे, उसमें भीतर शान्ति न हो, आनन्द न मिले तो वह ज्ञानसे भी थक जाता है। इस जीवके दोनों इच्छा हैं—मुझे ज्ञान मिले और आनन्द मिले, पर ज्ञानके लिए बड़ी-बड़ी मेहनत करे तो मेहनत करनेके आधार पर कितनासा ज्ञान मिलेगा ? थोड़ासा पढ़ने सीखने, प्रेक्टिकल काम करने

आदिक उपायोंसे हम ज्ञानका सचय करलें तो हमें कितना ज्ञान मिल पायेगा ? थोड़ासा मिल पायेगा।

ज्ञानीकी निर्विकल्पताकी भावना— बाहरी बातोंका विकल्प तोड़ने के अतिरिक्त मुझे कुछ भी न चाहिए। मुझे तो परवस्तुवोंका ज्ञान भी न चाहिए, ऐसे बडे साहससे अपने आपके आत्मामें ही इस ज्ञानको लगा दे, तपा दें तो इस तपश्चरणके प्रसादसे बिना चाहे तीन लोक, तीन कालका ज्ञान करने वाला ज्ञान प्रकट हो जाता है। जिन गुणोंको लोग प्राण देकर भी चाहते हैं वे गुण इस तपश्चरणके प्रसादसे अपने आप सुगमतया प्रकट हो जाते हैं। तत्काल लाभ तो यह है और आगामी कालका लाभ यह है कि वह शीघ्र अन्तिम जो पुरुषार्थ है मोक्ष, उसकी सिद्धिको प्राप्त हो जाता है अर्थात् मुक्त हो जाता है।

तपश्चरणमें आनन्दका प्रवाह— यह तप आतापका विनाश करने वाला है। तपमें आताप नहीं है, तपन नहीं है, दाह नहीं है, कष्ट नहीं है, किन्तु तपश्चरणमें विशुद्ध आनन्द का प्रवाह जग उठता है। वह तपश्चरण है आन्तरिक आत्मस्वरूपमें उपयोगको लगाना और निज ज्ञायकस्वरूपका अनुभव जगना। यही है वास्तविक तपश्चरण। इसमें ये दो खूबिया हैं कि तत्काल तो गुण विकास करे, शान्ति प्रकट करे और भावी कालमें मुक्तिको प्राप्त कराये, ऐसे तपको कौन विवेकी पुरुष न करेगा ? जिसे समझमें आ जाय कि करनेका काम यही है—तपश्चरण आत्मदर्शन अथवा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। यह करनेका काम है, इतना जिसके चित्तमें बैठ गया और इस तरह जिसका झुकाव चला रागाश रहने तक, उनके पुण्य बध तो स्वयमेव होता रहता है।

धर्मात्माके पुण्यकी प्रचुरता— जब तक यह धर्मात्मा पुरुष संसारमें रहेगा तब तक सूखा सूखा न रहेगा। जितने जीव मोक्ष गये हैं उनमें कोई एक परसेन्ट भले ही ऐसे हों जो मुक्ति जाने से पहिले भी अधिक महिमावान् लोकपूज्य न हुए हों; वरना ये जो जीव मुक्त हुए हैं, वे पुण्यके प्रसादसे बडे घरके लोग थे, राजा थे, सेठ थे, पंडित थे। उन्होंने अपनी इच्छासे इस वैभव को असार जानकर इन सासारिक समागमोंको मायारूप जानकर त्यागा और इस चैतन्य प्रतपनरूप परम तपश्चरणका उन्होंने आदर किया। उसके प्रसादसे वे मुक्त हुए। घरका कोई आदमी विदेश जाये विलायत वगैरह, तो लोग कितना सगुन समारोहके साथ विलायत भेजते हैं। जो जीव इस ससारसे सदाके लिए विलायत चले जायें, मोक्ष चले जायें तो उन के लिए कितना समारोह, कितना पुण्य रहता होगा ? रूखे सूखे गरीबी ढग

से मुक्ति जाने वाले जीव अल्प हैं, किन्तु समारोह और पुण्यवानी पूर्वक मुक्ति जाने वाले जीव अधिक होते हैं। इसका कारण यह है कि जो पुरुष आत्मधर्मका सेवन करता है उसके परिणाम इतने निर्मल होते है कि पुण्य बंध तो सुगमता होता रहता है। उनका उदयकाल आयेगा तो अनेक वैभव आये और बड़ी पुण्यसामग्रीको छोड़कर वे साधु हुए। साधु अवस्थामें और और ढंगोंसे पुण्य उनके सामने आता है।

पुण्यतरुके नाना फल— पुण्यके उदयसे जो इष्ट हो वह मिलता है। अथवा कोई धर्मात्मा किसी चीजको चाहते भी नहीं हैं और उदय है पुण्य का तो जनताकी दृष्टिमें जो बात अति उत्कृष्ट होती है वह उन्हें सहज प्राप्त हो जाती है। पहिले वे यहा योगिराज राजा थे या सेठ थे, सब राज्य वैभव या धन वैभव उनके निकट अटूट था। उस सबको त्याग दिया तो अब लोकोंके द्वारा पूज्य हो रहे हैं। यशोलक्ष्मी उनके अधिक बढी। पुण्य जायेगा कहां ? धनका त्याग किया तो यशकीर्ति लक्ष्मी बढी। पुण्यके उदय से जो जनताको उत्कृष्ट इष्ट है अथवा स्वयको जो इष्ट है उसकी प्राप्ति होती है। किसी पुरुषको धन इष्ट नहीं है और वह धनिक भी नहीं है, किन्तु सदाचार और सद्भावना लोकोपकार इनमें चित्त दिया है, उसे ये इष्ट हैं तो इस इष्टकी सिद्धि उनके होती है। यही उनका पुण्य उदय है। पुण्य कई प्रकारसे सामने आता है। केवल धन मिल जाये यही पुण्यका कार्य नहीं है। यश मिले, लोकमें आदर हो, उसकी बात मानी जाये, लोग उस पर विश्वास करे, ऐसी स्थिति बन जाये, यह भी तो पुण्यका ही उदय है।

तपश्चरणसे तात्कालिक व शाश्वत लाभ— ये लौकिक पुरुष जिस काममें, चाहे आगामीकालमें दोष हो, मगर तत्काल गुण हो जाये तो उसे चाहते हैं और कोई पुरुष ऐसे होते हैं कि तत्काल चाहे अवगुण हो, लेकिन आगामीकालमें वह गुण बन जाये, लाभकी बात हो तो उस कार्यमें अनुरागी होकर लग जाया करते हैं। दो तरहकी बातें हैं। कोई पुरुष चाहे वर्तमानमें अवगुण हो, आगामीकालमें गुण हो उसे चाहते हैं और कोई पुरुष वर्तमानमें गुण हो और आगामीकालमें चाहे अवगुण हो, उसे चाहते हैं, पर तपकी बात तो बड़ी विचित्र है। इस तपश्चरणके प्रसादसे तत्काल भी गुण मिलता है और भविष्यकालमें भी गुण मिलता है। ऐसे तपको कौन बुद्धिमान न धारण करेगा ? इस तपश्चरणसे जो भी क्रोधादिक कषायें है उनका शीघ्र शमन हो जाता है, अभाव हो जाता है। भविष्यमें मुक्तिका आनन्द मिलता' है। हम आप सब जीव अपने आप स्वभावसे सहज ही आनन्दमय हैं। कष्टकी कोई बात नहीं है। लेकिन कल्पनाएँ उठाते हैं, मन

को स्वच्छन्द बनाते हैं और अपने आप कषायवान् बनकर दु खी होते हैं। हम आपका वैरी कषायभाव है, दूसरा कोई नहीं है ऐसी दृष्टि बनावो। जगत्के सब जीवों पर चाहे कोई अत्यन्त प्रतिकूल हों, वे भी मेरे वैरी नहीं हैं। उदय है मेरा ऐसा और उस उदयमे इस प्रकारकी बात बन रही है, पर मेरा वैरी दुनियामें कोई नहीं है। जीवके सुख दु खका कारण, अन्तरङ्ग कारण कर्मोका उदय है। अपनी ही करतूतसे जो उसने पूर्वमे कर्म क्रिया उसके अनुसार सुख दु ख मिलता है। जब उदय प्रतिकूल है तो उस दु खमें कोई निमित्त तो बनेगा नहीं। कोई जीव किसी दूसरे जीवको दु खी करनेके लिए नहीं यहा आया है। अपनी ही कल्पनामें दूसरेको दु खका निमित्त मानकर दु खी हो रहा है।

किसीके द्वारा परकी परिणति करनेका अभाव— वास्तवमें किसी जीवका कोई दूसरा जीव वैरी नहीं है। जैनशासन पाकर एक यही बात अपने चित्तमें रख ले कि मेरा वैरी दूसरा कोई जीव नहीं है। ये कैसे हो? सभी जीव अपने-अपने ज्ञान और आनन्दके इच्छुक हैं। जैसे उन्हें आनन्द मिले, वैसी ही वे अपनी चेष्टायें करते हैं। हमारे लिए कोई नहीं करता है। जो पुरुष जो काम करता है वह अपनी वेदनाको शान्त करनेके लिए करता है। दूसरेको सुखी अथवा दु खी करनेके लिए कोई चेष्टा नहीं करता है। कदाचित् इस मनुष्यको ऐसी भी हठ हो जाये कि अमुक पुरुषको दु खी कर डाले, बरबाद करदें, नष्ट कर दें—ऐसा परिणाम करके भी चेष्टा करे तो भी इनकी चेष्टा दूसरेको दु खी करनेके लिए नहीं हो सकती। केवल एक अपने आपके विचार कलुषित बनानेके लिए और उस कलुषित फलको भोगनेके लिए चेष्टा कर रहे हैं। जब कोई दूसरा पुरुष मेरे लिए कुछ कर ही नहीं सकता तो फिर मेरा वैरी कौन है? जीवका वैरी कषायभाव है। क्रोध, मान, माया, लोभ—ये समस्त कषाय हम आपके वैरी हैं, अन्य कोई हमारा वैरी नहीं। इतना निर्णय अपनी मान्यतामें रहना चाहिए। दूसरे को वैरी माननेमे अपने ही धर्मका घात होता है, अपने ही आनन्दका विघात होता है। जिस कामके करनेमें हमारा खुदका नुक्सान है, उसे हम करें ही क्यों? दूसरे जीवोंको अपना वैरी समझनेमें खुदका नुकसान है फिर क्यों किसीको अपना वैरी समझें?

अनेक गुणोका अनायास लाभ— धन्य है वह गृहस्थ जो अनेक प्रसंगोंके बीचमें रहता हुआ भी ज्ञानबलसे अपने आपमें प्रसन्न रहा करता है। लोग तो भली बातको, गुणकी बातको अपने प्राण गवाकर भी चाहा करते हैं। ऐसा प्रत्यय ये ज्ञानादिक गुण ऋद्धि सम्पदा, अतिशय सर्व ये

चीजें जिनके लिए लोग प्राणोंकी बाजी लगा देते हैं। प्राण जाये, पर कीर्ति सम्मान ज्ञान आदिक प्राप्त हो जायें। वे सब गुण जो लोग गुणप्राप्तिके लिए तपस्या करते हैं उनके अनायास स्वयमेव प्रकट हो जाते हैं। यह तो है तपश्चरणका तात्कालिक गुण। निर्विकारवर्तनरूप तपश्चरणसे क्लेशों की शान्ति हो जाती हैं। ओह! निर्विकार परिणतिमें कितना विचित्र आनन्द है? निज तो निज ही है, वह स्वत निर्विकार है। विकार भाव हो तो वहां क्षोभ हो होगा। विकारकी क्षोभसे मित्रता है, शान्तिसे मित्रता नहीं है। किसी रूप निरखकर अन्तरंगमें कामका विकार जगे, बस समझो अब वह पराधीन होगा, ऐसी प्रतिक्षा करके अपने समयको ही बरबाद करेगा। कोई भी कषाय जग जाये, इस जीवके अनर्थके लिए है। जैसे लोग किसीसे बदला चुकानेके लिए, वैर भजानेके लिए उसे ताड़नेका पीटनेका या छीननेके उपद्रव किया करते हैं। किसीसे अपना बदला पूरा लेना हो, वैर भजाना हो तो उसका डटकर विकट उपाय यह है कि उसे ऐसे साधन जुटा दें कि वह वैभवकी, लक्ष्मीकी तृष्णामें आ जाये। किसी जीवको तृष्णा लगा दे इससे बढ़कर और कोई विपदा नहीं हो सकती है।

तपश्चरणकी वर्तमानमें व भविष्यमें गुणकारिता— ये क्रोधादिक परिणाम दूर हो जाते हैं इस परमार्थभूत तपस्याके प्रसादसे। यह इस तपस्याका तात्कालिक लाभ है। यहां किस तपस्याकी बात की जा रही है? अपने आपके सहजस्वरूपको जान लेना, विश्वास करना और उस सत्य स्वरूपमें ज्ञान बना रहे, बहुत समय तक ज्ञान टिका रहे, ऐसे उद्यमका भावात्मक पुरुषार्थ करना, इसका नाम तपश्चरण कहा जा रहा है। इस तपश्चरणके होने पर क्रोधादिक कषायभाव रह नहीं सकते। यह तो इस तपस्याका तात्कालिक गुण है। अब भावी लाभ क्या है कि तपस्या जिसके लिए की जा रही है ऐसा प्रयोजनभूत जो मोक्ष तत्त्व है उसकी प्राप्ति उसे शीघ्र हो जायेगी। इस प्रकार यह तप इस लोकमें भी गुणकर है और इस भवके बाद भावीकालमें भी गुणकर है। ऐसे तपश्चरणमें लगनेकी भावना रक्खे।

तपश्चरणसे जीवनको सफल करनेका अनुरोध-- भैया! इस दुर्लभ मनुष्यजीवनको पाकर व्यर्थके विषय साधनोंमे मत गँवावे। कौनसा विषय साधन ऐसा है जो समर्थ हो, इस आत्माको लाभ पहुचानेके लिए? कामका विषयसाधन यह तो एक विचित्र व्यामूढ़ता है। अशुचि शरीर, दुर्गन्धित शरीर, मायामय शरीर। इसमें रुचिका परिणाम होना यह तो एक विकट हानि है। आत्माके स्वरूपका इसमे विघात हो जाता है। प१

कषायभाव ही इस जीवको दुःख देने वाला है। ये कषाय हमारे ही निज ज्ञानसे शान्त होंगे, इनकी शान्तिका कोई दूसरा उपाय नहीं है। ध्यानमें लायें मुझे यह आत्महित करना है। अन्य-अन्य कामोंमें लग रहे हों, दूकान भी करना है, सेवा भी करना है। सब कुछ करते हुए भी मूलमें लक्ष्य यह होना चाहिए कि मेरा जीवन आत्मस्वरूपको जानकर उस स्वरूपकी दृष्टि में अपनेको लगानेके लिए है, विषयोंके भोगनेके लिए यह मनुष्य-जन्म नहीं है। इतना साहस हो तो वह स्वयं अनुभव करेगा कि सर्व आनन्दका कारण तो यह तपश्चरण है। कितना सुगम काम है? अपने आपके ही भीतरमें कर लेना है कि जो बाह्यदृष्टि हो गयी है उसे अन्तर्मुख करना है। अपने उपयोगको अपने आपकी ओर लगाना है। बाहरसे मुख मोड़कर एक भीतर ही भीतर अपना काम कर लेना है। जहां अपने आपके सहज स्वभावको निरख कर सभी इष्टतत्त्व प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे तपश्चरणके लिए अपना उत्साह जगाना चाहिए।

> तपोवल्ल्या देहः समुपचितपुण्यार्जितफल ।
> शलाट्वग्रे यस्य प्रसव इव कालेन गलित ॥
> व्यशुष्यच्चायुष्यं सलिलमिव संरक्षितपय ।
> स धन्य सन्यासाहुतभुजि समाधानचरमम् ॥११५॥

तपश्चरणसे आयु और देहकी सफलता— जो तपमें प्रेम करते हैं ऐसे भव्य जीव आयु और शरीरको किस प्रकार सफल करते हैं? इसकी प्रशंसा की जा रही है। जिसका शरीर तपरूपी बेलमें उपजा है, जिसमें पुण्यरूपी उत्कृष्ट फल लग रहा है, इस प्रकार यह शरीर जैसे कच्चे फलके अग्रभागमें आने पर फूल झड़ पड़े, ऐसा काल पाकर यह शरीर गल जाता है। इसमें एक दृष्टान्त देते हैं कि जैसे बेलमें फूल उत्पन्न होता है और उस में कच्चा फल लग गया तो जैसे कच्चा फल लगनेके बाद फूल झड़ जाता है, ऐसे ही यह शरीर फूलकी तरह है और तपरूपी बेलमें लगा हुआ है। सो पुण्यके फलको उत्पन्न करके यह शरीरफूल झड जाता है। यहां शरीर का उपकार भी बता रहे हैं। जैसे बेलमें फल लग गया और उसमें जब फल आनेको होता है तो फूल झड जाता है, ऐसे ही इस तपस्यामें तपस्या की बेलमें इस शरीरको तपमें लगानेके कारण पुण्यरूपी फल उत्पन्न हुआ और पुण्य पैदा करके यह शरीररूपी फूल झड जाता है।

ज्ञानीके आयुकी कार्यकारिता— आयुका क्या हाल है? समाधिरूप अवस्थाके होने पर सन्यासरूपी अग्निमें यह आयु जलकर समाप्त हो जाती है। जैसे दूध और पानी मिले हुए हों, उसे आग पर रख दिया जाये तो

गरमीके मारे यह पानी खुद तो सूख जाता है और दूधको बनाये रहता है। ऐसे ही सन्यासकी अग्निमें यह धर्मकी तो रक्षा कर देता है और आयु जल की तरह सूख जाती है। एक अलंकारमें यह दृष्टान्त कहा है। जैसे दूध गर्म किया जाता है तो वहां अग्निसे तपकर पानी तो सूख जाता है और दूध बना रहता है। ऐसे ही मरणके समयमें जो त्याग किया जाता है, सल्लेखना धारण की जाती है, उस अग्निसे तपकर यह आयु तो सूख जाती है और धर्मकी रक्षा बनी रहती है। प्रयोजन यह है कि तपस्यासे इस जीवको लाभ ही लाभ है।

विकाररूप वैरीसे छुटकारेका यत्न— इस जीवका वैरी विकारभाव है। ये विकार इस मोही जीवको बडे सुहावने लगते हैं, पर इन विकारोंके कारण जीवकी कितनी दुर्दशा होती है? पेड़ पौधोंमे, कीड़े मकौड़ोंमें जन्म मरण करना होता है। इन विकारोंकी रुचि होना, सो मिथ्यातत्त्व है और विकारोंकी रुचि न होकर एक शुद्ध ज्ञानस्वभावकी रुचि होना, सो सम्यक्त्व है। इस जीवको विकारोंमें बसनेसे फायदा कुछ नहीं मिलता। वह गृहस्थ धन्य है जो घर गृहस्थीमें रहकर भी धर्मको नहीं भूलता। यहांके समस्त समागम अहितरूप हैं, भिन्न हैं, इनसे मेरा कुछ पूरा न पडेगा, कुछ समय को ही इस मनुष्यभवमें आये हैं। यह सब बराबर ध्यान रहें। सभी कार्य करने पड़ रहे हैं, करें, पर ज्ञान वैराग्य बना रहे तो उस व्यक्तिका जीवन सफल है। एक यह धुन बन जाये कि मुझे तो केवल एक ज्ञानस्वरूपमें अपनी दृष्टि लगाना है, धर्मके लिए एक यही काम पडा हुआ है— ऐसी जिसके अपने ज्ञानस्वभावकी आराधनामें धुनि बन जाये, वह ज्ञानी पुरुष अमर है, सर्ववैभवसम्पन्न है।

आनन्दका स्रोत— भैया! सुख कहांसे आता है? ज्ञान जैसे बने तैसे सुख दुःख अथवा आनन्द प्रकट होता है। यह सब अपने ज्ञानके आधीन है। कोई इष्टवियोगरूप अपनी जानकारी बनाए, अनिष्ट संयोग में अपना उपयोग लगाये तो उसका दुःखी होना प्राकृतिक है। कोई पुरुष अन्य इष्टवियोग अनिष्टसंयोग पर ध्यान न देकर पाये हुए समागमोंसे मौज मानें तो वह सुखी होगा। सुखी दुःखी होना अपने ज्ञानके आधीन है, धन वैभवके आधीन नहीं है। कोई पुरुष धन वैभवसे सम्पन्न होकर भी एक अपना ज्ञान कषाययुक्त बनाये, भ्रमपूर्ण बनाये, तृष्णावान् बनाये तो धनी होकर भी वह दुःखी है। धनको तो बड़े बड़े तीर्थंकर चक्रवर्ती, राजा, महाराजा त्याग देते हैं। धनके त्याग करनेके बाद, निर्धन अवस्था स्वीकार करनेके बाद क्या उन्हें कोई कष्ट होता है? वे तो अपने ज्ञानकी उपासना।

आनन्दमें सदा मग्न रहा करते हैं और इस ज्ञानकी आराधनाके प्रतापसे उनको मोक्ष प्राप्त होता है।

आत्मसावधानीका अनुरोध—भैया ! हम आप सबको ज्ञानमें, तपस्यामें, संयममें, व्रतपालनेमें उत्सुकता होनी चाहिए। मोह, रागद्वेष ये सब अनर्थ करने वाले हैं, ऐसी दृढ़ दृष्टि होनी चाहिए अन्यथा यह आयु तो समाप्त ही हो जायेगी। जो कुछ रागद्वेष, मोहका साधन बनाया है उसका फल अवश्य भोगना होगा। अपने ज्ञानको सदा जागरूक बनाये रहें तो यह दुर्लभ मनुष्य जीवन पा लेना सफल है। सब कुछ करें, अपने विषयसाधन बनाएँ, अपने ज्ञानकी रक्षा न कर सके, अपने आपके स्वभावकी आराधना न कर सके तो यह मनुष्यजन्म पाना व्यर्थ है। इसका सदुपयोग करलें। रहेगा तो यह है नहीं, और यह सब भवोंमें उत्कृष्ट भव है। ऐसे उत्कृष्ट समागमोंको पाकर हम अपना विवेक बनायें, धर्मसाधना करें, अपनेको उन्नति पथ पर ले जायें तो भली बात है, अन्यथा आगे मिट जायेंगी, मरण हो जायेगा, फिर न जाने कहांके कहां पहुंच जायेंगे ? इससे अपनी सावधानी बनाये।

उत्कर्षकी ओर—ये दुनियाके जितने मनुष्य दीखते हैं प्रायः करके मोहमें, विषयोंमें, रागद्वेषोंमें जुटे हुए हैं। उनकी क्रिया देखकर, उनकी चेष्टा निरखकर हमें अपनेको पतनकी ओर नहीं ले जाना है। यह तो संसार है। अनन्त जीव कुमार्ग पर लगे हुए हैं। बड़ा विरले ही मनुष्य ऐसे मिलेंगे जो संसार, शरीर और भोगोंसे विरक्त हैं, अपने ज्ञानकी संभाल करते हैं, आत्मदयामें लगते हैं, ऐसे विरले ही मिलेंगे। हमें अपने आपको पतनकी ओर नहीं ले जाना है। अपने उच्चविचार बनावें, उच्चभावनाएँ बनावें मुझे तो धर्ममें लगना है, ऐसी वाञ्छा बनाये। इस तपस्याके फलसे एक बड़ा उत्कृष्ट पुण्य फल मिलेगा। शरीर तो फूलकी तरह झड़ जायेगा। मगर उस फूलमें फल लगनेके बाद फल तो बड़े होंगे। इसी तरह इस तपस्याकी बेलसे यह देहका फूल तो झड़ जायेगा, मगर पुण्यका फल एक बड़ा मिलेगा। ऐसे ही त्याग, सन्यास, संयम, व्रतपालनकी अग्निसे तपकर यह आयु तो जलकी भांति सूख जायेगी, किन्तु यह धर्म दूधकी भांति बना रहेगा।

विनश्वरसे अविनाशी तत्त्वके लाभका यत्न—ये आयु और शरीर दोनों विनाशीक हैं। विनाशीक चीज व्यय करके अगर अविनाशी चीज प्राप्त होती है तो इससे बड़ा लाभकारी व्यवसाय और क्या हो सकता है ? चेतने की बात है। ये आयु और शरीर तो नष्ट होंगे ही। यदि इन्हें विषयोंके प्रेममें ही बिता दिया तो जन्म-मरण की परम्परा बराबर बनी रहेगी,

जैसी कि अब तक चली आयी है। इस कारण हमें अपने ज्ञान की सावधानी बनाने पर विशेष ध्यान देना है। हमें अपना जीवन धर्ममय रखना है। परिस्थिति में चाहे धनिककी स्थिति रहे, चाहे गरीबी की स्थिति रहे पर धर्मात्मा पुरुष किसी भी स्थितिमें धर्मको नहीं छोड़ सकता। ज्ञानी पुरुषको इन सांसारिक सुखोंका प्रलोभन नहीं लगा है। उसे तो एक चैतन्यस्वरूप आत्मतत्त्वके निरखनेकी धुन लगी हुई है। अपनेको काम वास्तवमें एक यही पड़ा हुआ है कि परद्रव्योंका उपयोग छोड़कर, सकल्प विकल्प छोड़कर ज्ञान-प्रकाशमात्र अपने आपको निरखते रहें। केवल यही सारभूत काम पड़ा है। बाकी समस्त काम तो इस जीवके लिए विपत्ति रूप हैं। इतनी बात लक्ष्यमें तो होना चाहिए। करना कुछ पड़ रहा हो। अपनी गलती, गलतीके रूपसे विदित नहीं हो तो वह अवगुण फिर कैसे समाप्त हो सकता है?

वैराग्यकी पराकाष्ठा व ज्ञानका प्रतिबोध— इस ज्ञानी जीवको ऐसा उत्कृष्ट वैराग्य जगा है कि इस अपवित्र और दुःखदायी शरीरके संग वह क्षणमात्रको भी रहना नहीं चाहता। फिर भी इस दुष्ट शरीर के साथ फसे हुए हैं तो इससे यों ही आसानीसे काम निकाला जा सकता है कि इस दुष्ट शरीरका कुछ काल मैं पालन करता रहूं और इससे विरक्त रहूं। इससे भिन्न अपने ज्ञानस्वरूपकी भावना बनाई जाती रहे तो निकट कालान्तरमें इस शरीरसे छुटकारा पाया जा सकता है। सच जानो हम आपके साथ जो यह शरीर लगा है यह विपदा है, कष्ट देने वाला है, हमारा वैरी है। इस शरीरको देखकर क्या खुश होना? इस शरीरमें कौनसा ऐसा तत्त्व पड़ा है जो खुश होने लायक है? समस्त अपवित्र चीजोंसे भरा हुआ है। खून, मांस, मज्जा, हड्डी, चर्बी आदि सभी अपवित्र चीजें इसमें भरी हुई हैं। इसमें कोई भी चीज सारभूत नहीं है। कदाचित् हाथीके दांत और गज मोती अथवा सीप शंखमुक्ता आदि कुछ चीजें लोगोंके कामकी भी हो सकती हैं, पर हम आप मनुष्योंके शरीरमें तो कामकी चीज जरा सी भी नहीं है। रोम चाम, हड्डी, पीप, खून आदि ये किस काम आते हैं? यह शरीर प्रेम करनेके लायक नहीं है। आरामसे रहें, संयमसे रहें, खानेमें कमी न आये, मौजमें कमी न आये। अरे इसमें क्या रक्खा है? इस शरीरको दूसरोंके उपकारमें लगावो। इसे कष्ट न दो, ये बात थोथी है। इस शरीरको तो जितना उपकारमें लगावो, परोपकारमें लगावो, तपस्या और संयममें लगावो उतना ही लाभ है। शरीर जो कि विनाशीक है, अपवित्र है, इससे यदि पवित्र और अविनाशी कोई कामकी चीज प्राप्त होती है तो ऐसे काममें प्रमाद मत करो। ये विरक्त पुरुष किस प्रकारसे शरीरके साथ रहकर तपस्या

करते हैं ? इस बातको अगले छंदमें कह रहे हैं।

अमी प्रुद्धवैराग्यास्तनुमप्यनुपाल्य यत्।
तपस्यन्ति चिरं तद्धि ज्ञातं ज्ञानस्य वैभवम् ॥२२६॥

ज्ञानी संतोंका विवेक— जिन जीवोंके उत्कृष्ट वैराग्य पाया जाता है ऐसे जीव शरीरका पालन करके भी बहुत काल तक तपस्या करते हैं। यह सब ज्ञानका प्रभुत्व जानो। देखो लोकमें जो पुरुष जिस बातसे उदास रहते हैं उस बातका पालन नहीं कर सकते, परन्तु यह ज्ञानी जीव कितना सयाना है कि यह शरीरसे विरक्त रहता है, फिर भी अपना काम बनवाने के लायक इस शरीरका पालन करता है। जैसे अपना प्रयोजन सधे वैसे इसको पालता है। कहीं शरीरके अनुरागसे शरीरका अधिक पोषण नहीं करता। बड़े-बड़े मुनिराज शरीरसे उदास हो गए हैं, शरीरसे अत्यन्त विरक्त हो गए हैं, परन्तु उन मुनिराजके ऐसा ज्ञान रहता है। वे जानते हैं कि यह मनुष्य शरीर जब तक रहेगा तब तक हम तपस्या करते रहेंगे। इस शरीरको तपस्यामें जुटाने के लिए ये महामुनिराज इस शरीरके साथ एक सेकेण्डको भी रहना पसंद नहीं करते हैं। अरे कैसा यह अनन्तगुणसम्पन्न भगवान अरहन्त जैसी सामर्थ्य वाला प्रभु और कैसा हाड मासके शरीरमें फंसा हुआ है यह, तो निकृष्ट एक अनहोनी खोटी बात हो रही है। इस शरीर को देख कर मोही जीव खुश होता है। यह शरीर खुश होने लायक नहीं है। इससे तो विरक्त ही रहने में लाभ है।

साधुवोंकी आहार प्रवृत्तिका कारण— ये महामुनिराज इस शरीरको आहार आदिक देकर इस शरीरके लिए अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए रख रहे हैं। इस शरीरके प्रेमसे आहार नहीं देते। ये ज्ञानी संत पुरुष एक धर्म और तपस्याकी सिद्धिके लिए इस शरीर को आहार देते हैं। कितना उनका सुन्दर लक्ष्य है ? उन्हें खाने से प्रेम है ही नहीं। वे तो अपने धर्म और तपस्याकी सिद्धिके लिए आहार देते हैं। ऐसे ये ज्ञानी मुनिराज शरीर को रखकर बहुत समय पर्यन्त तपस्या करते हैं। यह ज्ञानका ही माहात्म्य है। भैया ! वैराग्य तो हो ऊँचा और ज्ञान साथ दे नहीं, तो यह तो अपने शरीरकी हत्या कर डालेगा। यह शरीर दुष्ट है, मुझे बरबाद करने वाला है ऐसा जान कर शरीरका विछोह कर दे, लेकिन यह ज्ञानी इस शरीरका यों विछोह नहीं कर देता।

ज्ञानियोंकी वृत्ति— ये ज्ञानी पुरुष इसे समझाते हैं कि भाई ! इस मनुष्यभवको तपस्यामें लगावो। ज्ञान न हो तो बड़े उग्रपरिणामोंके कारण यह शरीरका नाश कर देता तो होता क्या ? मान लो कुछ पुण्यके कारण

देवपर्याय पाता तो उस देवपर्यायमें संयमकी सिद्धि नहीं है सो असंयमी रहकर अपना जीवन पापोंमें व्यसनोंमें व्यतीत करता, पर ज्ञानी पुरुष ऐसा नहीं करते हैं। इस शरीरको रखने से तपस्या करते बन सके तो निकट कालमें ही निर्वाण प्राप्त हो जायेगा। इस कारण ज्ञानी पुरुष इस शरीरकी रक्षाके हेतु आहार देते हैं, पर शरीरके प्रेमसे नहीं। अहो! ज्ञानी पुरुषोंको अपने आत्मस्वभावके पालनेकी कितनी उत्कृष्ट धुनि लगी है? वे संसारमें अन्य कुछ नहीं चाहते। मेरे उपयोगमें मेरा ज्ञानस्वभाव निरन्तर बना रहे सिवाय इसके उनके और कोई चाह नहीं है। ऐसे ये ज्ञानी पुरुष अपने अंतस्तत्त्व की आराधना करते हैं।

क्षणार्द्धमपि देहेन साहचर्यं सहेत कः।
यदि प्रकोष्ठमादाय न स्याद्बोधो निरोधकः ॥११७॥

साधुवोंका वैराग्य और विवेक— समस्त क्लेशोंका कारण यह शरीर है। साधुसतजन इस बातसे बहुत परिचित हैं कि जितने भी क्लेश हैं, शारीरिक मानसिक अपमान आदिकके, ये सब क्लेश इस शरीरके कारण हैं। इस शरीरसे मुक्ति मिले तो क्लेशोंसे छुटकारा मिलेगा। केवल ज्ञानमात्र अपने आपका अनुभव किया जाय तो यह शरीर छूटेगा, सदाके लिए इससे मुक्ति मिल जायेगी और इसे परम आनन्द प्राप्त होगा। ऐसा जानकर साधुजन यही चाहते हैं कि यह शरीर जल्दी से जल्दी दूर होना चाहिए। और इस शरीरसे मुक्ति पानेके लिए वे कठिनसे कठिन तपस्याएँ भी करते हैं। साधु संतोंकी ऐसी कठिन तपस्या हो सकती है कि जिससे यह शरीर शीघ्र दूर हो जाये, किन्तु एक यह विवेककी बात है। उन साधुवोंको मानो पहुंचा पकड़कर यह ज्ञान समझाता है कि तू इस शरीरको इतनी जल्दी बरबाद मत कर दे। यदि तू अचानक बीचमें ही मरण कर जायेगा तो मर कर देव बनेगा। देवपर्यायमें असंयम ही रहेगा, फिर तेरी मुक्ति और दूर हो जायेगी। तू इस शरीरको बड़ी कठिन तपस्या करके बीचमें ही मत सुखा दे, बीचमें ही अपनी मृत्यु न प्राप्त करले। इस शरीरको पाल पोष विरक्ति बुद्धिसे क्योंकि इस देहसे तपश्चरणके सहयोगका काम लेना है। यदि ज्ञान मानों हाथका पहुंचा पकड़कर रोकने वाला न होता तो ये मुनि आधा क्षणमात्र भी शरीरके साथ रहना पसंद न करते।

दृष्टान्तपूर्वक दुष्टसंगके त्यागकी पद्धतिका प्रकाशन— जैसे किसी पुरुषकी किसीसे मित्रता चली आयी हो और पीछे उसका दुष्टपना ज्ञानमें आ जाय, यह मित्र कपटी है, दुष्ट है, ऐसा ज्ञानमें आ जाय तो वह चाहता कि मैं इससे लड़कर तत्काल इसका संग छोड़ दूं। किन्तु कोई तीसरा

पुरुष जो सयाना है, वह मानों उस पुरुषका हाथका पहुचा पकड़कर समझाता है कि तू इस कुमित्रको बरबाद करनेकी जल्दी मत कर' क्योंकि अचानक ही तू इस प्रकार लड़ बैठेगा तो यह आगामी कालमें दुःख देने वाला बनेगा, सो कुछ दिन इसको सगमें रखकर फिर धीरे-धीरे जैसे इसका विनाश हो वैसा कार्य करना। इस ही प्रकार इस आत्माका इस शरीरसे प्रेम था और यह प्रेम अनादिकालसे चला आ रहा था। आज ज्ञानमें आया कि हमारे समस्त क्लेशोंका कारण यह शरीर है जो शरीर मिलता है। शरीरमें ममत्व बुद्धि करके यह जीव शरीरका मोह और अनुराग बढ़ाया करता है। जान लिया कि शरीर दुष्ट है, क्लेशोंका कारण है तो कोई साधु विरक्त ज्ञानी पुरुष बहुत उतावली करता है कि मैं इस शरीरको नष्ट कर दू। सो वह शरीरके नाशका यत्न करता है। लेकिन ज्ञान इसे समझाता है कि तू इस तरहका अविवेक मत कर। शरीरको तू यों ही जबरदस्ती असमयमें मत छोड़, क्योंकि इस प्रकार शरीरको छोड़नेसे अर्थात बड़े तपश्चरण करके भूखे प्यासे रहकर इस शरीरको त्याग देने से अर्थात् मरण कर जाने से चूँकि कुछ शुभकार्य तू ने किया है, पुण्यकर्म का बंध हुआ है, सो उसके उदयमें तुझे देवगति मिलेगी। देव बन गया तो तू वहा असंयममें रहेगा, क्या लाभ मिलेगा? तू उतावली मत कर। तू इस शरीरको धीरे-धीरे इसकी रक्षा करते हुए इसको निर्बल कर, इससे तू अपनी ममता हटा, अपनी ज्ञान-भावना को पुष्ट कर तो इस ज्ञानभावनाके प्रसादसे तुझे वह बल मिलेगा कि यह शरीर विधिपूर्वक सदाके लिए छूट सकेगा और लाभमें रहेगा। इस प्रकार यह ज्ञान इन साधु सत-जनोंको सम्बोधन करता है और शरीरमें रखे रहता है।

आहारका प्रयोजन— उक्त कथनका अर्थ यह लेना कि साधु लोग जो आहार ग्रहण करते हैं वह आसक्ति, अनुराग, प्रेमके वश होकर नहीं करते, किन्तु वैराग्य तो उनमें इतना है कि वे चाहते हैं कि शरीरको अभी त्याग दें, क्योंकि उन्हें अपने निज ज्ञानस्वरूपसे ही अनुराग है, लेकिन ज्ञान समझाता है, ज्ञान आहार करवाता है, साधु आहार नहीं करते। इस शरीरको रख, इससे संयमकी रक्षा कर, अपने आध्यात्मिक तपश्चरणमें इसे लगा। इस प्रकार ज्ञान इस शरीरकी रक्षा करवाता है। ज्ञान रोकनहार न हो तो कौन मुनि इस शरीरको साथ रक्खे? जानकर भी प्रयोजनवश इस शरीरको साथ रखना पड़ रहा है। ये साधु सत जन जानते हैं कि यह शरीर क्लेशका कारण है, इसका सहवास बुरा है। यह अमूर्त ज्ञानादिक गुणमय भग वान् आत्मा एक इस शरीरके सम्बन्धके कारण बन्धनबद्ध बना

हुआ जगत्‌मे होल रहा है, जन्म मरण कर रहा है। इस शरीरसे इस जीव को क्लेश ही क्लेश है। वे चाहते हैं कि इस शरीरको छोड़ दे, पर ज्ञान उस शरीरको आहार करवाता है, कुछ काल तक उसको साथ रखाता है। जितने काल तक यह शरीर साथ रह रहा है, उतने काल तक ये साधु अध्यात्मसिद्धि करते है।

समस्तं साम्राज्य तृणमिव परित्यज्य भगवान्।
तपस्यन्निमणि क्षुधित इव दीन परगृहान्॥
किलाटद्भिक्षार्थी स्वयमलभमानोपि सुचिरम्।
न पोढव्य किं वा परमिह परै· कार्यवशतः ॥११८॥

आदिदेव— आज यह पचमकाल चल रहा है, इसे कलियुग बोलते हैं। कलि मायने अशुभ अथवा पाप उसका युग कलियुग। जनताकी जिस ओर सहज प्रवृत्ति जगे, ऐसे युगका नाम है कलियुग। कुछ लोग आजके युग को मानते हैं कलयुग, मायने मशीनो का युग। इस कलियुगके पहिले चतुर्थ-काल था। चतुर्थकाल ४२ हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरका होता है। उस चतुर्थकालके आदिमे अथवा उसके कुछ ही महीने पहिले आदिनाथ भगवान्‌का जन्म हुआ था। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव थे। उनकी महिमाका कौन वर्णन करे? आज ईश्वर सृष्टिकर्ता है, ऐसी मान्यताके वहुत लोग हैं। इस मान्यताके आधार भी श्री ऋषभदेव हैं, क्योंकि भोगभूमिके अन्तमे जब कि सभी लोग किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये थे, भोगभूमि मे धर्मका भी प्रसार नहीं था और आजीविका का भी कोई साधन नही किया जाता था, क्योकि कल्पवृक्षके कारण जो इष्ट चीज हो, मिल जाती थी। जब भोगभूमि का अन्त आया तो कल्पवृक्षसे चीजें मिलना बन्द हो गया, और धर्मका तो प्रचार था ही नहीं। ऐसी परिस्थितिमे जब कि लोग किंकर्तव्यविमूढ हो गये थे, उस समय आदिनाथ भगवान् ने असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प, सेवा–इन षट्कर्मोंका उपदेश देकर और देवपूजा, गुरूपासित आदि इन सब श्रावकोंके षट्कर्तव्योंका उपदेश दिया था, धर्मकी रक्षा की थी, जनताकी भलाई की थी। उस समय ऐसा ही मालूम होता था, जैसे मानों नवीन सृष्टिकी जा रही हो। जहा सब लोग भूखे प्यासे रह रहे हों, क्या करना चाहिए, कैसे रहना चाहिए, यह कुछ भी विदित न हो, उस समय इन सब विधियोंका उपदेश दिया जाये तो समझ लो कि सभी लोग एक सृष्टिकर्ताके रूपमें समझेंगे। यों सृष्टिकर्ता के रूपमें लोग जिस ईश्वरको मानते हैं वे रूपमें ये ही श्री ऋषभदेव थे।

कैलाशपति आदिदेव— कैलाशपतिके रूपमे जो बात धीरे-धीरे चल

कर अन्य किसी रूपमें प्रसिद्ध हो गयी। वे कैलाशपति थे, मूलमें आदिनाथ ऋषभदेव भगवान्। क्योंकि गृहस्थावस्थाके त्यागके बाद इनका जो समय बीता, अधिकतर कैलाशपर्वत पर बीता और कैलाशपर्वतसे ही वे निर्वाण पधारे। जिन ऋषभदेव की आज्ञा बड़े-बड़े राजा महाराजा महामण्डलेश्वर मानते थे, उन्होंने समझ लिया और अनुभव कर लिया कि इस लोकमें सारभूत पदार्थ मेरे लिए कुछ नहीं है। ये बाहरी समस्त परपदार्थ अपना-अपना स्वरूप लिए हुए अपने-अपने परिणमनसे परिणमते जाते हैं, इन बाह्यपदार्थोंसे मेरा रंच भी सम्बन्ध नहीं है, न मेरा इनसे हित है, न सुख है, न इनपर मेरा अधिकार है। यह समस्त बाह्यपदार्थोंका व्यामोह ही इस जीवको ससारमें रुलाता है, जन्म-मरणकी परम्परा बढ़ाता है, ऐसा जान कर इन्होंने समस्त साम्राज्यका परित्याग कर दिया था।

आदिदेवकी धर्मसाधनाके प्रसगमें कष्टसहिष्णुता— आदिनाथ भगवान्के गृहस्थावस्थामें जो ऐश्वर्य था, साम्राज्य था, उसका कौन वर्णन कर सकता है? उस समस्त साम्राज्यको जीर्ण तृणकी नाईं असार समझकर परित्याग किया और ६ माह तक तो तपश्चरण करनेकी प्रतिज्ञा ली थी। निष्कम्प एक ही स्थानपर उन्होंने ६ माह तक मौनपूर्वक अनशन व्रत धारण करके तपस्या की। जब ६ महीने पूरे हो गए तब आहार करने के लिए रोज रोज जायें। कविकी कल्पनामें मानो वह भूखे आदिनाथ प्रभु कुछ आशा रखकर दूसरोंके घरके दरवाजे पर डोलते रहे। मगर ६ माह तक आहारका लाभ न हुआ। तो देखो ६ माह तक तो अनशन व्रत किए हुए हो गए थे और उसके बाद ६ माह तक आहार और नहीं मिला। इतने काल तक इतनी कठिन तपस्या की। ये सब दुःख उन्होंने क्यों भोगा? जहां चाहे खा लेते, उन्हें आहार कराने वाले बहुतसे लोग थे। क्यों इतने कठिन क्लेश उन्होंने सहे? इन कष्टोंके सहनेका कारण केवल एक यही था कि उनकी यह भावना थी कि इस शरीरसे, कर्मोंसे, इन समागमोंसे छूटकर मैं सदाके लिए छुटकारा पा जाऊँ। इस प्रकार मुक्तिकी परम अभिलाषामें मोक्षमार्गके कार्य के लिए इतने कठिन क्लेश उन्होंने सहे। ठीक है, जिसको जो कार्य रुच गया है उस कार्यके वास्ते वह क्यासे क्या उपसर्ग, उपद्रव, संकट सह नहीं सकता? भगवान् तो बड़े राज्यको तृणकी तरह जानकर उसको त्यागकर भोजनके अर्थ बहुत काल तक भोजन को घर-घर गये और पाया भी नहीं। सो देखो अपने आत्माकी निधिके विशुद्ध कार्यके प्रयोजन से इतने इतने बड़ेपरिसह सह लिए जाते हैं तो कोई दूसरा पुरुष यदि कुछ उपसर्ग करे तो क्या वह परिसह न सहना चाहिए?

आशयविशुद्धिकी आवश्यकता- मनुष्यको अपना आशय बहुत पवित्र रखना चाहिए। उन्हें बाहरी सभालकी अधिक चिन्ता न करनी चाहिए। उनमे अधिक न घुसना चाहिए। अपनी भीतरी संभाल बराबर बनाये रहे, चाहे दूसरे लोग कुछ भी प्रतिक्रिया करे। खुदका यदि विशुद्ध आशय है तो दूसरोंकी चेष्टासे, अपमानसे अथवा अन्य व्यवहारसे अपनेको अशान्ति नहीं हो सकती। खुद ही अगर न्यायमार्गसे चलित हो जायें तो स्वयंके ही अपराधके कारण हम स्वय दुखी होंगे। इससे प्रत्येक परिस्थितिमे अपना आशय विशुद्ध रखना चाहिए। आशयकी विशुद्धिके लिए मुख्यतया ६ बातों पर दृष्टि रखना है। हम मोह, काम, क्रोध, मान, माया लोभके वश न हो जायें।

मोहत्यागका प्रथम कर्तव्य— हमारा प्रथम कर्तव्य है कि किसी पर-वस्तुमें हमें व्यामोह न उत्पन्न हो। यह घर है सो भी मेरा है, परिजन हैं सो भी मेरे हैं यह मेरा वैभव है, इससे ही मेरा बड़प्पन है। मै इतना वैभववान् हू, इतने परिजन वाला हू, मैं ऐसी इज्जत पोजीशनका हू, यों किसी भी प्रकारका लगाव रहा तो यह मोह इस जीवको जन्म जन्मान्तरमें दुखी कर डालेगा। मोह न रहे, इसका सही उपाय जैनदर्शनमे बताया है। यद्यपि और लोग इस तरह विचार कर अपना मोह दूर किया करते हैं कि जगत्मे जो कुछ भी ऐश्वर्य हैं, वैभव सम्पदा है यह सब सब ईश्वरका है। तू इसमे राग मत कर, ईश्वरकी चीज है, इसको तू अपना मत मान। इस तरह मोहको दूर करनेका उपाय बताते हैं। हम अपना लगाव मिटानेकी कोशिश करें और स्वयको ईश्वरमें लगा दें। दूसरी बात यह है कि सबके स्वरूपका यथार्थ प्रकाश बना रहे तो मोह न रहे। इस प्रकाशका यथार्थ भान तब तक नहीं हो सकता जब तक उन वस्तुओंका यथार्थस्वरूप ध्यानमें न आये। यह कैसे ईश्वरका है, कैसे इसे किया, कैसे उसकी चीज है, यह बात जब स्पष्ट नहीं हो पाती है तो मुखसे कहने पर चूकि उस पर विश्वास नहीं हो सकता, सो यह मेरा है, यों मानकर वे मोहमें ही मस्त रहते हैं। जैनदर्शनमे प्रत्येक वस्तुका स्वरूप उनके अपने अपने चतुष्टयमे तन्मय बताया है। ये प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे तन्मय हैं। यह मैं भी अपने स्वरूपमे तन्मय हू। अणु-अणु सब अपने-अपने स्वरूप में तन्मय हैं। यह बात जब ज्ञात कर ली गयी तो वहा मोह ठहर नहीं सकता। प्रत्येक पदार्थ पूर्ण स्वतन्त्र है, उसका सत्त्वमात्र उसमे ही है। तब मेरा साथी कोई अन्य हो ही नहीं सकता। यहा मोह टूट जाता है। मोहका दूर करना सबको आवश्यक है। गृहस्थ हो अथवा मुनि हो, प्रत्येक होनहार

जीवको निर्मोह होना ही चाहिए।

कामपरिहारका आवश्यक कर्तव्य— दूसरी बात है कामासक्ति न हो, कामवासनासे दुर्वासित न हो। ज्ञानी पुरुष यों समझता है—आत्मा स्वरूपसे स्वभावतः निर्विकार है, इसका तो मात्र ज्ञाता स्वरूप है, इसका कार्य समस्त पदार्थोंको जानते रहना मात्र है, इसमें विकार कहा? ज्ञानी पुरुष तो इस बात पर आश्चर्य करते हैं कि इस ज्ञानस्वरूप पदार्थमें ये कामादिक भावोंकी तरग कैसे आ जाती है? यह ज्ञानी अपनेको निर्विकार निष्काम निरखकर इन कामोंसे विरक्त रहता है। निष्काम रहना चाहिए। अपने ज्ञानस्वभावकी साधनामे उपयोग लगाये रहे, यही निष्काम होनेका अमोघ उपाय है। कल्याणार्थी पुरुषको इस कामबाधासे दूर रहना चाहिए।

क्रोधविजयका कर्तव्य— तीसरा कर्तव्य क्रोध पर विजय करनेका है। क्रोध तब विशेष उत्पन्न होता है जब शरीरमें आत्मबुद्धि रहती है। किसी पुरुषने कोई अपमान भरी बात कही तो अपमान तब महसूस कर पाते हैं जब इस विनश्वर शरीरको 'यह मैं हू' ऐसा माना करते हैं। यदि हम अपनेको सबसे निराला ज्ञानमात्र अनुभव किया करें तो वहा क्रोध करनेकी कहा गु जाइश है?

मानपरिहारका कर्तव्य चौथा कर्तव्य है इस जीवका घमड न करनेका। मैं इन जीवोंमें श्रेष्ठ कहलाऊँ, मुझे लोग बडा मानें अथवा मैं बहुतसे मनुष्योंसे बड़ा हू, इस प्रकार चित्तमे बड़प्पनकी भावना रखना इन सासारिक समागमोंको करना यही तो मानकषाय है। इस मान कषायको मेटें तभी हम अपनी शान्ति पानेके हकदार हो सकते हैं। कैसा व्यर्थका घमड? जैसा मैं जीव हू, उससे भी भले जीव अनेक हैं। मुझसे भी बहुत बडे जीव भावोंसे भी बड़े, पुण्यमें भी बडे अनेक जीव हैं। किस बातका यहा मद होना? अपनेको निर्मान, विनम्र, अपने ज्ञानस्वरूपकी ओर झुका हुआ बनायें।

मायाचार परित्यागका कर्तव्य— कल्याणके लिए यह भी आवश्यक है कि चित्तमे मायाचार और कपटका परिणाम भी न रक्खे। अरे जो-जो चीजें हैं वे मुझसे त्रिकाल तक छूट नहा सकतीं। जो बात मुझमें नहीं है वह त्रिकाल मुझमें आ नहीं सकती। य[illegible] आत्मा अपने गुणोंमें तन्मय हू। जो मुझमें है वह मुझमें ही है। जो बा[illegible] मुझमें नहीं है वह त्रिकाल मुझ मे आ नहीं सकती। यह मैं आत्मा अपने गुणोंमे तन्मय हू। यहा किस वस्तुकी प्राप्तिके लिए मायाचार [illegible] मेरे [illegible]

तत्त्वको छोड़कर मेरे लिए सार शरण अन्य कुछ भी नहीं है। फिर किसके लिए मैं मायाचार करूँ ? माया कषायका परित्याग होना चाहिए।

लोभपरिहारकी आवश्यकता— अन्तिम बात है लोभत्याग की। तृष्णा परिणाम अपने आपके आत्मामें अपने आपकी कल्पनासे उत्पन्न होता है और अपना विस्तार बढाता है। उस वस्तुमें यह जीव बेचैन बना रहता है। तृष्णा तीव्र तृषासे भी भयकर बाधा देने वाली चीज है। इस तृष्णा पर विजय प्राप्त करो।

कष्टसहिष्णुता व धर्मसाधनाका कर्तव्य— हे भव्य जीव ! तू कष्टोंको खुशी-खुशी प्रसन्न होकर भोग, किन्तु स्वभावोपलब्धिका कार्य अवश्य कर। इससे ही तेरेको कल्याण प्राप्त होगा। जो जिस कार्यका अर्थी है उसे थोड़ा बहुत कष्ट भी सहना पडे तो उस कष्टको सहकर भी अपने कार्यकी सिद्धि वह अवश्य कर लेता है। उसीके उदाहरणमे यह कहा जा रहा है कि ऋषभदेव जैसे महापुरुष राज्यका त्याग कर भोजनके लिए ६ माह तक घर-घर फिरते रहे। जब महापुरुषोंने एक अपने धर्मकार्यकी सिद्धिके लिए ऐसा कार्य किया है तो हम आपको सत्कार्योंमे क्यो लज्जा आती है ? कष्टकी बात तो दूर जाने दो। कई लड़के तो यो कहते हैं कि मुझे मदिर जानेमे शर्म लगती है, वे तो मदिर नहीं आते। अरे धर्मकार्यकी सिद्धिके लिए कोई कष्ट आ पडे तो उस कष्टका सहना भी उचित है। ऋषभदेव जैसे महापुरुषोंने अपने कार्यकी सिद्धिके लिए कितने कितने कष्ट सहे ?। फिर हम आपको अपने इष्टकार्यकी सिद्धिके लिए क्यो लज्जा आती है ? अपने इष्टकार्यकी सिद्धि अनेक कष्ट सहकर भी करे, यही अपने कल्याणके लिए उचित कार्य है।

पुरा गर्भादिन्द्रो मुकुलितकर· किकर इव।
स्वय स्रष्टा सृष्टे पतिरथ निधीना निजसुत·॥
क्षुधित्वा षण्मासान् स किल पुरुरप्याट जगती-
महो केनाप्यस्मिन् विलसितमलंघ्य हतविधे ॥११६॥

सुखसाधन सचयका अनुत्तरदायित्व— इस छन्दमे कष्टोके सहन करनेका परिणाम बननेको कहा गया है। इस जगत्में कोई यह चाहे कि हम अपने कोई साधन ऐसे बना लें कि कभी दु:ख न हो और सुख सामग्री ही रहे, तो उसका यह सोचना गलत है। यहा कोई साधन ऐसा नहीं बन सकता कि जिससे यह जीव दु:ख न पाए, सुखी ही रहे। जैसे कोई सोचे कि हम इतनी जायदाद बना लें, फिर आरामसे जिन्दगी कटेगी, कोई क्लेश न होगा तो यह भी कोई गारन्टीकी चीज नही है। धन हो जाने पर और

है तो कहना पड़ता होगा, ऐसा कहा हो तो उसके फलमें ६ महीने तक भी अधिक क्लेश होगा। वास्तवमें क्लेश नाम तो मनकी कल्पनाका है। जब अज्ञान और मोह समाया हुआ है तो कुछ भी स्थिति हो जाये, कल्पना करेगा और दु.खी होगा। इस लोकमें कोई बाहरी साधन मिलाकर उससे अपनेको सन्तुष्ट माने तो यह उसका व्यामोहमात्र है। हम साधन ऐसे बना लें तो फिर दु ख न मिलेगा, ऐसा सोचनेके बजाय ऐसा सोचो कि हम कष्ट-सहिष्णु बने। कष्ट सह लेने की हिम्मत हो तो फिर दु ख न रहेगा।

ज्ञानीके निर्धनता और मरणसे अक्षोभ— भैया! दो ही तो प्रधान माने गए कष्ट हैं। एक तो निर्धनता आना और दूसरा मरण आना। ज्ञानी पुरुष निर्धनता को कष्ट नहीं मानते हैं और ऐसा समझते हैं कि मेरा स्वरूप तो धनरहित है ही। मैं तो मात्र ज्ञान और आनन्दस्वरूप हू। मुझमें धन कहा है? कोई प्रसग ऐसा आया हो जिस प्रसगमें ऐसी शका हो कि इसमें १० हजारका टोटा है तो मान ही लो कि इसमें १० हजारका नुक्सान हो चुका, लो दु.ख समाप्त हो गया। अरे बाह्यपदार्थ किसी भी रूप परिणमन करें, आखिर वे हैं तो पर ही पदार्थ। उन पर-पदार्थोंके परिणमनसे इस मुझ आत्मामे कोई सुधार बिगाड नहीं है। हिम्मत बनाओ और सुखी हो लो, कोई सासारिक कष्ट आये। कर्मोंके विचित्र उदय होते हैं, उन उदयोंके अनुसार कोई अपने को कष्ट आ गया, रोग हो गया, इष्टवियोग हो गया, अनिष्ट सयोग हो गया, कुछ भी परिस्थिति प्रतिकूल आ जाय, उसमें अपने विवेक को सभालें। सबसे निराले ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वको देखो और सुखी हो लो

कष्टसहिष्णुताका उत्साह— सुखी होने की धुनमें इन कल्पनावोंका विस्तार मत बनावो कि मैं ऐसा कर लूँगा, इतना कर लूँगा तो दु ख न आयेगा, ऐसा सोचनेसे होगा कुछ नहीं, बल्कि यह निर्णय रख लो कि मुझ मे वह शक्ति है कि कितने ही कठिन क्लेश आयें, उन क्लेशोंको हम समता से सह सकते हैं। क्लेशोंको मिटाये कैसे? कदाचित् दो क्लेश मिटाये तो चार आते हैं। सब अपनी-अपनी बात अनुभवसे सोच लो। कोई कष्ट सामने आये उसको दूर करनेका यत्न किया और दूर हो भी गया तो दूसरा सामने आया, उसको दूर करनेका यत्न किया और दूर हो भी गया तो तीसरा अन्य कष्ट तुरन्त सामने आता है। क्योंकि कष्ट किसी अन्य पदार्थसे नहीं आता, न कष्ट कोई बाहरी चीज है। अज्ञान और मोहसे जो अपने आपमें कल्पना जग जाती है उसीका नाम कष्ट है। ऐसा जब तक ज्ञान न जगे और कर्मोदयसे कोई प्रतिकूल घटना आ जाये तो उसको सहन कर सके

ऐसा शील न बने तब तक यह जीव शान्ति नहीं पा सकता।

ज्ञानबलसे कष्टोंपर विजय— यह लोक कष्ट ही कष्टसे भरा हुआ है सभी मनुष्य जो यहां हैं हम आप सभी यही सोचा करते हैं कि हमारे जीवनमें कष्ट ही कष्ट बने हुए हैं। कभी सुखके साधन मिलें तो तृष्णाके कारण उस सुखके साधनका उपयोग नहीं किया जा सकता और दुःखी दिखने लगते हैं। एक दुःख समाप्त नहीं हुआ कि दूसरा दुःख सिर पर आ पड़ता है। इस लोकमें कष्टसे रहित साधन बनाकर कोई चाहे कि हम सुखी हो जाये तो ऐसा न हो सकेगा। ज्ञान बनाकर बाह्यपदार्थोंकी परिणतिको बाह्य परिणति मानकर किसी भी स्थितिमें आनेको कष्ट न मानें तो इस जीवका गुजारा हो सकता है।

आत्मसिद्धिके प्रकरणमें कष्टसहिष्णुताका स्थान— एक घटना बहुत प्रसिद्ध है, पुराणोंकी है। भगवान् ऋषभदेव हुए हैं। गर्भसे ही वृत्तान्त सुनो। जब वे सर्वार्थसिद्धिसे चयकर गर्भमें आए थे। गर्भमें आने से ६ महीने पहिलेसे और जन्मकाल तक अर्थात् १५ महीने तक इन्द्रने व कुबेरने उनके महलमें रत्नवृष्टि की थी। गर्भमें आने से ६ महीने पहिलेसे ही पुण्य वैभव बढ़ने लगा था। जिनकी सेवामें इन्द्र हाथ जोड़े खड़ा रहता था दास की तरह। इन्द्रकी सदा यह इच्छा रहा करती थी कि ये ऋषभदेव जो कुछ चाहते हों, जो इनकी इच्छा हो, झट में उसकी पूर्ति करूँ। ऐसे इन्द्र जिनकी सेवाको चाह रहे थे, उन ऋषभदेवकी कहानी बतला रहे हैं कि साधु होने के बाद ६ महीनों तो मौन व्रत लेकर तपश्चरण किया ही था, पर उसके बाद आहारको निकले तो ६ महीने तक आहारका योग न मिला। ऐसे महापुरुष ऋषभदेव जिनको लौकिक जनोंने एक दशम अवतारके रूपमें माना गया है लोकमें, जो इस चतुर्थकालके आदिमें, तृतीय कालके अन्तमें हुए, तब प्रजा को सुखका मार्ग जिन्होंने बताया और इसी कारण वह सृष्टिकर्ता कहलाये। उन ही ऋषभदेवको लोग ब्रह्मा कहते हैं, जगत्सृष्टिकर्ता कहते हैं। उनके पुत्र भरत चक्रवर्ती थे। भरतचक्रवर्ती उन दिनों भी थे जिन दिनों ऋषभदेवको ६ महीने तक आहारके लिए निकलनेपर भी आहार न मिला। इस घटना से हम शिक्षा लें, धर्मसाधनके लिये कष्टसहिष्णु बनें।

कष्टसहिष्णुताका उत्साह— कोई ऐसा बताते हैं कि इन्होंने ही कृषि के सम्बन्धमें उपदेश दिया था। फसल काटने के बाद अन्न निकाला जाता है। उसपर बैलोंको खूब घुमावो और ये बैल अन्न न खा सकें, सो इनके मुँह में सीका लगावो। सभी प्रकारकी बातें जब गृहस्थोंके लिए उपदेशमें दी गईं सो अन्तराय हुआ ऐसा कुछ लोग कहा करते हैं। तथ्य क्या है? यह प्रमाणित

तथ्य सुविदित नहीं होता। तथ्य तो यह है कि इस प्रकार उनके कर्मोंका उदय आया जिसकी वजहसे ६ महीने तक भ्रमण करना पड़ा। तब हम आपकी कहानी क्या है ? यह लोक कष्टोंसे भरा हुआ है। यह मोही जीव कभी कोई विषयसाधन पाकर अपने कष्टोंको भूल जाता है और सुखमें रम जाता है। वहा भी यह जीव आकुलित ही है, वस्तुत' केवल एक कल्पनासे सुख मान लिया है। यह लोक कष्टोंसे भरा हुआ है। इन कष्टोंको टालनेका प्रयत्न न करके कष्टोंके सहन करनेकी हिम्मत बने तो कष्ट भी टलेंगे और विशिष्ट पुण्यका बध भी होगा। अपना जीवन कष्टसहिष्णु बनाएँ और धर्मकार्य करते हुए भी स्थितिमें किसी प्रकारका कष्ट आ जाय तो उस कष्टसे विचलित न हूजियेगा।

परिस्थितियोंके ज्ञातृत्वका शिक्षण— कोई यह समझे कि मैं सुख-सामग्री मिला मिलाकर सुखी हो जाऊँगा तो ऐसी संसारमें कोई परिस्थिति नहीं है कि प्रबल कर्मका उदय आनेपर उस कष्टको दूर कर सकें। इसी बातको समझानेके लिए ऋषभदेवका उदाहरण दिया गया है। जिनके इन्द्र तो किकर थे और जिन्होंने उस समय सब रचना रची, सो इस जगतके विना कहलाये, सृष्टिकर्ता कहलाये। सबकी आजीविका का साधन बताया। ऐसे-ऐसे बड़े पुरुषार्थ वाले थे वे ऋषभदेव और उनके पुत्र थे भरत चक्रवर्ती ऐसे महान् ऐश्वर्य सम्पन्न होकर भी अन्तरायका जब उदय आया तो ६ महीने पर्यन्त भोजनके अर्थ भ्रमण किया, तब अन्यकी तो बात ही क्या है ? यह निर्णय बनावो कि मैं कष्टको कष्ट ही न मानूँगा और यों निरखूँगा कि यह परपदार्थोंका इस प्रकारका परिणमन है, परपदार्थ निकट आते हैं तो उनके भी ज्ञाता रहेंगे। परपदार्थ बिछुड़ते हैं तो बिछुड़े तो उनके भी ज्ञाता रहें। कष्ट कहा है ?

कष्टसहिष्णुताके प्रयोगका उत्साह— जहा तक कोई शारीरिक कठिनाई व्याधि नहीं उत्पन्न हो, कमसे कम तहा तक तो बाहरी पदार्थोंकी परिणति निरखकर कष्ट न माननेका अभ्यास तो बनावो। कोई बात शरीर पर बीत जाय, व्याधि हो, अन्य कोई आक्रमण करे, पीटे मारे—ऐसी स्थिति में चाहे हिम्मत न बन सके कि शरीर परपदार्थ है, शरीरका परिणमन शरीरमें हो रहा है होने दो, मै स्वय पृथक् सत् हू, मेरा सत्त्व मुझमें ही है। यों शरीरसे भी भिन्न अपने आपको निरखनेका बल न प्रकट हो शारीरिक रोगके कारण, तो कमसे कम इन शारीरिक कष्टोंके अतिरिक्त अन्य समस्त स्थितियोंमें हिम्मत बाधे, साहस बनायें कि मैं कष्ट कुछ न मानूँगा। धन कम होता है तो होने दो, उसकी कुछ भी स्थिति हो उसके ज्ञाता रहो, फिर

कष्ट कहां रहा ? इस मायारूप देहसे अपनेको भिन्न मानों। मैं ज्ञानस्वरूप हूं, इस मुझ आत्माका काम केवल जानना देखना है, इसमें रागद्वेष मोहका कोई संकट नहीं है— ऐसा केवल ज्ञानमात्र अपने आपको अनुभव किया जाय, वहां कष्टका क्या काम है ?

ज्ञातृत्व व कष्टसहिष्णुताका पुरुषार्थ— कर्मोंके उदयसे थोड़ा बहुत कष्ट उत्पन्न हो तो उसको भी सहकर ऐसा चिन्तन करना कि यह तो होने को ही था, कौन इसे रोकता है ? मुझपर यह बात बीतनी थी, बीती है। अब उस परपरिणतिको जानकर, बाहरी वेदना जानकर उसकी पीडा और कष्ट अनुभवमें न लायें, यह हिम्मत बने तो अपने आपको लाभ पैदा होगा। हम कायर बन जायें, परचेष्टाको अपनी परिणति मान लें तो उसमें क्लेश अपने आप ही मोल लिया समझिये। ऐसा चिन्तन करो कि सांसारिक कार्योंमें कर्म बलवान हैं, उदय बलिष्ट है। जो कुछ बीतनी हो बात तो उस में उस उसके उदयके अनुसार बीतती है। उसका ज्ञाता द्रष्टा रहना अथवा कष्टोंके सहन करनेकी शक्ति बने, यही अपना कर्तव्य है।

संसरणके अभावमें आत्महित— समस्त ससार-अवस्थावोंका अभाव करना इसमें ही हित है। कर्मोंसे ही सारा ससार है, कर्मोंसे ही इतना बड़ा क्लेश है। इन क्लेशोंको दूर करनेमें ही अपना हित है। ससार-अवस्थाका अभाव तब ही सम्भव है, जब कि निर्विकार ज्ञानमात्र अपने आपके स्वरूप की श्रद्धा बने, यहां ही रमण करनेका भाव बने। इस प्रकरणसे हमें यह शिक्षा लेनी है कि बाहरी बातोंमें जो कुछ बीतती है, बीतने दो। हम कष्ट-सहिष्णु बनकर, यथार्थज्ञानी बनकर उन सब उपद्रवोंको दूर कर सकते हैं। ऐसा जानकर उन कष्टोंके बचावमें, उन कष्टोंक दूर करने के साधनकी कल्पनामें अपना समय न व्यतीत करें, किन्तु कष्टसहिष्णु बनकर उन सब उपद्रवोंपर विजय परिणाम करें और अन्तरगमें ज्ञानानन्दस्वरूपमात्र आत्मतत्त्वकी दृष्टि रखकर अपने आपमें प्रसन्नता पावें। इस ही विधिसे हम ससारके संकटोंसे छूट सकते हैं।

शान्तिमें वस्तुस्वातन्त्र्यके परिज्ञानकी साधकता— शान्तिका उपाय पानेके लिए हमें वस्तुके स्वरूपका यथार्थ भान होना चाहिए। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे है, दूसरेके स्वरूपसे नहीं है। हम किसी पदार्थका कुछ परिणमन नहीं करते, कोई पदार्थ मेरा कुछ भी परिणमन नहीं करता। सब की आजादी निरखें, यहां कोई किसीका मालिक नहीं है, अधिकारी नहीं है। यहां सब मिल जुलकर रहें, क्योंकि सभीको सुख चाहिए और यहांका सुख है विषयोंके साधनमें। सो उन विषयसाधनोंमें रहनेके लिए एक दूसरेकी

परतंत्रताको स्वय स्वतत्र होकर अंगीकार किया करते हैं। वस्तुत' कोई जीव किसी भी अणुका मालिक नहीं है, ऐसी यथार्थ बात अपनी श्रद्धामे ले आये और फिर कोई कष्ट हो सकता हो तो बतावो। निर्धनताको ही जब धनी मान लिया गया तो अब उसे कष्ट काहेका? कर्मोंका उदय अधिकसे अधिक इतना ही तो कर सकेगा, इतना ही होनेके लिए निमित्त बन जायेगा कि न रहे वैभव या नष्ट हो जाय वैभव, न रहे जीवन या हो जाये, मरण, ज्ञानी पुरुष उसका भी मुकाबला समतापूर्वक कर लेता है। इसीसे उसे दु ख नहीं होता। कष्टसहिष्णु बनो और धर्मपालनका अन्तरङ्गमें ध्यान रक्खो।

आन्तरिक उपचारसे ही शान्तिमें सफलता— गृहस्थावस्था में तो अचानक अनेक सकट आ जाते हैं। किस-किस सकटको मिटावोगे? एककी रक्षा की तो, दूसरा बीमार हो गया, किसीपर कोई सकट छा गया। यों एक न एक बात सामने हाजिर रहती है और ऐसी बात जो विचारोंमें भी नहीं आ सकती, सामने घटित हो जाती है। हम कष्टसहिष्णु नहीं बन सकते तो जीवन नैया पार नहीं हो सकती। यदि हम कष्टसहिष्णु हैं तो जीवनमें कष्ट आयेगा ही नहीं। यहां तो सभी जीव एक समान हैं। उनमें मात्र पुण्य-पापके उदयका अन्तर है। जिसने जैसा सुकृत और दुष्कृत किया उसके अनुसार उसे फल मिलता है। इस प्रकरणमें मुख्यरूपसे यह शिक्षा दी है कि कोई कष्ट आये तो उससे घबड़ावो मत उसे अनहोनी मत मानो, उसे बहुत बड़ी विपदा मत समझो। यह सब परपदार्थोंका परिणमन है। यों हो गया, यों निरखो और उन सब विडम्बनावोंसे विविक्त अपनेको ज्ञानानन्द रूप अनुभव करो। जो कष्ट आया है उसके प्रति यह ध्यानमें लावो, इससे भी कई गुणा कष्ट आ सकता है। इस पद्धतिसे जब विचार करोगे तो जो कष्ट आया है उसको समतासे सहन कर सकते हो। अन्य जीवोंको भी देख लो, कैसे-कैसे अचानक क्या-क्या कष्ट उमड़ आते हैं? सभीको ऐसे दृष्टान्त मालूम हैं। कष्ट दुनियामें कुछ नहीं है। अपने आपके स्वरूपपर दृष्टि न जम पायी और बाह्यपदार्थोंके कारण अपना बड़प्पन माना तो इस पद्धतिसे फिर कष्ट ही कष्ट हैं।

तपश्चरणकी शक्यानुष्ठानता व उपादेयता— देखो तपस्यामें कोई कष्ट नहीं है। जो और कष्ट आ रहे हैं इन कष्टोंके सामने अपनी इच्छापूर्वक ज्ञानसहित वैराग्य-भावसे कुछ तपश्चरण किया जाय तो वह कौनसा कष्ट है? और इष्टसयोग, अनिष्टवियोग ऐसे जो सुखके साधन हैं, इन्हें आप कब तक बना सकते हैं? एक ही निर्णय रक्खो, हम कष्टोंके सहिष्णु हैं, जो बात बीतेगी उसका हम मुकाबला कर सकते हैं, हमारा काम केवल

धर्मपालनका है, हम अपनी धर्मसाधनामें लगें और कुछ उपद्रव आयें तो उनको सहनेको हममें हिम्मत रहे, ये सब बातें ज्ञानबलसे सुगमसाध्य हैं। तपस्यामें प्रीति बनावो, तपस्यासे कष्ट मत मानो। कष्ट तो ये विषय-कषाय हैं, संकल्प विकल्प हैं। उनके सामने व्रत पालन का, संयम साधन का कौन सा बड़ा कष्ट है? यह तो उत्तरकालमें आत्मलाभका कारण है, ऐसा जान कर तपस्यामें कष्ट मत मानो, कर्मोदयसे कोई कष्ट आये तो उसके सहिष्णु बनो और ज्ञानस्वभाव अंतस्तत्त्वकी आराधनामें अपने आपको लगाये रहो, यही दु:खोंसे छूटनेका एक उपाय है। कष्टोंके सहनशील बनो और धर्ममें अपनी प्रवृत्ति रक्खो।

❀ इति आत्मानुशासन प्रवचन चतुर्थ भाग समाप्त ❀

मुद्रक—खेमचन्द जैन, मंत्री शास्त्रमाला प्रेस, रणजीतपुरी, सदर मेरठ।

सहजानन्द शास्त्रमाला

सुख कहाँ

रचयिता—

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ गुरुवर्य्य पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

सकलयिता व सम्पादक—
श्री मूलचन्द ~~जी जैन एम. ए. पी-एच. डी~~

प्रकाशक—
खेमचन्द जैन सर्राफ,
मन्त्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)

द्वितीय सस्करण ११००] सन् [illegible] [लागत ३) रु०